शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र

भारतीय साहित्य

नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार पुनर्रचित पाठ्यक्रम

(शैक्षिक वर्ष 2024-25 से)

एम. ए. भाग–2

हिंदी :

सत्र 3 और 4

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2024
सुधारीत द्वितीय संस्करण : 2024
एम.ए. भाग 2 (हिंदी : भारतीय साहित्य)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 400

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN-978-93-89345-66-7

★ दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी–
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर–416 004. (भारत)

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ सलाहकार समिति ■

प्रो. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) पी. एस. पाटील
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) प्रकाश पवार
राज्यशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. विद्याशंकर
कुलगुरू, केएसओयू
मुक्तगंगोत्री, म्हैसूर, कर्नाटक-५७० ००६

प्रो. राजेंद्र कांकरिया
जी-२/१२१, इंदिरा पार्क,
चिंचवडगांव, पुणे-४११ ०३३

प्रो. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. संजय रत्नपारखी
डी-१६, शिक्षक वसाहत, विद्यानगरी, मुंबई विश्वविद्यालय,
सांताक्रुझ (पु.) मुंबई-४०० ०९८

प्रो. (डॉ.) कविता ओझा
संगणकशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) चेतन आवटी
तंत्रज्ञान अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एम. एस. देशमुख
अधिष्ठाता, मानव्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. एस. महाजन
अधिष्ठाता, वाणिज्य व व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) श्रीमती एस. एच. ठकार
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. ए. एन. जाधव
संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्रीमती सुहासिनी सरदार पाटील
वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. के. बी. पाटील (सदस्य सचिव)
प्रभारी संचालक, दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ हिंदी अध्ययन मंडल ■

अध्यक्ष

प्रो. डॉ. साताप्पा शामराव सावंत
विलिंग्डन महाविद्यालय, सांगली

सदस्य

- **प्रो. डॉ. नितीन चंद्रकांत धवडे**
  मुधोजी महाविद्यालय, फलटण, जि. सातारा
- **डॉ. मनिषा बाळासाहेब जाधव**
  कला व वाणिज्य महाविद्यालय, ११७, शुक्रवार पेठ, सातारा-४१५ ००२.
- **प्रो. डॉ. वर्षाराणी निवृत्ती सहदेव**
  श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठवडगाव, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. हणमंत महादेव सोहनी**
  सदाशिवराव मंडलीक महाविद्यालय, मुरगुड, ता. कागल, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. अशोक विठोबा बाचूळकर**
  आजरा महाविद्यालय, आजरा, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. भास्कर उमराव भवर**
  कर्मवीर हिरे आर्टस, सायन्स, कॉमर्स अॅण्ड एज्युकेशन कॉलेज, गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे**
  आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा, ता. जावळी, जि. सातारा
- **प्रो. डॉ. अनिल मारुती साळुंखे**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, करमाळा, जि. सोलापुर-४१३२०३
- **डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण**
  श्रीमती जी.के.जी. कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपुर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत**
  डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापुर, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात**
  आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली
- **डॉ. परशराम रामजी रगडे**
  शंकरराव जगताप आर्टस अॅण्ड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत स्नातकोत्तर हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री, नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता स्नातक स्तर तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह स्नातकोत्तर स्तर के छात्र भी प्रस्तुत स्वयं-अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार पुनर्रचित पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक-वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन-सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलपति, सम-कुलपति, कुलसचिव, अधिष्ठाता, मानव्य विद्या शाखा, दूरशिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहयोगी, तथा इकाई लेखक आदि के सक्रिय सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद।

■ **सम्पादक** ■

प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर,
ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) साताप्पा शामराव सावंत
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर तथा
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली, जि. सांगली

इकाई लेखक

लेखकाचे नाव	घटक क्रमांक	
	सत्र–3	सत्र–4
★ **डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे** प्रा. संभाजीराव कदम महाविद्यालय, देऊर ता. कोरेगाव, जि. सातारा	**1**	**1**
★ **श्री. संतोष साळुंखे** नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस्‌ अ‍ॅण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी	**2**	-
★ **डॉ. कैलास पाटील** विलिंग्डन कॉलेज, सांगली	**3**	-
★ **प्रो. डॉ. बळवंत जेऊरकर** विलिंग्डन कॉलेज, सांगली	**4**	-
★ **डॉ. सचिन कांबळे** डी. आर. माने महाविद्‌यालय, कागल, जि. कोल्हापुर	-	**2**
★ **डॉ. एम. बी. कुंभार** मातोश्री बयाबाई श्रीपतराव कदम कन्या महाविद्यालय, कडेगांव	-	**3, 4**

■ **सम्पादक** ■

प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर,
ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) सातापा शामराव सावंत
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्‌यालय, कोल्हापुर तथा
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली, जि. सांगली

अनुक्रमणिका

इकाई		पृष्ठ
	सत्र–3 : भारतीय साहित्य–I	
1.	भारतीय साहित्य का सैद्धांतिक अध्ययन	1
2.	‘नागमंडल’ (नाटक) – गिरीश कर्नाड (कन्नड)	22
3.	‘उचक्का’ (आत्मकथा) लक्ष्मण गायकवाड (मराठी)	60
4.	‘मेरी आवाज़ सुनो’ (काव्य) – कैफी आज़मी (उर्दु)	86
	सत्र–4 भारतीय साहित्य–II	
1.	भारतीय साहित्य का सैद्धांतिक अध्ययन	111
2.	मास्टर साब (उपन्यास) – महाश्वेता देवी (बंगाली)	142
3.	अधूरे मनुष्य (कहानी संग्रह) – डी. जयकान्तन (तमिल)	166
4.	पु. ल. देशपाण्डे के हास्य – व्यंग्यात्मक लेख – पु. ल. देशपाण्डे (मराठी)	200

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे-

(1) इकाई में क्या दिया गया है।

(2) आपसे क्या अपेक्षित है।

(3) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं-अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं-अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई 1

भारतीय साहित्य का सैद्धांतिक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 विषय विवरण

1.3.2 भारतीय साहित्य का स्वरूप

1.3.3 भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता

1.3.4 भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ

1.3.5 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता

1.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द/शब्दार्थ

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय साहित्य के स्वरूप से परिचित होंगे;
- भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता से परिचित होंगे;
- भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं से परिचित होंगे
- भारतीय साहित्य के राष्ट्रीयता में योगदान से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना

भारतीय भाषाओं का साहित्य अपनी विभिन्नता और वैशिष्ट्य के बावजूद कुछ मूलभूत प्रवृत्तियों में समान दिखता है। यह समानता ही भारतीय साहित्य का आधार है। भारतीय साहित्य का आशय स्पष्ट करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने कुछ प्रवृत्तियों की चर्चा की है। प्राय: सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की शुरुआत में नाथ साहित्य रचा गया है। नाथ पंथी शिव को अपना आद्यगुरु मानते हैं। इस सम्प्रदाय का संगठन और दिशा-निर्धारक चिंतन क्योंकि गोरखनाथ का रहा है इसलिए उनके नाम पर सम्प्रदाय को नाथ पंथ कहा गया। मराठी और बांग्ला में नाथ सम्प्रदाय की धारा प्रबल रही है। पंजाब और राजस्थान में श्रीनाथ पंथी साधुओं का गायन सुना गया। दक्षिण में कर्नाटक के बसव के नेतृत्त्व में चले वीरशैव आंदोलन ने वचन साहित्य को जन्म दिया। तमिल में शैव कवियों-नायनारों की समृद्ध परम्परा रही।

भारतीय भाषा साहित्य की पहली प्रारंभिक प्रवृत्ति अगर नाथ साहित्य है तो दूसरी प्रवृत्ति है चारण काव्य। चारण काव्य अर्थात् राजप्रशस्तियाँ प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में मिलती हैं। संस्कृत में यह प्रवृत्ति पुरानी है लेकिन तमिल में भी प्रशस्तियाँ संगमकाल से प्राप्त होनी शुरू हो जाती हैं। संगम काल का समय ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी से दूसरी शताब्दी ई.पू. तक है। इस युग का प्रख्यात महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम' को चारण काव्य के अन्तर्गत रखा जाता है। यद्यपि उक्त महाकाव्य के रचयिता 'इलंगो अडिहल' ने न्याय के समक्ष राजा और प्रजा का भेद स्वीकार नहीं किया। इस महाकाव्य में मदुरै का राजा एक निर्दोष व्यक्ति को सजा देने के कारण मृत्यु का शिकार होता है। यह कथा-वैचित्र्य प्रस्तुत महाकाव्य को विशिष्ट बनाता है। मराठी का पवाड़ा साहित्य और हिंदी गुजराती का रासो साहित्य चारण काव्य के अन्तर्गत आते हैं। हिंदी के आदिकाल को जार्ज ग्रियर्सन तथा रामकुमार वर्मा ने चारण युग नाम ही दे दिया है।

भारतीय साहित्य की तीसरी प्रवृत्ति संत काव्यधारा के रूप में बही। दक्षिण में तमिल के संत कवियों की सरल बानियाँ रहस्य का पुट लिए हुए हैं। तेलुगु के कबीर वेमन कहे जाते हैं। कन्नड़ के संत कवियों में सर्वज्ञ बहुत समादृत हैं। मराठी की संत परम्परा महानुभाव और वारकरी पंथों के रूप में मिलती है। नामदेव और चोखामेळा मराठी के चर्चित संत हैं। गुजराती के संत कवियों में अखो, सहजानंद, प्रीतमदास के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। बंगाल का बाउल पंथ संत काव्यधारा का ही विस्तार है। पंजाबी में संत काव्य की बहुत समृद्ध परम्परा है। नानक देव को इस परम्परा का पुरस्कर्ता माना जाता है। हिंदी में कबीर, दादू, रविदास और पलटूदास अग्रणी संतकवि हैं।

चौथी प्रवृत्ति प्रेमाख्यानकाव्य की है। तमाम भारतीय भाषाओं के प्रेमाख्यानकों के कथावस्तु में कई स्तरों पर आश्चर्यजनक सम्पन्नता देखी जा सकती है। सूफी साहित्य इसी धारा में परिणित किया जाता है। पाँचवी प्रवृत्ति के रूप में वैष्णव काव्य की चर्चा की जाती है। भागवत धर्म से निकला वैष्णव काव्य मणिपुरी साहित्य से लेकर मलयालम साहित्य में रचा गया है। वैष्णव काव्य के उभय नायक राम और कृष्ण भारत के सांस्कृतिक जीवन के नायक भी हैं। रामभक्ति काव्य निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में मिलता है। सबसे पुराने वैष्णव कवियों में तमिल के आलवार भक्त हैं। ब्रजभाषा, बांग्ला, गुजराती और उड़िया भाषाओं में कृष्ण

काव्यधारा प्रमुखता से बही है। कृष्णलीला और रामलीला से जुड़े दृश्य-काव्य-नाट्य साहित्य और रंगमंच की व्याप्ति भी अखिल भारतीय रही है। मध्यकाल से लेकर यह परम्परा तमाम भारतीय भाषाओं में अभी भी प्रवहमान है।

प्रमुख भारतीय भाषाओं में आधुनिकता का आगमन लगभग साथ ही साथ होता है। आधुनिकता-बोध का भारतीय रूप स्वातंत्र्य-चेतना से जुड़कर आया है। सन् 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने सभी भाषाओं के रचना-पटल पर गहरा असर डाला। डॉ. नगेन्द्र आधुनिक भारतीय साहित्य के चार पड़ावों का उल्लेख इस प्रकार करते हैं 1. पुनर्जागरण, 2. राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना का उत्कर्ष (जागरण सुधार), 3. रोमानी सौन्दर्य-दृष्टि का उन्मेश तथा 4. साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय।

1.3 विषय विवेचन

साहित्य शास्त्रियों के बीच एक मान्यता यह है कि साहित्य तो मनुष्य मात्रा के लिए होता है, उसमें भारतीय, अभारतीय जैसा भेद क्यों किया जाए। यह मान्यता यद्यपि समर्थनीय है परन्तु मनुष्य ने अपने वैचारिक विकास-क्रम में जिन अर्जित अनुभवों के आधार पर साहित्य और संस्कृति की कोटियाँ बनायी हैं वे भी उपेक्षणीय नहीं है।

1.3.1 विषय विवरण

इस इकाई में भारतीय साहित्य के स्वरूप का अध्ययन, भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता, भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता, भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं का विस्तार से विवेचन - विश्लेषण भारतीय साहित्य और सिद्धांतों के आधार पर किया है जो सामान्यताः प्रस्तुत है।

1.3.2 भारतीय साहित्य का स्वरूप

भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य अगर भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आता है तो उसके ठोस कारण हैं। इन कारणों को रेखांकित करके ही भारतीय साहित्य का आशय समझा जा सकता है। ये कारण हैं:

क) तमाम भारतीय प्रांतों का साझा अतीत। यह साझापन टकराहटों, संधियों, संघर्षों, समझौतों से निर्मित है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उतार चढ़ाव से भरी राजनीतिक गतिविधियाँ अन्ततः संस्कृति और साहित्य पर असर डालती रही हैं। साहित्य का विकास राजनीतिक घटनाक्रम से अप्रभावित नहीं रह सकता है।

ख) सामाजिक संरचनाओं में एक सीमा तक अभिन्नता। समान सामाजिक पदानुक्रम अधिकांश हिस्सों में मौजूद है। जनता की चित्तवृत्ति के निर्माण में इसकी केन्द्रीय भूमिका रही है। साहित्य लेखन इस चित्तवृत्ति की जमीन पर ही हुआ।

ग) समान साहित्यिक और शास्त्रीय स्रोत। अधिकांश भारतीय भाषाओं के साहित्य का उपजीव्य एक है और वे समान काव्यशास्त्रीय मानदण्डों से सम्बद्ध होते हैं। इन उपजीव्य काव्यों और शास्त्रों का 'अनुवाद' सभी प्रमुख भाषाओं में होता रहा है।

घ) समान साहित्यिक आंदोलनों से जुड़ाव। साहित्यिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के अखिल भारतीय स्वरूप का सबसे अच्छा उदाहरण मध्यकालीन भक्ति आंदोलन है।

जिस महादेश में थार जैसा रेगिस्तान हो, हिमाच्छादित प्रान्त हों, चेरापूँजी जैसा वर्षा क्षेत्र हो और समुद्र की गोद में बसे हुए इलाके हों वहाँ की जीवन-शैली समरूप नहीं हो सकती। रहन-सहन में इतनी भिन्नता शायद ही कहीं और देखने को मिले। लेकिन, यह भी सच है कि जीवन-मूल्यों में जैसी समानता इस भिन्नता के आवरण के भीतर मौजूद है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन के लगभग एक से आदर्श, संस्कारों में समानता, स्थिति-विशेष में अभिन्न प्रतिक्रिया इस देश के समस्त भूभाग को आपस में जोड़ती है। आपको एक-सी बोध-कथाएँ सब जगह सुनने को मिलेंगी। लोक-गीतों, संस्कार गीतों में समान भावनाएँ प्रवाहित दिखेंगी। दृष्टांतों की अन्तर्वस्तु प्राय: एक-ही आदर्श को स्वीकारती प्रतीत होगी। पंचतंत्र, जातक, रामायण और महाभारत की कथाएँ इस देश की मिट्‌टी-पानी में घुली हुई हैं। ज्ञानानुशासनों के, शास्त्रीय मानदण्डों के स्रोत भी लगभग समान हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी, वात्स्यायन का कामसूत्र, धर्मशास्त्र, चिकित्साशास्त्र और धनुर्वेद के ग्रंथ सबके लिए संदर्भ रूप रहे हैं। साहित्यशास्त्र के आचार्य कुछ बुनियादी बातों पर सहमत दिखायी पड़ते हैं। उदाहरण के लिए हम व्याकरण को ले सकते हैं। काव्यशास्त्र के प्राचीनतम आचार्यों में से एक भामह (पाँचवीं-छठी शताब्दी) पाणिनी व्याकरण को श्रद्धा की चीज बताते हैं - 'श्रद्धेयं जगति मतं हि पाणिनीयं' (काव्यालंकार पृष्ठ 63)। वामन (नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) इसी मत का अनुकरण करते हैं। उनके लगभग समकालीन ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन का कहना है : 'व्याकरण-मूलत्वात सर्वविद्यानाम्'। सभी विद्याओं का मूल व्याकरण है। काव्य के लिए व्याकरण की अपरिहार्यता निर्देशित करते हुए काव्यमीमांसाकार राजशेखर (दसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) लिखते हैं : 'शब्दानामन्वाख्यानं व्याकरणम्'। शब्दों की सिद्धि करना व्याकरण का प्रयोजन है। इसी तरह से कुछ अन्य बुनियादी मसलों पर भारतीय साहित्याचार्यों में सहमति देखी-ढूँढी जा सकती है। यह संदर्भगत सहमति भारतीय साहित्य की निर्मिति का एक आधार है। लेकिन, भारतीय साहित्य का प्रमुख आधार काव्यशास्त्रीय मानदण्डों पर दीर्घकालिक विमर्श है। केरल से लेकर कश्मीर तक की साहित्यिक कृतियों की समालोचना के प्रतिमानों का कभी कोई क्षेत्रीय रूप नहीं बना। यह अवश्य है कि काव्यशास्त्र के अधिकांश प्रांरभिक आचार्य कश्मीर प्रांत के थे पर उनके लिखे ग्रंथ भारत भर के काव्य रसिकों के बीच समादृत थे। संस्कृत को बेशक ज्यादा महत्त्व मिला हो, परन्तु भाषा के संबंध में ऊँच-नीच का भाव, उपेक्षा और बहिष्कार की प्रवृत्ति प्राय: नहीं रही है। वाङ्मय के भीतर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का परिगणन किया जाता रहा है। कुछ आचार्य (जैसे दण्डी) मिश्र भाषा को भी इन तीन भाषाओं के बाद जोड़ते हैं। काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में लक्षण-विवेचन-उदाहरण के प्रसंग में प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाएँ उसी समादर के साथ उद्धृत की जाती रही है जिस तरह संस्कृत की। नाटकों में तो भाषिक वैविध्य के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध ही हैं। काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदायों-अलंकार रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य का प्रसार प्रांतीय न होकर अखिल भारतीय रहा है। इसी तरह वे किसी भाषा-विशेष के काव्य शास्त्रीय सम्प्रदाय के रूप में सीमित नहीं रहे हैं। सहूलियत के लिए भले ही उन्हें संस्कृत का काव्यशास्त्र कह दिया जाता हो, परन्तु वे भारतीय वाङ्मय के काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय हैं। आज भी तमाम

आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य का इनसे गहन संबंध बना हुआ है। मराठी, बांग्ला, हिंदी, कन्नड़ जैसी भाषाओं का काव्यशास्त्र तथाकथित संस्कृत काव्यशास्त्र से कितना भिन्न है यह विचार का विषय है। भारतीय साहित्य की निर्मिति का यही आधार है। सघन संवाद के लम्बे इतिहास ने इसे निरंतर जीवंत रखा है, विस्तृत किया है और पुख्ता बनाया है।

1.3.3 भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता

प्रत्येक समाज की अपनी गतिकी होती है। समाज का गतिविज्ञान समझने के लिए उसकी आधारभूत संरचनाओं, मूल्यों, विश्वासों या समग्र जीवन-पद्धति का अध्ययन जरूरी होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन आधारभूत संरचनाओं की आपसी टकराहट के परिणाम होते हैं। समाज का प्रतिबिम्ब होने के नाते साहित्य इन टकराहटों का संचित कोष बनता है। भारतीय आंदोलन और भारतीय साहित्य इसी तर्क से परस्पर जुड़ते हैं और उनके इस जुड़ाव का असर अनुवाद-कार्य पर दिखायी देता है।

किसी भी समाज में उठने वाले आंदोलन उस समाज की संकटापन्न स्थिति के सूचक होते हैं। सामान्य स्थितियों में किसी समाज के सदस्य आंदोलनोंन्मुख नहीं हुआ करते। लोग जब किसी बड़ी दिक्कत से रूबरू होते हैं तो उसके प्रतिकार हेतु संगठित एवं सक्रिय होते हैं। ऐसी प्रतिकारपूर्ण सक्रियता और संगठन आंदोलन कहा जाता है। संकट भीतरी होता है और बाहरी भी। कभी-कभी दोनों की मिली-जुली स्थिति भी दिखायी पड़ सकती है। भारत के आंदोलनों को ध्यान में रखकर कहें तो यहाँ प्रारंभ में आंतरिक संकटों के परिणामस्वरूप आंदोलनों का जन्म हुआ। ये आंतरिक संकट धर्म और सामाजिक पदानुक्रम से उपजे थे। बौद्ध मत तथा जैनधर्म पारम्परिक हिन्दू/ब्राह्मण धर्म में आई विकृतियों से जूझने के क्रम में पनपे। कर्मकाण्ड, यज्ञ आदि का आयोजन तथा उसमें की जाने वाली हिंसा ने जिन लोगों के मन में वितृष्णा पैदा की, उन्होंने बौद्ध तथा जैन धर्मों की शरण ली। ये नास्तिक मत कहे गए। बौद्धधर्म ने ब्राह्मण सर्वोच्चता का पुरजोर खण्डन किया, 'जनभाषा' पालि में अपनी शिक्षाएँ दीं और बौद्ध विहारों की व्यवस्था करके वैकल्पिक स्थान उपलब्ध करवाया। समाज के निम्न वर्गों का उसके प्रति रूझान होने की ये प्रमुख वजहें थीं। यह आंदोलन राज्याश्रय पाकर भारत की सीमा लांघकर वैश्विक भी हुआ। संस्कृति और सामाजिक संरचना पर बौद्ध आंदोलन का व्यापक और गहरा असर पड़ा। बौद्ध मत जिसे 'धम्म' कहा जाता है कालान्तर में दो टुकड़ों में बंटा हीनयान और महायान। महायान अपनी उदारवृत्ति के चलते अधिक लोकप्रिय रहा। विभिन्न कलाओं पर उसकी उल्लेखनीय छाप पड़ी। जैनधर्म अपनी साधनापरक कठिनता के चलते बौद्ध धर्म जितना फैल नहीं सका। मगर, उसकी धारा हमेशा बनी रही। उसमें बौद्ध धर्म की तरह विशृंखलता नहीं आयी। इसके बाद भक्ति आंदोलन ने अखिल भारतीय स्तर पर सक्रियता हासिल की। इस आंदोलन के जन्म के कारण में आंतरिक कारणों के साथ बाह्य कारणों का भी योग रहा है। विद्वानों ने इस्लाम धर्मानुयायी आक्रमणकारियों को भक्ति आंदोलन के उदय में महत्वपूर्ण कारक के रूप में देखा है साथ ही तथाकथित निम्न जातियों-शिल्पकारों, दस्तकारों की परिस्थितिगत बदलाव के चलते मुखर होती आत्माभिव्यक्ति, धर्म के मुहावरे में समाजिक बराबरी की माँग को भी उत्तरदायी माना है। भक्ति आंदोलन के बाद अगला आंदोलन राष्ट्रीय मुक्ति का स्वतंत्रता आंदोलन है। इस आंदोलन का परिप्रेक्ष्य राजनीतिक है। औपनिवेशिक सत्ता से संघर्ष करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन के

नेताओं ने आंतरिक प्रश्नों पर भी ध्यान दिया और सामाजिक सुधार तथा सांस्कृतिक परिवर्तन के आंदोलन भी चलाए। स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) से एक दशक पहले ही प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत हो गयी थी जो स्वतंत्र भारत के आरंभिक वर्षों में पूरी ऊर्जा के साथ दिखा। साहित्य और कला रूपों पर इसका उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। राजनीति के मुहावरें को इस आंदोलन ने बहुत भीतर तक परिवर्तित किया।

भारत की सांस्कृतिक एकता का निर्माण और प्रस्फुटन आंदोलनों के दौरान होता रहा है। इस एकता की अभिव्यक्ति सबसे ज्यादा साहित्य में हुई है। साहित्य की भूमिका का आंदोलनों के संदर्भ में विवेचन करें तो पाएँगे कि एक ओर वह आंदोलन की मानसिकता के निर्माण में सहायक बनता है तो दूसरी ओर आंदोलन की प्रक्रिया तथा परिणति का दस्तावेज भी होता है। आंदोलन में सक्रिय विभिन्न शक्तियों के संघात-प्रतिघात की बारीकियों को जानने का विश्वनीय माध्यम साहित्य ही होता है। बौद्धधर्म के आंदोलन ने पालि में प्रभूत साहित्य का सृजन किया। पाली (गाँव की बोली) इसकी वजह से समादृत भाषा बन गयी। आज भी जीवित भाषा के रूप में समाप्त होकर पाली अगर अध्ययन का विषय बनी हुई है तो बहुत कुछ बौद्धधर्म की बदौलत ही। पाली में संग्रहित वचनों का संस्कृत में अनुवाद करने से स्वयं गौतमबुद्ध ने निषेध किया था, लेकिन कालान्तर में बौद्ध साहित्य और दर्शन ग्रंथों की रचना पालि में हुई। 'बुद्धचरित' जैसा विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य तथा वज्रसूची जैसे तीक्ष्ण विवेचन वाला ग्रंथ संस्कृत में ही रचा गया। बौद्ध आंदोलन ने भारतीय साहित्य के निर्माण में महती भूमिका निभायी है। जैन कवियों ने भी उपदेशपरक काव्य के अतिरिक्त प्रबंधात्मक रचनाओं से साहित्य का भंडागार समृद्ध किया है।

भारतीय साहित्य का निर्माण अगर किसी आंदोलन ने किया है, तो वह निस्संदेह भक्ति आंदोलन है। अलग-अलग भाषाओं में मध्ययुगीन संत कवियों ने एक ही चेतना को शब्द दिए। यह चेतना अपनी बनावट और स्वभाव में अखिल भारतीय थी। नामदेव ने मराठी भाषी होकर हिंदी में भी रचनाएँ कीं और कबीर तमाम प्रांतों में वहाँ के रंगों में ढाल दिए गए और उनकी रचनाएँ उन प्रांतीय भाषाओं में गायी। रचना और रचनाकार से ऐसी छूट पहले या बाद में कभी नहीं ली गई थी। कबीर ने पोथी के प्रभुत्त्व को ललकारते हुए कहा था कि मैं 'आँखिन देखी' कहता हूँ। 'कागद लेखी' (शास्त्रों की पोथियाँ) उलझाने वाली होती हैं। यह बल कबीर ने तत्कालीन जन-मानस की बदली प्रवृत्ति से भी ग्रहण किया होगा। उनका अपना साहस तो था ही। तुलसीदास ने साहित्य की आंदोलनधर्मी परिभाषा निर्धारित करते हुए कहा कि वही साहित्य कीर्तिवान होता है जो गंगा की तरह सबका भला करे,

'कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।'

हिन्दुओं और मुसलमानों में सामंजस्य तथा सौमनस्य पैदा करने के लिए सूफी कवियों की एक शृंखला ही बन गयी। हिन्दू घरों में प्रचलित प्रेम कथाओं को इन सूफियों ने अपने प्रेमाख्यानों का आधार बनाया और प्रेम की धारा प्रवाहित की।

स्वतंत्रता आंदोलन ने साहित्य की भंगिमा ही बदल दी। भक्ति आंदोलन ने जिस भारतीय साहित्य का स्वरूप निर्मित किया था स्वतंत्रता आंदोलन ने उसे विशिष्ट तेवर प्रदान किया। आंतरिक और वाह्य औपनिवेशिक दबाव से जूझने के क्रम में राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ जिसने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को एक व्यक्तित्व देकर सांस्कृतिक पुनरोदय–नवजागरण की चेतना से सम्पृक्त किया। प्रगतिवादी आंदोलन ने इस चेतना का विस्तार करते हुए भारतीय साहित्य को वैश्विक संदर्भों से जोड़ा और किसान–मजदूर की चिंता को प्राथमिक बनाकर आंदोलनधर्मी साहित्य का नया दौर प्रारंभ किया। परवर्ती आंदोलन इसी के प्रभाव को अपनाते हुए अलग–अलग दिशाओं में आगे बढ़े।

आंदोलन, साहित्य और अनुवाद का भारतीय संदर्भ :

थाओं का लोकानुवाद अनुवाद के किसी आधिकारिक इतिहास में नहीं मिलेगा। इसे समझने के लिए इतिहास, साहित्य और अनुवाद की अपनी जड़ी भूत धारणा को उदार बनाना होगा।

स्वतंत्रता आंदोलन, राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण और अनुवाद:

राष्ट्र के रूप में भारत की परिकल्पना औपनिवेशिक काल में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान की गयी। यूरोप को मॉडल के रूप में देखा गया। एकल संस्कृति वाले यूरोप के राष्ट्र–राज्य (नेशन–स्टेट) और बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक के बीच का बुनियादी फर्क कई बार नजर अंदाज भी किया गया। एक राष्ट्र के रूप में भारत की जो अस्मिता बन रही थी उसमें औपनिवेशिक दृष्टि की निर्णायक भूमिका थी। भारत जो वास्तव में था वह एक तरफ और जिस भारत को औपनिवेशिक शक्ति के प्रतिनिधि गढ़ रहे थे वह दूसरी तरफ। यह औपनिवेशिक गढ़ंत ज्यादा प्रभावशाली रही। राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में शामिल भारतीयों ने प्रदत्त चश्में से खुद को, अपनी परम्परा को, अपनी सभ्यता–संस्कृति को देखा। इसके मिश्रित परिणाम निकले। यूरोपीय पुनर्जागरण की रोशनी में, प्रबोधन कालीन ज्ञान की यत्किंचित प्रेरणाओं से इस निर्माणाधीन राष्ट्र में समाज सुधार के आंदोलन चले। 'समाजों' (ब्रह्म समाज, थियोसॉफिकल सोसायटी, प्रार्थना समाज आदि) का निर्माण हुआ। इन्हीं हलचलों के बीच नयी भारतीयता बनी। नया साहित्य रचा गया। जिसे हम आज 'भारतीय साहित्य' कहते हैं वह औपनिवेशिक काल की ही उपज है। अंग्रेजों, पुर्तगालियों, डचों और फ्रांसीसियों (जिनके उपनिवेश इस देश में स्थापित थे) के लिए भारत एक 'वास्तविक' स्थिति थी। भारतीय इतिहास, भारतीय जन, भारतीय संस्कृति जैसे पदबंध तभी चलन में आए। 'भारतीय साहित्य' पदबंध और अवधारणा भी तभी निर्मित हुई। इस निर्मित में अनुवादों की निर्णायक भूमिका है। भारतीय ग्रंथों का यूरोपीय भाषाओं में बड़े पैमाने पर अनुवाद हुआ। इससे भारत की एक छवि अस्तित्त्व में आयी। अनुवादकों के पूर्वग्रह और निहित–प्रकट स्वार्थ भी इस समूची प्रक्रिया में सक्रिय रहे। ईसाई मिशनरियों द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में किए जाने वाले अनुवादों, खासकर बाइबिल के अनुवाद ने इन भाषाओं में अभिनव गद्य का निर्माण किया। प्रिंटींग प्रेस की स्थापना से बड़े पैमाने पर प्रकाशन संभव हुआ और गद्य लेखन की धारा जोर–शोर से चल निकली। गद्य के विकास और अनुवादों की बढ़ोत्तरी में गहरा संबंध है।

भारतीय विद्वानों और साहित्यकारों ने नवोदित राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप नए साहित्य के सृजन पर बल दिया और अनुवादों की जरूरत रेखांकित की। ये अनुवाद यूरोपीय भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी से अभिशप्त थे। इसके साथ भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवादों पर खासकर जोर दिया जा रहा था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1885) रवीन्द्रनाथ टैगोर (1867-1941) और सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) की अनुवाद की आवश्यकता से जुड़ी चिंताएँ इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 1877 में लिखा, ''पै सब विद्या की कहूँ होई जु पै अनुवाद।''

निज भाषा मँह तो सबै याको लहै सवाद।। अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढेर। खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर।। (भारतेन्दु ग्रंथावली पृ. 736) टैगोर ने बांग्ला और भारती ने तमिल भाषा में अनुवाद की गति-प्रगति पर बल दिया। इनके सरोकारों के केन्द्र में अपनी-अपनी भाषाओं की उन्नति के साथ भारतीय साहित्य और अंततः भारत के स्वत्व की प्रतिष्ठा का लक्ष्य था।

स्वतंत्र भारत के साहित्यिक आंदोलन और अनुवाद

भारत को राजनीतिक स्वाधीनता मिलने के बाद यहाँ के बौद्धिक और साहित्यिक परिदृश्य में निर्णायक परिवर्तन की जमीन तैयार हुई। लेखकों और विद्वानों ने औपनिवेशिक निर्मितियों के दुष्प्रभावों को पहचानने और उनसे मुक्त होने की क्रमिक और सजग कोशिश की। प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत आजादी प्राप्ति से पहले हो चुकी थी। वह स्वाधीन भारत का पहला बड़ा आंदोलन भी बना। इस आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय होने के साथ सच्चे अर्थों में अन्तरराष्ट्रीय था। आंदोलन से जुड़े लेखकों ने साम्राज्यवादी-सामंतवादी शक्तियों के विरुद्ध कलम चलायी और इस विरोध को ऊर्जा देने वाले साहित्य का अनुवाद बड़े पैमाने पर किया। इस दौर में भारतीय साहित्य का विश्व साहित्य से सम्पर्क गहरा हुआ। तालस्ताय, दोस्तोव्स्की, गोर्की की रचनाएँ सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई। गोर्की का उपन्यास 'माँ' पढ़कर क्रांतिदर्शी भारतीयों की एक समूची पीढ़ी ही बड़ी हुई है। इधर भारतीय रचनाकारों जैसे प्रेमचंद का विश्व की तमाम भाषाओं में अनुवाद हुआ। अध्यात्म की छवि से मुक्त भारत की नयी छवि का निर्माण इसी दौर में हुआ।

अस्सी के दशक में उभरे नारीवादी लेखन और आंदोलन ने अनुवाद की गति को आगे बढ़ाया और भारतीय साहित्य में जेण्डर के प्रश्न को प्राथमिक प्रश्न बना दिया। इसी के साथ दलित आंदोलन भी उभरा और साहित्यिक सक्रियता तथा वैचारिक क्रियाशीलता की नयी ऊँचाई दिखायी पड़ी। मराठी-हिंदी दलित साहित्य के मशहूर अनुवादक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे ने अनुवाद के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए लिखा है जब-जब वर्ण व्यवस्था के विरोध में आंदोलन होने लगते हैं समता का जब-जब आग्रह होने लगता है, विषमतावादी समाज व्यवस्था के विरोध में जब विद्रोह की मशाल जलायी जाती है तब यहाँ के सृजन में मौलिकता आने लगती है। अन्य भाषाओं में स्थित उत्कृष्टकृतियों के अनुवाद का प्रयत्न शुरू हो जाता है। (अनुवाद का समाजशास्त्र, पृ. 20) विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में भारतीय दलित साहित्य का जब से समावेश किया जाना आरंभ हुआ है तब से दलित साहित्य की कृतियों का अनुवाद अधिकाधिक गतिमय

हुआ है। आज आदिवासी साहित्य और प्रवासी साहित्य के सृजन-परिदृश्य में आ जाने से अनुवाद के क्षेत्र में संभावनाओं के नए क्षितिज दिखायी पड़ रहे हैं। भारतीय साहित्य की पहचान का यही समकालीन परिप्रेक्ष्य है।

1.3.4 भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ

भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं पर विचार विमर्श आवश्यक है। निम्नलिखित बिन्दुओं को समझ सकेंगे तभी हमें समस्याओं को सुलझाने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

- भारतीय साहित्य की विशालता।
- भारतीय साहित्य की संकल्पना की संभावना।
- बहुभाषी समाज।
- सांस्कृतिक बहुलता
- बहु-जातीयता
- राष्ट्रीयता एवँ भारतीयता
- तुलनात्मक अध्ययन
- अनुवाद, भाषांतर, रूपांतर
- भाषा समन्वय
- शिक्षण - अध्ययन एवं अध्यापन की दशा और दिशा

भारतीय साहित्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने का प्रयास लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से आरंभ हुई। इसका नियमित अध्ययन और अध्यापन 20 वीं सदी के उत्तरार्ध से होने लगा। आधुनिक काल में 'राष्ट्र' की नूतन संकल्पना उभर कर आयी। इस अमूर्त धारणा को मूर्त रूप देने के लिए अनेक परिभाषाएँ की गई जिन पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं।

इसी संकल्पना के तहत भारतीयता को निरूपित करने के लिए 'भारतीय साहित्य' की संकल्पना भी साकार होने लगी।

परंतु राष्ट्रवाद के भव्य महाख्यान के बीच ही 'भारतीय साहित्य' की संपल्पना का जन्म हुआ है। अंग्रेजो की पराधीनता से मुक्ति प्राप्त करने के ले भारतीय प्रायद्विप में फैले विभिन्न प्रांत को एकसूत्र में बाँधने के लिए भारत नामक राष्ट्र का जन्म हुआ। स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता के लिए क्रंतिकारी संघर्ष और अहिंसात्मक सत्याग्रह किए गए।

- उपनिवेशवाद से उपजे पिछड़ेपन से जूझना पड़ा।

- सामंती संस्कारों का अंत नहीं हुआ।
- पूँजीवादी व्यवस्था औद्योगिक विकास की ओर प्रवृत हुआ।
- बिखरते गाँव और महानगरों का अनियोजन विस्तार हुआ।

वस्तुतः अनेक राज्यों वाले एक संघ देश के रुप में भारत साकार हुआ जिसमें अनेक दलों से युक्त प्रजातंत्र पनपा। यह देश पौराणिक, मध्यकालीन, सामंतकालीन, आधुनिक और भूमंडलीकरण की पूँजीवादी संस्कृति का मिश्रित परिणाम है।

इस प्रकार इस भारत नामक भौगोलिक इकाई के भीतर अनेक भाषाओं में रचे गए साहित्य को भारतीय साहित्य के अंतर्गत संकलित करना अत्यंत कठिन है। क्योंकि भारतीय साहित्य भी भारत के अनुरूप बहुभाषिक, बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक है। जिसकी चेतना को समझने के लिए परिभाषा पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे महसूस करने की क्षमता आवश्यक है।

इस संदर्भ में प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने वाले केरल के साहित्यकार जी. शंकर कुरूप का कथन अत्यंत प्रासंगिक है-

''भारतीय साहित्य परंपरा से मेरा मतलब संकेतों एवं सिद्धांतों से नहीं। प्रत्येक शिशिर के बीत जाने पर आगामी बसंत के आतप प्रकाश को आत्मसात करने की प्रेरणा देते हुए नवीन विकास का आरंभ करने वाले वृक्षों का आमूलगत प्रसूत होने वाला जीवरस है ।''

इस प्रकार भारतीय साहित्य विस्तृत है और उसे प्रगुणात्मक माना गया है और राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर की पँक्तियों में परिलक्षित होता है-

भारत नहीं स्थान का वाचक
गुण- विशेष नर का है
एक देश का नहीं
शील वह भूमंडल भर का है।

परंतु अनेक पश्चिमी विद्वानों का मत इससे भिन्न भी है। पश्चिम में बसे प्रवासी भारतीय विद्वान नीहार रंजन रे भी भारतीय साहित्य की आवधारणा से असहमत हैं। उनके मतानुसार भारत के भाषा-वैविध्य की दृष्टि से साहित्य की अस्मिता उसकी भाषा में ही निहित है। इसी प्रकार कार्लटन कॉलेज के अर्नाब चकलादर अपने लेख 'लेंग्वेज, नेशन दि क्वश्चन ऑफ इंडियनलिटरेचर' में लिखते हैं कि भारतीय साहित्य के सर्वज्ञत होने का दावा करना बहुत कठिन है। दूसरे शब्दों में भारतीय साहित्य का अध्ययन हमेशा आंशिक ही होता है क्योंकि अनेक भाषाओं का ज्ञान कम लोगों को होता है। परंतु समस्यों भारतीय साहित्य के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण अंग है।

भारतीय साहित्य का अर्थ–

डॉ. इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार भारतीय साहित्य के तीन अंग है–

1. संस्कृत साहित्य
2. भारतीयों द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखा साहित्य
3. विभिन्न प्रांतीय भाषाओं जैसे हिन्दी, बंगला, मराठी, तमिल आदि में लिखा गया साहित्य जिनमें विषय एवं भागवत एकसूत्रता स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

वी. के. गोकाक के अनुसार–

''साहित्य की शैली, कथ्य, पृष्ठभूमि, बिंबविधान, काव्यरुप, संगीत तथा जीवन दर्शन सब मिलकर एक अभिन्न तत्त्व के रूप में भारतीय साहित्य को भारतीयता में प्रकट करते हैं।''

डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि – ''भारतीय वाङ्मय एक है जो विविध भाषाओं में रचा गया है।''

उपनिवेशवाद और आधुनिकता द्वारा शिक्षा संस्थानों की स्थापना से पहले

भारतीय विद्वान डॉ. सत्यभूषण वर्मा भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हैं:–

''भारतीय साहित्य की परिकल्पना अभी हमसे दूर है। भारतीय साहित्य के नाम से जो ग्रंथ अकादमियों आदि द्वारा प्रकाशित होते हैं, उनमें भी अलग–अलग भाषा साहित्यों की चर्चा है, परंतु संपूर्ण भारतीय साहित्य की अंतर्धाराओं पर अधिक विचार नहीं किया गया है। भारतीय साहित्य की परिकल्पना में सबसे बड़ी बाधा अन्य साहित्यों की सीधी जानकारी की कमी है।''

''डॉ. रामविलास शर्मा प्राचीन संस्कृत साहित्य, पाली या अपभ्रंश साहित्य को भारतीय साहित्य नहीं मानते हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य को भी भारतीय कहना वे युक्तिसंगत नहीं समझते। उनका कहना है कि अंग्रेजों से स्वाधीनता पाने के भारतीय जनता ने एकता कायम रखी थी, इस तरह भारतीय साहित्य के इतिहास का अर्थ होगा अंग्रेजी और संस्कृत में भारतवासियों द्वारा लिखे हुए साहित्य का इतिहास। इसमें वह संस्कृत साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो 20 वीं शती में, विशेषतः उसके – उत्तरार्ध में रचा गया है। इसके अतिरिक्त और किसी साहित्य को भारतीय साहित्य नहीं कहा जा सकता।''

इस प्रकार परस्पर विरोधी परिभाषाएँ भारतीय साहित्य की संकल्पना को धुँधला करती है।

इस प्रकार भारतीय साहित्य के अध्ययन में अनेक समस्याएँ हैं–

1. अनेक भाषाएँ
2. विविध विधाओं में हजारों रचनाएँ
3. वर्गीकरण में समानता की सीमाएँ

4. अनुवाद की समस्याएँ

5. तुलनात्मक अध्ययन की विपुलता

शिक्षण की दशा और दिशा–

विश्वविद्यालयों में एम. ए. के पाठ्यक्रम में एक पर्चे के रूप में इसे पढ़ाया जाता है। स्कूल के स्तर पर ही इसकी नींव रखी जानी चाहिए। भूमंडलीकरण, कंप्यूटर और इंटरनेट आदि गया है। रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को आकर्षित कर सकेगा। भारतीय साहित्य की विशालता अध्यापन को सीमित कर देती है। कुशल अनुवादकों की कमी है। श्रेष्ट अनुवादकों को लक्ष्य एवं स्त्रोत भाषा के साथ-साथ समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज, बोल-चाल के व्यवहारिक भाषा ज्ञान का भी उचित प्रशिक्षण देने के ले कार्यशालाएँ तथा यात्राओं द्वारा विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए। भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिए स्वतंत्र विभाग की स्थापना ही इस महती कार्य को साकार कर सकती है।

भाषांतरण एवं रूपांतरण

भाषांतरण एवं रूपांतरण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण रामायण और महाभारत का है। इनका भाषांतरण एवं रूपांतरण आसेतु हिमाचल मिलता है। देशभर की भाषाओं में रामायण रचा गया है। बांग्ला में 'कृतिवास रामायण', उडिया में 'विलंका रामायण', तमिल में 'कम्ब रामायण', कन्नड में 'तोरने रामायण' आदि। इसी प्रकार महाभारत भी अनेक भाषाओं में रचा गया है।

इन पर आधारित महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, लोकगीत उपलब्ध हैं।

फारसी की रचनाएँ जेसे 'अरबी राते' (अरे बियन नाइट्स) 'सिंदबाद जहाजी', 'अलीबाबा चालीस चोर' अत्यंत लोकप्रिय हैं। अरबी-फारसी भारतीय जीवन का अंतर्भाग है ।

उमर खाय्याम की रुबाइयाँ, गुलिस्ताँ बोस्ताँ, खलिल जिब्रान की लघुकथाएँ भी भारतीय साहित्य में अंतर्निहित है।

धर्म, दर्शन और विभिन्न संप्रदायों से संबंधित साहित्य का विशाल भंडार भारतीय जनता के दैनंदिन जीवन में समाहित है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश का विपुल साहित्य की दीर्घ परंपरा निरंतर प्रवाहित होती आ रही है। संस्कृत के कालिदास, बाणभट्ट, भास, अश्वघोष, भवभूति, जयदेव, राजशेखर जैसे रचनाकारों का रचनाएँ धूमिल नहीं हुई है। सिद्ध, नाथ, जैन, नाथ परंपराएँ जीवंत हैं। शैव, वैष्णव, शाक्त संप्रदायों के विचारों ने गहरी छाप छोड़ी है । द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्त, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, चार्वाक दर्शन के विद्वान देशभर में व्याप्त हैं।

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्क आदि की अनुगूँज अनेक भाषाओं और बोलियों में मिलती है। भक्ति-युग में भाषा का आदान-प्रदान महत्त्वपूर्ण है। केरल में जन्मे शंकराचार्य, ने कश्मीर तक यात्रा की।

मुगल शासनकाल भाषा के आदान-प्रदान की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। दक्षिण में आज भी दक्खिनी भाषा का प्रचलन है जिसमें साहित्य भी समृद्ध है। इसी प्रकार सूफी काव्य परंपरा आज भी जनमानस में बसी हुई है। उर्दू साहित्य की समृद्ध और शेरों-शायरी और गज़ले भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग हैं। यह सब भाषांतरण एवं रुपांतरण से ही संभव हुआ है और आज भी हो रहा है।

अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय साहित्य को सम्यक रूप से संकलित करने में अनुवाद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनवाद की प्राचीन परंपरा रही है परंतु 21 वीं सदी को अनुवाद युग कहा जाता है। इस कार्य में व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि संस्थाओं का भी योगदान है। इनमें प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

- भारतीय ज्ञानपीठ न्यास (बनारस, 1944 में स्थापित)
- केन्द्रीय साहित्य अकादमी (1954, दिल्ली)
- के.के. बिड़ला फाउंडेशन (1991, दिल्ली)
- जोशुवा फाउंडेशन (तेलुगु कवि मुर्रम जोशवा की स्मृति में स्थापित)
- भारतीय भाषा परिषद् (कोलकता)
- कथा (दिल्ली)

इन अकादमियों ने पुरस्कार, अनुवाद, प्रकाशन, पत्रिकाओ एवं संगोष्ठियों के माध्यम से भारतीय साहित्य के प्रति समर्पित रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का आरंभ 19 वीं सदी के उत्तरार्ध से होता है। यह भारतेन्दु कहलाता है। भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने अनुवाद का बृहत कार्य का आरंभ किया थ। राजा लक्ष्मण सिंह ने संस्कृत के 'रघुवंश' और 'मेघदूत काव्य' का अनुवाद किया था। इसी प्रकार 'ऋतुसंहार', 'कुमार संभव', 'नारद भक्ति-सूत्र' आदि अनूदित कृतियाँ मिलती हैं।

संस्कृत, बंगला से अनूदित नाटकों की बहुलता हैं। 'उत्तर रामचरित', 'अभिज्ञान शाकुंतलम', 'प्रबोध चंद्रोदय', 'मृच्छकटिक', 'रत्नावली', 'वेणीसंहार' आदि संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया गया।

बांगला से सर्वाधिक अनुवाद माइकेल मधुसूदन के नाचकों के हुए और उपन्यसों में बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यासों का अनुवाद हुआ श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ द्वारा रचित हरमिच 'डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद एकांतवासी योगी, 'ऊज़ट ग्राम' के नाम से किया था।

जगन्नथ दास 'रत्नाकर' (1866-1932) के पिता भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अंतरंग मित्र थे। वह उर्दू-फारसी के विद्वान ही नहीं हिन्दी कविता के प्रेमी थे। ये उर्दु, फारसी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, बांग्ला, भाषाओं के ज्ञाता थे। बहुभाषी ज्ञान रखनेवाले साहित्यकारों के उत्तम उदाहरण हैं।

भारतीय साहित्य के विकास के लिए अनुवाद अनिवार्य साधन है। अनुवाद में काव्यानुद सबसे कठिन है। काव्यानुवाद पुनः सृर्जन की प्रक्रिया है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समान ही तेलुगु साहित्य में कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु का योगदान रहा।

1.3.5 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता

भारतीय साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। यही कारण है कि भारत की जनसंख्या बहुधर्मी – बहुजातीय एवं बहुभाषी होने के बाद भी राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर है। इसका श्रेय साहित्य को ही जाता है। वर्तमान साहित्य में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना को लेकर छटपटाहट देखी जा सकती है। विभिन्न भाषाओं में लिखी गई विधा या भारतीय साहित्य विभिन्न भाषा में लिखा गया भारतीय साहित्य भारतीय समाज के स्वरूप को प्रतिबिंबत करता है। भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संरचना एवँ उनके प्रभाव का दस्तावेज है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में अनेक विषयों पर साहित्य लिखा गया है। महानगर हो, ग्राम हो, नारी, दलित, आदिवासी, धर्म विमर्श आदि अनेक विषयों द्वारा भारतीयता का बिंब उभरता है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इंडियन इंग्लिश अर्थात् भारतीय अंग्रेजी लेखन और प्रवासी भारतीय लेखन द्वारा भी भारत की छवि उभरती है।

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता और राष्ट्रीयता

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का देश है – उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू, पूर्व में ओडिआ, बंगाली और असमिया, मध्य–पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, कन्नड़, मलयालम और तेलुगु आदि हैं। इनके अतिरिक्त और भी भाषाएँ हैं जिनका साहित्य और भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं हैं। जैसे– कश्मीरी, डोगरी, सिन्धी, कोंकणी, तूरू आदि हैं पंजाबी और सिन्धी, इधर हिंदी और उर्दू की प्रदेश सीमाएँ कितनी मिली जुली हुई हैं। इसी प्रकार मराठी और गुजराती का जन जीवन ओत प्रोत है, किन्तु क्या उनके बीच में किसी प्रकार की भांति सम्भव है! दक्षिण भाषाओं का उद्गम एक है: सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं। परन्तु क्या कन्नड़ या मलयालम या तमिल और तेलुगु स्वरुप के विषय में शंका हो सकती है! यही बात ओडिया, बंगला और असमिया के विषय में सत्य है। बंगला के गहरे प्रभाव को पचाकर असमिया और ओडिया अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व को बनाये हुए हैं।

दक्षिण में तमिल और उर्दू को छोड़ भारत की लगभग सभी भाषाओं का काल प्रायः समान है। प्रायः सभी भाषाओं का आदिकाल पंद्रहवीं सदी तक चलाया। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्य का विकास लगभग एक सा है; सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त है।

अब साहित्य की पृष्ठाधार पर बात की जाये तो भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं हैं, फिर भी उनका साहित्यिक समान है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात साहित्य, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला शास्त्र के अंतर्गत उपनिषद, षडदर्शन, स्मृतियाँ आदि और उधर काव्यशास्त्र के

अनेक ग्रन्थ – 'नाट्यशास्त्र', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', 'रसगंगाधर' आदि की विचार-विभूति का उपयोग भी सभी ने निरंतर किया है।

यहाँ पर इन समान प्रवृत्तियों का संक्षेप में विश्लेषण कर लेना समीचीन होगा

सबसे पहली प्रवृति जो भारतीय वाङ्मय में प्राय समान मिलती है, नाथ साहित्य है। दो चार को छोड़ सभी भाषाओं के प्रारंभिक साहित्य के विकास में नाथ पंथियों तथा साधुओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वभावतः नाथ साहित्य का सृजन दक्षिण में उत्तरी और पूर्वी भारत के अपेक्षा बहुत कम हुआ है मराठी और बंगाल में नाथ साहित्य की विशिष्ट धारा प्रवाहित हुई। मराठी में तो स्वयं गोरख नाथ की वाणी मिलती है। बंगाल वस्तुत: नाथ संप्रदाय का गढ़ था। गुण और परिणाम दोनों की ओर से बंगाल के नाथ साहित्य समृद्ध है। उसमें बौद्धों के सहजिया संप्रदाय का साहित्य और चर्या गीत आदि की धारा भी घुलमिल गयी है। बंगाल के बाद इस सम्प्रदाय का दूसरा विकास केंद्र था पंजाब, ओडिशा और असाम में भी इस तरह के साहित्य लिखे गये हैं।

दूसरी आरंभिक प्रवृति चारण काव्य है। यह भी अधिकांश भाषाओं में प्रायः सामान है। अपनी प्राचीनता के अनुरूप ही तमिल में चारण काव्य संगम काल के आरंभ से ही मिलता है। संगमकाल का प्रसिद्ध महाकाव्य 'सिलाप्पदिकारम' भी एक प्रकार का चारण काव्य है। तेलगु में 'पालनाटिवीर चरितम', मलयालम में 'पद्मय पटटकल', मराठी के मध्ययुगीन 'मविराख्याना' अथवा वीरगीत रूप 'पोवाडा' चारण काव्य, गुजराती साहित्य में श्रीधर चरित 'रणमल छंद' और पद्मनाभा का मकन्हडदे, पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह का 'अमर काव्य', हिंदी में 'पृथ्वीराज रासो', 'आल्हाखंड', फिर भूषण, सूदन आदि की रचनायँ चारण काव्य के अमूल्य उदाहरण हैं।

भारतीय काव्य की तीसरी प्रमुख प्रवृति है संत काव्य। इसकी परंपरा भी प्राय: सर्वत्र विद्यमान है तमिल के अठारह सिद्ध संत कवि थे जिन्होंने सरस वाणी में रहस्यवादी रचनाएँ की हैं। तेलुगु के वेमन, वीरब्रह्मम और कनड़ के सर्वज्ञ आदि इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं। मराठी का संत काव्य तो अत्यंत प्रसिद्ध है ही। गुजरात में भी संत कवि प्रीतम दास की कविताओं उल्लेखनीय हैं। ओडिशा में धर्म की महिमा संत कवि भीम भोई की कविताओं में मिलती है।

अब प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा पर बात करे तो वह भी भारतीय भाषाओं में प्राय समान रूप से व्याप्त है। पंजाब और हिंदी में प्रेमाख्यान की परंपरा अत्यंत विस्तृत है।

तमिल में वैष्णव काव्य का संग्रह 'नालायिर प्रबंधम' के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन कन्नड़ सहित्य के इतिहास का तृतीय चरण 'वैष्णव काल' के नाम से प्रसिद्ध है। मलयालम प्रमुख वैष्णव काव्य है एजुत्तच्चन की 'अध्यात्म रामायण'। वैष्णव काव्यधारा की सबसे अधिक गति गुजराती और पूर्वी भाषाओं – अर्थात् बंगला, असमिया और ओडिया के साहित्य में देखने को मिलती है।

अब हम आधुनिक काल के बारे में थोडी सी चर्चा कर लेते हैं। जहाँ भारतेंदु और उनके मंडल के कवियों ने साहित्य का प्राचीन रूपों का नवीकरण और अनेक नवीन रूपों का सृजन कर नव जीवन की चेतना को अभिव्यक्त किया। उसी समय पंजाब में गुरुमुख सिंह मुसाफिर, हिरासिंग दर्द आदि कवियों ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य की रचना कर रहे थें। हिंदी में राष्ट्रीयता की भावना मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी के काव्यों में प्रचुर परिमाण में मिलता है आधुनिक साहित्य की ओर एक प्रमुख प्रवृत्ति है स्वछंदतावाद। इस धारा के प्रमुख कवि हैं– प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी आदि।

आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी स्वतंत्रता की प्राप्ति जिसने सभी भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया भारत ने सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त अपनी स्वतंत्रता को विश्वमुक्ति के रूप में ग्रहण किया है। भारत की सभी भाषाओं में इस अवसर पर मंगलगान लिखे गए जो सात्त्विक उल्लास और लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत है।

विगत शताब्दी, स्वतंत्रता से पूर्व से 1947 ई. तक आधुनिक साहित्य के सामान्यतः चार चरण हैं: 1–पुनर्जागरण, 2–जागरण सुधारकाल, 3–रोमानी सौंदर्य दृष्टि का उन्मेष तथा 4–साम्यवादि सामाजिक चेतना का उदय। तमिलके पुनर्जागरण के नेता थे रामलिंग स्वमिगल–इन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के पुनरुथान का प्रयत्न किया। अनंतर कविसुब्रमन्य भारती ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रांति को अपने, काव्य में वाणी प्रदान की। तेलगु में पुनर्जागरण का नेतृत्त्व विरेशलिंगमने किया मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी नवजागरण का सूत्रपात हुआ। भारतीय भाषाओं का कदाचित सबसे समृद्ध आधुनिक साहित्य है बंगाल का 19वीं सदी में राजा राममोहनराय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि की प्रेरणा से पूरे बंगाल साहित्यकारों में नवीन धारा प्रवाहित होने लगी। इस तरह ओडिया, असामी और अन्य भाषाओं में भी नवजागरण का प्रभाव दिखाई देता है।

अबतक हम भारतीय वाङ्मय की केवल विषय वस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर संकेत किया है, किन्तु कांव्य शैलियों और काव्य रूपों की समानता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। भारत के प्राय सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य शैलियाँ – महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परंपरा की भी अनेक शैलियाँ, जैसे चरित काव्य, प्रेमगाथा शैली, रस, पद शैली आदि समान रूप में मिलती हैं। अनेक वर्णिक छंदों के अतिरिक्त अनेक देसी छंद दोहा, चौपाई आदि भारतीय वाङ्मय के लोकप्रिय छंद हैं। इधर – आधुनिक युग के पश्चिम के अनेक काव्य रूपों और छंदों का जैसे प्रगित काव्य और उसके अनेक भेदों, जैसे संबोधन गीत, शोक गीत, चतुर्दशपीका और मुक्त छंद, गद्य गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओं में हो चुका है।

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय साहित्य अनेक भाषाओं में रचित एक विचारधारा में प्रवाहित साहित्य जैसा हैं।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1. डॉ.नगेंद्र ने आधुनिक भारतीय साहित्य के कितने .... पडावों का उल्लेख किया है।

अ) चार ब) सात क) आठ ड) तीन

2. आदिकाल को 'चारणयुग' नाम .... ने दिया है।

अ) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ब) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

क) मिश्र बंधू ड) डॉ. रामकुमार वर्मा

3. भारतीय साहित्य के अध्ययन की मूल समस्या ....है।

अ) धार्मिकता ब) राजनीति क) बहुभाषी समाज ड) राष्ट्रीयता

4. .... साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

अ) पाश्चात्य ब) भारतीय साहित्य क) अंग्रेजी ड) लैटीन

5. भारतीय साहित्य को सम्यक रूप से संकलित करने में ....महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अ) अनुवाद ब) अनुसंधान क) अन्वेषण ड) संशोधन

6. डॉ. इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार भारतीय साहित्य के ....अंग है।

अ) चार ब) सात क) आठ ड) तीन

7. समाज का ....समझने के लिए उसकी आधारभूत संरचनाओं, मूल्यों, विश्वासों, या समग्र जीवन पद्धति का अध्ययन जरुरी होता है।

अ) मनोविज्ञान ब) समाजविज्ञान क) गति विज्ञान ड) राजनीति विज्ञान

8. साहित्यिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के आखिल भारतीय स्वरूप का सबसे अच्छा उदाहरण मध्यकालीन ....आंदोलन है।

अ) भक्ति ब) शक्ति क) समाज ड) धर्म

9. राष्ट्रवाद के भव्य महाख्यान के बीच ....साहित्य की संकल्पना का जन्म हुआ।

अ) भक्ति ब) धार्मिक क) सामाजिक ड) भारतीय

10. भाषांतरण एवं रूपांतरण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण ....का है।

अ) रामायण और महाभारत ब) जर्मन साहित्य

क) चायनीज साहित्य ड) भारतीय साहित्य

1.5 पारिभाषिक शब्द / शव्दार्थ

अनुगूँज - उपदेशात्मक वाणी

दर्शन - तत्त्वज्ञान

बहुधर्मी - विभिन्न धर्म

बहुजातीय - विभिन्न जाति

बहुभाषी - विभिन्न भाषा

ओतप्रोत - प्रचुर मात्रा में

1.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नो के उत्तर

1. अ) चार
2. ड) डॉ. रामकुमार वर्मा
3. क) बहुभाषी समाज
4. ब) भारतीय साहित्य
5. अ) अनुवाद
6. ड) तीन
7. क) गति विज्ञान
8. अ) भक्ति
9. ड) भारतीय
10. अ) रामायण और महाभारत

1.7 सारांश

1. हमने इस इकाई में भारतीय साहित्य के स्वरूप परिचय प्राप्त किया।
2. भारतीय साहित्य के स्वरूप, राष्ट्रीय चेतना, भारतीय साहित्य की निर्मिति का इतिहास इस इकाई का केन्द्रीय हिस्सा बना।
3. राष्ट्र निर्माण से पहले भारत की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक संरचना में मौजूद थी।
4. एक सी सामाजिक मर्यादाएँ, लगभग समान जीवन मूल्य और जीवनादर्श इस भूखण्ड के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधते थे।
5. साहित्य इस एकता के प्रतिबिंबन का प्रमुख आधार रहा है।
6. आंदोलनों की एक परम्परा भारत की धरती पर चली।
7. इन आंदोलनों ने सांस्कृतिक एकता के ताने-बाने को पुनर्निर्मित, पुनर्परिभाषित किया और साहित्य तथा अनुवाद पर उल्लेखनीय असर डाला। विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच आवाजाही बनने और बढ़ने से एक तरफ सम्पर्क भाषा का निर्माण हुआ तो दूसरी तरफ अनुवादों की माँग बढ़ी।
8. बौद्ध-जैन आंदोलन, भक्ति आंदोलन ने धर्म के लोकतंत्रकरण पर बल देकर पारम्परिक वर्चस्व को सफल चुनौती दी।
9. स्वाधीनता आंदोलन से साहित्य में राजनीति का प्रवेश हुआ जिसने भारतीयों की आत्मछवि में बदलाव किया ही, भारतीय साहित्य की प्राथमिकताएँ भी बदल दीं।

10. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों ने उक्त आत्म छवि में परिष्कार संभव किया और परिवर्तित वैश्विक पटल में सार्थक हस्तक्षेप भी किया। इस हस्तक्षेप में अनुवादों का उल्लेखनीय योगदान रहा।

1.8 स्वाध्याय

1) भारतीय साहित्य का आशय स्पष्ट करते हुए उसके निर्माण में अनुवाद की भूमिका का रेखांकन कीजिए।

2) भारतीय साहित्य के स्वरूप ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का विवेचन कीजिए।

3) भारतीय साहित्य और अनुवाद के अंतरसंबंध का विवेचन कीजिए।

4) सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलनों का भारतीय साहित्य पर क्या असर पड़ा? सोदाहरण समझाइए।

5) आंदोलन और अनुवाद में क्या रिश्ता होता है? भारतीय साहित्य के संदर्भ में इसकी व्याख्या कीजिए।

6) राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण में अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

7) स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीय साहित्य को किस तरह प्रभावित किया, समझाइए।

8) स्वतंत्र भारत के साहित्यिक आंदोलन और अनुवाद के आपसी संबंधों का विवेचन कीजिए।

9) भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं का विवेचन किजिए।

10) भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता को स्पष्ट किजिए।

11) भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता का विवेचन – विश्लेषण कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1. मराठी से हिंदी में अनुदित उपन्यास साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
2. मराठी से हिंदी में अनुदित नाटक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
3. मराठी से हिंदी में अनुदित यात्रावृत्त साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

* डॉ. नगेंद्र, भारतीय साहित्य, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
* रणसुभे, सूर्यनारायण, 2009, अनुवाद का समाजशास्त्र, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद।
* गोस्वामी, कृष्ण कुमार, 2008, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न**

   1. आदिकाल को चारण युग नाम .... ने दिया है।

      अ. मिश्र बंधु — ब. आ.महावीर प्रसाद

      क. आ.रामचंद्र श्शुक्ल — ड. डॉ.रामकुमार वर्मा

2. डॉ. इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार भारतीय साहित्य के ......अंग है।

अ. चार　　ब. आठ　　क. सात　　ड. तीन

3. साहित्यिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के अखिल भारतीय स्वरुप का सबसे उत्तम उदाहरण मध्यकालीन........ आंदोलन है।

अ. भक्ति　　ब. शक्ति　　क. धर्म　　ड. समाज

4. भाषातंरण और रुपातंरण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण.... हा है।

अ. भारतीय साहित्य ब.जर्मन साहिय　　क. चायना साहित्य　ड. रामायण तथा महाभारत

5. 21 वीं सदी का युग...... का युग है।

अ. रॉकेट　　ब. अनुवाद　　क. क्रिकेट　　ड. मजा

उत्तर

1. ड　2. ड　3. अ　4. ड　5.

2. **उचित मिलान कीजिए।**

1. मध्यकालीन काव्य	अ. अनुवाद का युग
2. डॉ.नगेंद्र आधुनिक साहित्य पडाव	ब. भारतीय साहित्य
3. भारतीय साहित्य अध्ययन समस्या	क. बहुभाषी समाज
4. राष्ट्रवाद भव्य महाख्यान	ड. चार
5. इक्कीसवीं सदी	इ. भक्ति काल

उत्तर–

1–इ,　2–ड,　3–क,　4–ब,　5–अ

3. **सही गलत की पहचान करें**

1. भारतीय साहित्य परिषद की स्थापना कोलकता में हुई और भारतीय ज्ञानपीठ न्यास की स्थापना दिल्ली में हुई।
2. रामायण तथा महाभारत भाषातंरण और रुपांतरण का अच्छा उदाहरण है, इन रचनाओं पर आधारित महाकाव्य खंडकाव्यादि लिखे है।
3. संस्कृत साहित्य की समृध्द शेरों शायरी ने भारतीय साहित्य समृध्द किया है, शेरों शायरी उर्दू साहित्य की देन है।
4. आधुनिक काल का आरंभा 19 वीं सदी के पूर्वाध से होता है, जो आगे चलकर निराला के नाम से जाना जाता है।
5. दक्षिण में आज भी दक्खिनी भाषा का प्रचलन है, जिसमें साहित्य भी समृध्द है।

उत्तर–

1. पहला सही दूसरा गलत।
2. पहला सही और दूसरा भी सही।
3. पहला गलत और दूसरा सही।
4. पहला गलत और दूसरा भी गलत है।
5. पहला सही और दूसरा भी सही हैं।

❑❑❑

इकाई 2

2. 'नागमंडल' (नाटक) – गिरीश कर्नाड (कन्नड)

हिंदी अनुवाद बी. आर. नारायण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवेचन

2.3.1 गिरीश कर्नाड का जीवन परिचय, व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

2.3.2 'नागमंडल' नाटक का परिचय

2.3.3 'नागमंडल' का कथानक

2.3.4 'नागमंडल' के प्रमुख पात्र

2.3.5 'नागमंडल' में चित्रित समस्याएँ

2.3.6 'नागमंडल' का कलापक्ष

2.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्‌देश्य :

विवेच्य इकाई को पढने के बाद आप-

1) गिरीश कर्नाड जी के व्यक्तित्त्व एवँ कृतित्त्व से परिचित होंगे।

2) 'नागमंडल' इस नाटक की कथावस्तु की जानकारी मिलेगी।

3) 'नागमंडल' नाटक के विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की जानकारी मिलेगी।

4) 'नागमंडल' नाटक में चित्रित विविध समस्याओं की जानकारी मिलेगी।

5) 'नागमंडल' नाटक के कलापक्ष से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

कन्नड भाषा में नाटक विधा का उदय मूलत: संस्कृत के नाटकों के अनुवाद से हुआ है। सन् 1689 में चिक्कदेवराय राजा के दरबारी कवि सिंगराचार्य ने संस्कृत के मूल नाटक से 'मित्रविंदा गोविंद' नामक नाटक का अनुवाद किया था। इसे ही कन्नड का पहला नाटक माना जाता है। इसके बाद बी. एम. श्रीकंठय्या (1884-1946) जी ने आधुनिक नाटकों की नींव डाली। कुवेंपु, द.रा. बेंद्रे, कारंत, मास्ति (श्रीनिवास), कैलासम्, श्रीरंग,पर्वतवाणी, पी. लंकेश, गोविंद पै, सी.के. वेंकटरामय्या, चन्नय्या, जी. बी. जोशी, भालचंद्र श्रेट्टी, चंद्रशेखर कंबार आदि नाटककारों ने कन्नड के नाट्य-साहित्य को विकसित किया।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में कन्नड भाषा के आधुनिक नाटककारों में गिरीश कर्नाड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 1960 के दशक में कन्नड भाषा में एक आधुनिक नाटककार के रूप में उनका उदय हुआ। उनके इस उदय को बंगाली भाषा के बादल सरकार, मराठी में विजय तेंडुलकर और हिंदी में मोहन राकेश की ही तरह कन्नड भाषा में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। लगभग चार दशकों तक उन्होंने कन्नड नाट्य-साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया। कन्नड भाषा में वे एकमात्र ऐसे लेखक थे, जिनके लिखे नाटकों का सर्वाधिक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उनके अधिकांश कन्नड नाटकों का हिंदी में अनुवाद हुआ है और रंगभूमि पर उनका सफलतापूर्वक मंचन आज भी होता है। गिरीश कर्नाड का व्यक्तित्त्व बहुआयामी था। वे एक उत्कृष्ट नाटककार, फिल्म-निर्देशक, अभिनेता, पटकथा लेखक अनुवादक थे। उनके कन्नड नाटकों के अनुवाद ने उन्हें न केवल कन्नड बल्कि हिंदी और अंग्रेजी साहित्य रसिकों में भी मशहूर किया है।ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथ्य और पात्रों के जरिए आधुनिक जीवन की विसंगतियों को पेश करना उनके नाटकों की विशेषता थी। उन्होंने 'ययाति', 'तुगलक', 'हयवदन', 'अंजु', 'मल्लिग', 'अग्निमतु माल', 'नागमंडल', 'अग्नि', 'बरखा' आदि नाटकों का सृजन करके भारतीय साहित्य में अपनी विशेष पहचान बनाई।

2.3 विषय विवेचन

2.3.1 गिरीश कर्नाड का जीवन परिचय, व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व:

भारत के आधुनिक कन्नड नाटककारों में गिरीश कर्नाड का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने कन्नड नाट्य-लेखन की पारंपरिक लीक से हटकर अपनी बौद्धिक क्षमता और सृजनात्मक प्रतिभा के बल पर एक नई राह प्रशस्त की। अपने समकालीन नाटककारों की तरह पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से मोहित होने के बजाए उन्होंने भारत के ही ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथा और पात्रों को आधुनिक संदर्भ में पेश किया। भारत की ही लोककथा एवं मिथकों के द्वारा उन्होंने आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उजागर करने का प्रयास किया।

कन्नड नाट्य-साहित्य में उनके इस नए प्रयोग को बहुत सराहना मिली और अनुवाद के जरिए वे भारतीय परिदृश्य में एक प्रतिभाशाली और चर्चित नाटककार बने।उनका जीवन परिचय इसप्रकार है-

⁕ गिरीश कर्नाड का जन्म :

नाटककार गिरीश कर्नाड का जन्म 19 मई, 1938 ई. को महाराष्ट्र राज्य में स्थित माथेरान में एक कोंकणी भाषिक ब्राह्मण परिवार में हुआ। तब यह स्थान ब्रिटिश सत्ता के बॉम्बे प्रेसीडेंसी के अधिकार में था और आज महाराष्ट्र में है।

⁕ गिरीश कर्नाड की शिक्षा–दीक्षा :

गिरीश कर्नाड की प्रारंभिक स्कूली शिक्षा मराठी में हुई। बचपन से ही उन्हें नाटक देखने में गहरी रूचि रही थी। उनके पिता रघुनाथ कर्नाड जी नाट्य-रसिक होने के कारण बचपन में गिरीश जी को अपने साथ नाटक देखने ले जाते थे। कर्नाटक में स्थित सिरसी में घुमक्कड़ नाटकमंडली के नाटकों से बालक गिरीश नाटकों से परिचित हुए थे। युवावस्था में उन्होंने अपने गाँव में यक्षगान नाटकमंडली के जरिए कुछ नाटकों के प्रयोग भी किए थे। सन् 1958 में उन्होंने कर्नाटक विश्वविद्यालय के अंतर्गत आने वाले कर्नाटक आर्टस् कॉलेज से गणित और सांख्यिकी विषय में स्नातक की पढाई पूरी की। उसके तुरंत बाद सन् 1960 को उन्हें इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की 'रोड्स स्कॉलर' यह छात्रवृत्ति मिली और उन्होंने सन् 1960 से सन् 1963 तक इंग्लैंड के लिंकन और मैग्डलेन कॉलेज में पढाई की। यहाँ पर उन्होंने राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र और अर्थशास्त्र में मास्टर ऑफ आर्टस् की उपाधि प्राप्त की।

⁕ गिरीश कर्नाड का पारिवारिक जीवन :

गिरीश कर्नाड का जन्म एक कोंकणी भाषिक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम रघुनाथ कर्नाड था और माता का नाम कृष्णबाई कर्नाड था। उन्हें एक भाई और दो बहनें थी। भाई का नाम श्रीधर कर्नाड था। उनके पिता एक डॉक्टर थे और माँ एक प्रसिद्ध लेखिका थी। उनके परिवार में साहित्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक गतिविधियों के अनूठे माहौल ने गिरीश कर्नाड पर बचपन से ही अच्छे संस्कार हुए। उनके परिवार की प्रारंभिक भाषा कोंकणी मराठी थी लेकिन उनका परिवार कर्नाटक के धारवाड में बसने के बाद उन्होंने कन्नड भाषा सीखी। उनका विवाह एक विख्यात न्यूरोजसर्जन डॉ. सरस्वती गणपति से हुआ। उनके दो बच्चे हुए, बेटे का नाम रघु है जबकि बेटी का नाम शाल्मली है। दोनों बेंगलरू में रहते हैं और अपने-अपने कार्यक्षेत्र में सफल हुए हैं।

⁕ गिरीश कर्नाड की आजीविका :

गिरीश कर्नाड जी ने ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय से अपनी स्नातकोत्तर पढाई पूरी करने के बाद ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय के ही चेन्नई में स्थित प्रेस में सन् 1963 से सन् 1970 तक भाषा तज्ञ के रूप में कार्य किया। नाटक के प्रति गहरी रूचि के चलते उन्होंने चेन्नई प्रेस की नौकरी से इस्तीफा दिया और वे

चेन्नई के स्थानीय नाटक थिएटर से जुड़े जो शौकिया तौर पर नाटकों का मंचन करता था। सन् 1987-88 के दौरान उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में निवासी नाटककार के रूप में अध्यापन का कार्य किया। इस कार्यकाल के दौरान उनके 'नागमंडल' इस कन्नड नाटक के अंग्रेजी भाषा में अनुवाद पर मिनियापोलिस शहर के गिनीज थिएटर में नाट्य मंचन हुआ था। सन् 1960 ई. के बाद वे नाट्य-लेखन से जुड़े। सन् 1974-75 ई. में उन्होंने भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान के निदेशक के रूप में कार्य किया। उसके बाद सन 1988 से 93 ई. तक वे भारतीय संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय कला अकादमी में अध्यक्ष के रूप में भी कार्यरत रहे। साथ ही सन् 2000 से 2003 ई. तक वे नेहरू केंद्र के निदेशक और लंदन में स्थित भारतीय उच्चायोग के सांस्कृतिक मंत्री भी रह चुके थे। साथ ही उन्होंने फिल्म-निर्माता, पटकथा लेखक, टी.वी. एवं फिल्म अभिनेता के रूप में भी अपनी प्रतिभा दिखाई थी। लगभग पाँच दशकों तक व्यावसायिक रंगमंच, सिनेमा और साहित्य को उन्होंने अपनी आजीविका का माध्यम बनाया।

⁕ गिरीश कर्नाड का बहुआयामी व्यक्तित्त्व :

नाटककार गिरीश कर्नाड जी बहुआयामी व्यक्तित्त्व के धनी थे। गिरीश कर्नाड जी के व्यक्तित्त्व के नाटककार, फिल्म-निर्माता-निर्देशक, टीवी और फिल्म अभिनेता, पटकथा लेखक, अध्यापक, अनुवादक, नाट्य-निर्देशक आदि विभिन्न रुप दिखाई देते हैं। फिर उनके व्यक्तित्त्व को इन मुद्दों पर समझने की कोशिश करते हैं-

⁕ आकर्षक व्यक्तित्त्व :

गिरीश कर्नाड जी के पास कलात्मक प्रतिभा के साथ ही शारीरिक सुंदरता भी थी। पाँच फिट आठ इंच का उनका आकर्षक कद, अभिनय की आकर्षक मुद्रा एवं भाषा पर मजबूत पकड़ के कारण उन्होंने रंगभूमि एवं फिल्मों में अपना करिश्मा दिखाया। वे अपने स्वास्थ्य एवं अपने कामों को लेकर बहुत ही संतुलित थे। कामों में इतने व्यस्तता के बावजूद उनका स्वस्थ एवं आकर्षक शरीर उनके फिटनेस के प्रति समर्पण एवं मेहनत को भी दर्शाता है।

⁕ नाटक प्रेमी :

गिरीश कर्नाड जी को बचपन से ही नाटकों के प्रति अत्यधिक रूचि थी। उनके माता-पिता भी नाट्य-रसिक थे और अपने बच्चों को वह घुमक्कड़ी नाट्य-मंडलों के नाटकों को देखने ले जाते थे। बचपन में बालक गिरीश में कर्नाटक के सिसरी गाँव में रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों के प्रति रूचि बढती गई। वे कभी-कभी अपने घर के नौकरों के साथ नाटक देखने चले जाते थे। युवावस्था में उन्होंने अपने गाँव में 'यक्षगान नाटकमंडल' के जरिए कुछ नाटकों के प्रयोग भी किए थे। इंग्लैंड में उच्च पढाई के दौरान उनपर पाश्चात्त्य नाटकों का काफी गहरा प्रभाव रहा। उन्होंने अंग्रेजी भाषा का एक बड़ा लेखक एवं कवि बनने का सपना देखा था। लेकिन जब वे सन् 1967 ई. को इंग्लैण्ड से चैनई वापस आए तो वहाँ की शौकिया

रंगभूमि से जुड़ गए। सन् 1960 ई. के बाद उन्होंने अंग्रेजी के बजाए कन्नड भाषा में नाटक लिखने शुरू किए। लगभग चार दशकों तक समसामयिक मुद्दों को उजागर करने के लिए ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर गिरीश जी नाट्य-लेखन करते रहे। उन्होंने दक्षिण भारत में प्रचलित लगभग 28 लोककथाओं को आधार बनाकर कन्नड नाटकों का लेखन किया। कन्नड नाट्य-साहित्य में उनकी इस पहल का रसिक एवं नाट्य-समीक्षकों ने जोरदार स्वागत किया। उन्होंने सन् 1961 ई. को महाभारत की कथा पर आधारित पहला नाटक 'ययाति' लिखा तब उनकी आयु केवल 23 वर्ष की थी। उन्होंने अपने जीवन काल में कुल 13 नाटकों की रचना कि और न केवल कन्नड बल्कि भारतीय नाट्य-साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में भी बहुमोल योगदान दिया। मराठी के श्रेष्ठ नाटककार विजय तेंडुलकर और हिंदी के नाटककार मोहन राकेश के साथ मिलकर शिथिल हुई भारतीय नाट्य-रंगभूमि को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। कन्नड नाट्य-साहित्य को विश्व मंच पर प्रस्थापित करने के लिए उन्होंने अपने कई नाटकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है।

❊ अभिनेता एवं निर्देशक :

गिरीश कर्नाड जी एक उत्कृष्ट टी.वी. एवं फिल्म अभिनेता थे। इंग्लैड के ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में पढाई पूरी करने के बाद वे नाट्य-संस्थाओं से जुड़ गए। धारवाड़-कर्नाटक के कई नाटक क्लब से वे जुड़ गए। लोकप्रिय कन्नड नाट्य-निर्देशक बी. वी. कारंथ के साथ उन्होंने निर्देशन का काम किया। फिल्म 'संस्कार' में किए अभिनय के लिए उन्हें राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। उसके बाद उन्होंने श्री. कारंथ के फिल्म 'वंशवृक्ष', 'तब्बलियु निनादे मगने' इन कन्नड फिल्मों में काम किया, जिसके लिए उन्हें फिर से राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस दौरान उन्होंने कुछ फिल्मों के लिए पटकथा लेखन का भी कार्य किया।

इसके बाद वे केंद्रीय फिल्म और टेलीविजन प्रौद्योगिकी संस्थान-पुणे के निदेशक के रूप में कार्यरत हुए। वहाँ पर भारत के मशहूर फिल्म निर्देशक श्याम बेनेगल के साथ काम किया। इस कार्यकाल के दौरान गिरीश कर्नाड टी.वी. धारावाहिकों के निर्माण, निर्देशन और अभिनय इन तीनों क्षेत्रों से बराबर जुड़े रहे थे। मानव स्वभाव की गहराई से समझ रखने के कारण वे एक महान नाटककार और अभिनेता बन पाए। सन् 1986-87 के दौरान आर. के. नारायण की किताब 'मालगुड़ी डेज' पर आधारित टेलीविजन सिरियल में स्वामी के सख्त पिता की भूमिका निभाई थी, जिसके कारण गिरीश कर्नाड जी अभिनेता के रूप में भारतभर में मशहूर हो गए थे। उन्होंने हिंदी में 'निशांत' (1975), 'मंथन'(1976), 'स्वामी' (1977), 'पुकार' (2003), 'डोर' (2006), 'आठ बाय दस तसवीर' (2009), 'आशाएं' (2010) और 'एक था टाइगर' (2012) आदि बहुचर्चित फिल्मों में अभिनय किया। इसके लिए कई उल्लेखनीय पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया है। सन 1970 से उन्होंने फिल्म निर्देशन की शुरुआत फिल्म 'संस्कार' से की। इस फिल्म की पटकथा भी उन्होंने स्वयं लिखी थी।

⁕ गिरीश कर्नाड की विचारधारा :

गिरीश कर्नाड स्पष्टवादी और प्रगतिशील विचारधारा के व्यक्ति थे। भारत में उन्हें धार्मिक कट्टरतावाद और हिंदुत्त्व के आलोचक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने अपने जीवन के आखिरी पल तक समाज और राजनीति को लेकर एक सक्रिय आलोचक के रूप में बेबाक राय रखी। उनकी रचनात्मक एवं कलात्मक क्षमता से उन्होंने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। भारतीय कला और संस्कृति के प्रति उन्हें अत्यधिक प्रेम था और उन्होंने इससे ओत-प्रोत जीवन जीया है। उन्हें भारत के पौराणिक लोककथा और इतिहास का बहुत आकर्षण था। इसलिए उन्होंने पौराणिक कथा और पात्रों के जरिए मानवी जीवन के समसामायिक मुद्दों को उजागर करने की क्रांतिकारी पहल कन्नड नाट्य-साहित्य में की। वे नाटक और फिल्मों के माध्यम से जीवन की विसंगतियों एवं मुद्दों से निपटना चाहते थे। पाँच दशक के अपने लंबे कार्यकाल में उन्होंने अपने काम के प्रति प्रतिबद्धता, अडिग जुनून और सत्य की निरंतर खोज से भारत के कला क्षेत्र को प्रभावित किया। वे उन गिने-चुने बुद्धिजीवी कलाकारों में से थे जिन्होंने अभिव्यक्ति की आजादी, मानवाधिकारों की सुरक्षा और एक शांतिपूर्ण, अहिंसक मानवीय समाज रचना के लिए जीवन के अंतिम पल तक कार्य किया। रविंद्रनाथ टागोर और वर्ष 2014 में नरेंद्र मोदी की उम्मीदवारी को लेकर किए बेबाक टिप्पणियों के कारण उनकी काफी आलोचना हुई थी।

⁕ गिरीश कर्नाड का कृतित्त्व :

गिरीश कर्नाड जी प्रारंभ में कवि बनना चाहते थे और अंग्रेजी भाषा में साहित्य सृजन करके विश्वविख्यात बनना चाहते थे। लेकिन नाटकों के प्रति रूचि के कारण वे नाट्य-साहित्य की ओर मुड़े। उनकी मातृभाषा कोंकणी थी और उन्होंने अंग्रेजी भाषा में उच्च शिक्षा हासिल की थी लेकिन फिर भी उन्होंने कन्नड भाषा में नाट्य-लेखन किया। उनके कृतित्त्व को निम्नांकित मुद्दों पर समझते हैं.

⁕ गिरीश कर्नाड के नाटक :

गिरीश कर्नाड जी ने कुल 13 कन्नड नाटक लिखे। उन्होंने कन्नड नाट्य-साहित्य को विश्व मंच पर ले जाने के लिए अपने कुछ नाटकों का अंग्रेजी भी अनुवाद किया। उनके नाट्य-साहित्य की सूची इसप्रकार है– 1. 'ययाति' (1961), 2. 'तुगलक' (1964), 3. 'अंजुलिमलिगे' (1972), 4. 'बाली' (1980), 5. 'नागमंडल' (1988), 6. 'तलेदंडा' (1990), 7. 'अग्नि मट्टू माले' (1995), 8. 'टिपुविना कनासुगालु' (1996), 9. 'ओडाकालु बिंबा' (2006), 10. 'मैडुवे एल्ब' (2006), 11. 'फूल' (2012), 12. 'बेंदा कालू ऑन टोस्ट' (2012) और 'माँ निशाधा' (एकांकी–) प्रमुख है।

उनके 'तुगलक' नाटक का इसी नाम से हिंदी में, हिटिंग हुंजा उर्फ बालीफ नाटक का अंग्रेजी में द सैक्रिफाइस, 'नागामंडला' नाटक का अंग्रेजी में 'प्ले विद कोबरा' और हिंदी में 'नागमंडल', 'तेलदंडा' नाटक का हिंदी में 'रक्त कल्याण', 'अग्नि मट्टू माले' नाटक का हिंदी में 'अग्नि और वर्षा' और अंग्रेजी में 'द

फायर एंड द रेन', 'ओडाकालु बिम्बा' नाटक का हिंदी में 'बिकरे बिंब' और अंग्रेजी में 'ए हीप ऑफ ब्रोकन इमेजेज' नाम से अनुवाद हुए हैं। अधिकांश अंग्रेजी अनुवाद खुद गिरीश कर्नाड जी ने किए हैं। तो 'तुगलक' नाटक का हिंदी में अनुवाद बी.वी. कारंथ ने और श्यामानंद जालान ने बांग्ला भाषा में अनुवाद किया है। 'तलेदंडा' नाटक का हिंदी में 'रक्त-कल्याण' नाम से अनुवाद राम गोपाल बजाज ने किया है।

※ गिरीश कर्नाड नाट्य–फिल्म निर्देशन, पटकथा लेखन :

गिरीश कर्नाड ने रंगभूमि एवं सिनेमा में किए कार्य की सूचनात्मक जानकारी इसप्रकार है-

1. कन्नड फिल्म 'संस्कार' (1970) – पटकथा लेखन
2. कन्नड फिल्म 'वंशवृक्ष' (1971) – निर्देशन
3. 'गोधाली' (1971) और 'उत्सव' (1984)– फिल्मों के सह-निर्देशक
4. 'चरखा' और डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम जी की आत्मकथा पर 'विंग्स ऑफ फायर' इस ऑडियो बुक्स के लिए अपनी आवाज दी है।
5. अपने नाटकों का व्यावसायिक रंगमंच निर्देशन में वे पाँच दशकों तक सक्रिय रहे हैं।

※ उल्लेखनीय पुरस्कार :

गिरीश कर्नाड जी को नाट्य-साहित्य लेखन, निर्देशन एवं उसके प्रचार-प्रसार में दिए योगदान के लिए बड़े-बड़े पुरस्कारों से सम्मानित किया गया हैं। इसमें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1972), भारत सरकार का पद्मश्री (1974), पद्मभूषण (1992), कन्नड साहित्य अकादमी पुरस्कार (1992), साहित्य अकादमी पुरस्कार (1994), कर्नाटक विश्वविद्यालय से डी.लिट की उपाधि (1994), समग्र साहित्य योगदान के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार (1998), कालिदास सम्मान (1998), कन्नड फिल्म 'संस्कार' के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है। सिनेमा के योगदान के लिए उन्हें सन 2011 में लॉस एंजिल्स के दक्षिणी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से उन्होंने डॉक्टरेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है।

साथ ही उन्हें सिनेमा के क्षेत्र में दिए योगदान के लिए फिल्म 'वंशवृक्ष' (बी.वी. कारंथ के साथ सहनिर्देशन) के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का फिल्मफेयर पुरस्कार (1972), 'कटम दा काटु' फिल्म की पटकथा के लिए सर्वश्रेष्ठ पटकथा फिल्मफेयर पुरस्कार (1978), ओंडनोंडु कलादल्ली कन्नड फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ फिचर फिल्म का पुरस्कार (1978), 'गोधाली' के लिए सर्वश्रेष्ठ पटकथा पुरस्कार (1980) और 'औषा' फिल्म लिए फिल्मफेयर पुरस्कार का नामांकन, कनक पुरंदरा के लिए सर्वश्रेष्ठ गैर-फिचर फिल्म का पुरस्कार (1989), चेलावी फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ पर्यावरण संरक्षण फिल्म पुरस्कार (1993), कौरा

हेग्गाडेथ के लिए दक्षिण का सर्वश्रेष्ठ कन्नड फिल्म फेयर पुरस्कार (2000) आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

⁕ गिरीश कर्नाड की मृत्यु :

गिरीश कर्नाड का 10 जून, 2019 को उनके बेंगलूर स्थित आवास में लंबी बीमारी के चलते शरीर के अंग विफल होने कारण देहांत हुआ। तब वे 81 वर्ष आयु के थे। उनके अंतिम इच्छा के अनुसार उनका अंतिम संस्कार बहुत साधारण और निजी तौर पर हुआ जिसमें उनके परिवार और उनके करीबी दोस्त शामिल थे।

2.3.2 'नागमंडल' नाटक का परिचय :

प्रस्तुत इकाई में हम गिरीश कर्नाड के बहुचर्चित नाटक 'नाममंडल' का अध्ययन करने वाले हैं। 'नागमंडल' यह नाटक दक्षिण भारत में प्रचलित एक लोक-कथा पर आधारित है। यह नाटक सन् 1988 ई. में मूल कन्नड भाषा में लिखा गया है, जिसका हिंदी अनुवाद बी. आर. नारायण ने सन् 1991 ई. में किया था। भारतीय साहित्य में लोककथा और उसमें भी इच्छाधारी नाग के मिथक को लेकर रची कहानियाँ विशेष पसंद की जाती रही है। इसकारण भारतीय आख्यानों में अनेक जगहों पर इच्छाधारी नाग या नाग कुल की कहानियों का विशेष उल्लेख मिलता है। विवेच्य नाटक में भी गिरीश कर्नाड ने नाग को पुरुषप्रधान व्यवस्था एवं पुरुष के विकृत भावों का प्रतीक मानकर नारी की असहायता का उजागर किया है। नाटक में पति-पत्नी की मानसिकता और उनके दाम्पत्य जीवन में निरंतर बढते द्वंद्व को गिरीश जी ने बड़े ही नाट्यमय एवं तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया है। अभिनेयता एवं संवाद की दृष्टि से भी यह नाटक काफी चर्चा में रहा है। अत: गिरीश कर्नाड के जीवन और उनके नाटक 'नागमंडल' का विस्तार से विवेचन इसप्रकार है-

2.3.3 'नागमंडल' नाटक का कथानक:

गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' यह नाटक केवल दो अंकों और 65 पृष्ठों का लघु नाटक है। इन दो अंकों में नाटककार ने रंगमंच की दृष्टि से विविध दृश्यों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। नाटक की प्रस्तावना या भूमिका में नाटककार ने एक भग्न मंदिर के दृश्य में एक मनुष्य, कहानी और चार ज्योतियों (मशाल) के संवाद से नाटक की पृष्ठभूमि को साकार किया है। इसमें मनुष्य अर्थात् स्वयं नाटककार ने अपने नाटकों से दर्शकों को सोने को मजबूर किया था। इसकारण उसे दर्शकों ने मृत्यु का अभिशाप दिया था। लेकिन एक संन्यासी के कहने पर यदि वह एक रातभर दर्शकों जगाए रखता है तो वह इस अभिशाप से मुक्त हो सकता है। इसलिए कहानी प्रतिकात्मक रूप में कथावाचक बनकर 'नागमंडल' की कथा सुनाती है और यह चार ज्योतियाँ दर्शक बनकर सामने बैठ जाती है।

⁕ प्रथम अंक की कथावस्तु : नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में भग्न मंदिर के स्थान पर अब नाटक के नायक अप्पण्णा का घर दिखाई देता है। इस दृश्य के अंतर्गत नाटक की नायिका रानी का परिचय

दिया गया है। रानी अपने माँ-बाप की इकलौती और बेहद खुबसूरत बेटी थी। उसकी बचपन में अप्पण्णा के साथ शादी हुई थी और अब वह रजस्वला (बड़ी) होने के कारण अप्पण्णा उसे अपने घर ले जाने के लिए आया है। अप्पण्णा भी उसके माँ-बाप का एकलौता बेटा था। लेकिन उसके बचपन में ही उसके माता-पिता का देहांत हुआ था। वे अप्पण्णा के लिए पीछे बहुत सारी धन-संपत्ति छोड़कर चले गए थे।

अप्पण्णा अपनी नवेली दुल्हन रानी को अपने घर में लाता है। सारा सामान घर में रखकर अपनी बीवी रानी को कहता है, ''तो ठीक है। मैं कल सुबह फिर से आऊँगा। खाना पकाकर रखना। खाना खाकर जाऊँगा।'' (पृ.15) अप्पण्णा घर का दरवाजा बंद करके एक बहुत बड़ा ताला लगाकर चला जाता है। रानी को अपने पति के इस बर्ताव पर बहुत बड़ा आश्चर्य होता है। वह पीछे से पति को आवाज देती है लेकिन वह बिना उत्तर दिए चला जाता है। अप्पण्णा का यह नित्यक्रम बन जाता है कि दोपहर को वह घर आता है। नहा-धोकर रानी ने बनाया खाना खाता है और वापस घर को ताला लगाकर चला जाता है। रानी घर में अकेली रह-रहकर ऊब जाती है। उसे सपनों में अपने माता-पिता की याद आती है। कभी वह राजकुमार को देखती है जो उसे इस घररूपी कारागार से छुड़ाकर आसमान की ओर ले जाता है।

अप्पण्णा एक बहुत ही घटिया किस्म का आदमी था। वह रातभर गाँव के ही एक वेश्या की कोठी पर पड़ा रहता था। उसके गुस्सैल स्वभाव के कारण गाँव के लोगों के साथ उसकी कभी बनती नहीं थी। जब भी रानी उसे कुछ पूछने का प्रयास करती तो वह उसे डाँटता-फटकारता था। वह बहुत शक्की किस्म का आदमी होने के कारण अपनी पत्नी को ताले में बंद रखता था ताकि वह किसे न मिले और न बोले। रानी अकेली रहने के कारण अंदर-ही-अंदर घूटती जा रही थी। पिंजरे में बंद तोते की तरह फड़फड़ा रही थी।

एक दिन उसी गाँव की एक बूढी अँधी माँ अपने बेटे कप्पण्णा के साथ मिलने आती है। वैसे यह अँधी माँ अप्पण्णा के माँ की सहेली थी और उसकी प्रसुति उसी ने की थी। बचपन में अप्पण्णा को नहलाना आदि जचकी के काम उसने ही किए थे। इसलिए अप्पण्णा उसे अँधी माँ कहकर बुलाता था। कप्पण्णा उसका एक बीस-बाईस साल का नवजवान बेटा था जो अपनी अँधी माँ को पीठ पर लेकर गाँव में घूमाता था। वह बहुत ही मात्तृभक्त होने के कारण उसकी बात नहीं टालता था। अँधी माँ को अप्पण्णा के शादी की खबर मिलने के कारण वह नई दुल्हन को मिलने की इच्छा व्यक्त करती है। अप्पण्णा के गुस्सैल स्वभाव से पहले तो कप्पण्णा इनकार करता है लेकिन माँ की इच्छा के खातिर उसे अप्पण्णा के घर ले जाता है। अप्पण्णा के घर को बाहर से ताला देखकर अंधी माँ को आश्चर्य होता है। कप्पण्णा से बातें करते सुन रानी खिड़की के पास आती है। कप्पण्णा अंधी माँ को वहाँ छोड़कर दूर जाकर एक बरगद के पेड़ की छाँव में बैठ जाता है। अंधी माँ आवाज देती है, ऐ लड़की। रानी : (डरती हुई) कौन? अंधी माँ : डर मत बेटी । मैं अंधी माँ हूँ। तुम्हारी सास और मैं सगी बहनों के समान थीं। तुम्हारे पति के पैदा होने के समय मैंने ही तुम्हारी सास की जचगी करायी थी। डरो मत। अप्पण्णा मेरे लिए भी बेटे के समान ही है। वह घर में नहीं है क्या? (पृ.19-20) रानी अपना परिचय देकर रोने लगती है। वह अंधी माँ को अपनी आपबीती सुनाती है।

अँधी माँ भी रानी को अप्पण्णा की व्याभिचारी वृत्ति और उसके गुस्सैल स्वभाव के कारण गाँववालों से उसकी न बनने की बात बताती है।

रानी की रोती हुई आवाज सुनकर अँधी माँ उसे धीरज देने के लिए खिड़की में से हाथ निकालकर उसे छूती है। तब उसकी सुंदरता की प्रशंसा करते हुए अप्पण्णा को बहुत फटकारती है। अँधी माँ को पति-पत्नी के बीच के अनबन की बात समझ आती है। तब वह कप्पण्णा को बुलाकर अपने घर में रखी पूरानी ट्रंक में रखी एक पोटली लाने को कहती है। उस पोटली में एक संन्यासी ने उसे तीन दिव्य जड़ियाँ (औषधि वनस्पति के मूल) दिए थे। इनका प्रयोग जिस किस पुरुष पर किया जाए तो वह उस स्त्री पर मोहित हो जाता था। अँधी माँ की शादी नहीं हो रही थी तब उनके घर में एक बड़े संन्यासी आए थे। तब अँधी माँ ने उनकी खूब सेवा की तब संन्यासी ने यह तीन जड़ियाँ उन्हें आशीर्वाद स्वरूप दी थी। अँधी माँ ने अपने रिश्ते में आने वाले एक युवक पर इसका प्रयोग किया और आश्चर्य वह युवक अँधी माँ पर मोहित होकर उनसे ही शादी करने का हठ करता है और दोनों की शादी हो गई थी। इसके बाद वह जीवन भर अँधी माँ से प्यार करता रहा। अँधी माँ से उनके शादी का अनुभव सुनकर रानी बहुत हँसती है।

अँधी माँ उन तीन जड़ियों में से एकदम छोटी जड़ी रानी के हाथ में रखकर इसका अप्पण्णा पर प्रयोग करने को कहती है। इस जड़ी को अच्छे से पीसकर दूध या फिर दाल में मिलाकर अप्पण्णा को खिलाने को कहती है– ''ले, छोटा ही टुकड़ा ले। तेरी जैसी सुंदर मलिका के लिए यह छोटा टुकड़ा ही बहुत है। एक बार तेरी खुशबू सूँघ लेगा तो बस उस कुतिया को सूँघेगा भी नहीं। उस जड़ी के टुकड़े को बारीक पीसकर दाल में मिलाकर अपने घर वाले को परोस देना। उसका परिणाम क्या होगा तू ही देख लेना तुझे ही अपनी पत्नी बना लेगा। (पृ.23) भोली रानी को यह बातें समझ नहीं आती है कि फिर पत्नी बना लेगा। इतने में अप्पण्णा आता है। वहाँ अँधी माँ को देखकर उसे गुस्सा आता है। फिर भी अँधी माँ नई दुल्हन से मिलने की बात करती है तब वह कहता है कि, ''वह किसी से बात नहीं करती। किसी को उससे बात करने की जरूरत भी नहीं है।'' (पृ.24) और अँधी माँ को वहाँ से भगाता है। उसके बाद कोई घर के आस-पास न आए इसलिए अप्पण्णा एक हिंसक शिकारी कुत्ता लाने की सोचता है।

रानी डरते-डरते अँधी माँ ने दी एक जड़ी को अच्छे से पीसकर दूध में मिलाती है। अप्पण्णा उस दूध को पीता है और बाहर जाने के लिए निकलने ही वाला था कि उसे चक्कर आते हैं। वह कुछ समय के लिए बेहोश होकर नीचे गीर जाता है। रानी बहुत घबरा जाती है। वह रसोईघर से पानी लाकर उसकी कुछ छिटें अप्पण्णा के मुँह पर मारती है। वह होश में आता है और रानी को जोरदार धक्का देकर घर के बाहर आता है। बड़ा सा ताला लगाकर फिर चला जाता है। रानी वहीं रोते हुए बैठ जाती है। अँधी माँ अपने जड़ी के असर को देखने वापस रानी के पास आती है। तब रानी को रोता देख वह समझ जाती है कि इस छोटी सी जड़ी का कोई असर अप्पण्णा पर नहीं हुआ है। इसलिए अब की बार वह रानी को बड़ी जड़ियाँ देती है ओर उसे अच्छे से पीसकर दाल में मिलाने को कहती। रानी पहले तो इंकार करती है। क्योंकि उसे डर था कि छोटी जड़ियाँ मिलाने पर अप्पण्णा बेहोश हो गया था। अब अगर यह जड़ियाँ खिला दूँगी तो जान का खतरा भी

हो सकता है। अप्पण्णा जैसा भी था लेकिन वह उसका पति था। लेकिन अँधी माँ उसे समझाती है कि उस रखैल ने अप्पण्णा पर इससे भी बड़ी जड़ियाँ का प्रयोग करके अपने चंगुल में फँसाया होगा। इसलिए तुम्हें अपने पति को वापस लाने के लिए इस जड़ी का प्रयोग करना ही होगा। रानी तैयार हो जाती है। वह उस जड़ियाँ को पीसती है और दाल बनाने लगती है।

इतने में अप्पण्णा दोपहर का भोजन करने घर आता है। इस बार उसके साथ एक शिकारी हिंसक कुत्ता था। उसने 50 रुपए में इसे खरीदा था। वह उसे अपने आँगन में बाँध देता है। वह जोर-जोर से भौंकता रहता है। रानी डरते-सहमते हुए बाहर आती है। अप्पण्णा नहाने के लिए गुसलखाने में चला जाता है। तब रानी डरते हुए उस पिसी हुई जड़ी को उबलते हुए दाल में डालती है। दाल में जड़ी को डालते ही वह रक्त की तरह लाल होकर उबलने लगती है। उसे देखकर रानी बहुत ही डर जाती है। वह मन ही मन सोचती है-''यह क्या? खून? विष का धुँआ? इसे मैं अपने पति को परोसूँ? उस अँधी माँ को तो कुछ दिखाई नहीं देता। पर इनकी तो आँखें हैं। इन्हें यह उबलता खून गिरता दिखेगा नहीं? संन्यासी के कहे अनुसार हो सकता है इन्हें दिखाई न दे। पर कुछ अनहोनी हो जाय तो? आगे क्या होगा? उस जड़ी के छोटे से टुकड़े से ही चक्कर आय गया था। अब इससे नहीं, नहीं भगवान, मुझसे गलती हो गयी। मैंने महान अपराध कर डाला।'' पृ. 27) वह डरके मारे अप्पण्णा आने से पहले उस दाल को फेंकना चाहती थी। गुसखाने में दाल फेंके तो वहाँ अप्पण्णा नहा रहा था। इसलिए वह घर के बाहर एक साँप की बाँबी (घर) देखती है। और वह उबलती हुई जड़ीमिश्रित दाल साँप की बाँबी पर फेंक देती है। कुत्ते को भोंकता सुन अप्पण्णा बाहर आता है और रानी से पूछता है कि कहाँ गयी थी? और गुस्सा होकर उसे जोरदार थप्पड़ मारकर कमरे में बंद करके बिना खाए चला जाता है।

लेकिन इधर वह दाल साँप की बाँबी रहने वाले साँप के मुँह में चली जाती है। गरम दाल के कारण शरीर जलने से एक बड़ा नाग उस बील से बाहर आकर फन उठाए डोलने लगता है। वह रानी की ओर देखने लगता है और शिकारी कुत्ता जोर-जोर से भोंकने लगता है। दाल नाग के मुँह में चली जाने के कारण वह नाग रानी पर मोहित हो जाता है और उसी रात गुसलखाने की मोरी से घर के अंदर प्रवेश करके एक मनुष्य का रूप धारण कर लेता है।

❊ **द्वितीय अंक की कथावस्तु :** नाटक का प्रथम अंक जहाँ समाप्त होता है वहीं से नाटक के दूसरे अंक की शुरुआत होती है। उसी रात वह इच्छाधारी नाग रानी के पति अप्पण्णा का रूप धारण करके घर में प्रवेश करता है। नाटककार गिरीश कर्नाड जी ने सुविधा के लिए इस पात्र को नागप्पा यह नाम दिया है। रानी अपने कमरे में सोई हुई है तब यह नाग अप्पण्णा का रूप धारण करके उसके कमरे में प्रवेश करता है। वह उसे बिस्तर पर जाकर बैठता है और प्यार से उसके गाल सहलाता है। रानी इस स्पर्श से डर जाती है और उठ बैठती है। सामने पति अप्पण्णा को देख उसे आश्चर्य होता है। क्योंकि अप्पण्णा कभी-भी रात के समय घर में नहीं होता था। वह रानी के सुंदरता की प्रशंसा करने लगता है। रानी को अप्पण्णा के इस बदले हुए रूप और बर्ताव से हैरानी होती है। पहले दिन दोनों दूर-दूर बैठकर बातें करते हैं। रानी वहीं सो जाती है और

नागप्पा फिर से नाग का रूप लेकर गुसलखाने की मोरी से अपने बिल में वापस चला जाता है। सुबह होते ही अप्पण्णा घर खाने के लिए आता है। रानी मुस्कुराते हुए अप्पण्णा से कहती है, 'आप कब चले गये, मालूम ही नहीं।' अप्पण्णा चिढकर क्या? तब रानी घबराकर कहती है, कुछ भी नहीं। अप्पणा कहता है, 'नहाकर आता हूँ। खाना परोसो।' (पृ.36) भोली रानी को अप्पण्णा का यह व्यवहार समझ में नहीं आता। उसे लगता है कि उसने रात में कोई सपना देखा होगा। फिर रात होती है, नाग गुसलखाने के मोरी से आकर फिर अप्पण्णा का रूप धारण करता है और रानी के कमरे में प्रवेश करता है। रानी रोते हुए नागप्पा को कहती है कि आप ऐसे क्यों व्यवहार करते हो। सुबह आप इतने सख्त होते हो और रात को मुझ से स्नेह करते हो। रानी कुछ लेने के लिए अलमारी की ओर जाती है, तब उसे शीशे में बिस्तर पर नाग की प्रतिकृति दिखती है। वह घबराकर चिल्लाती है तो नागप्पा झटसे शीशे के सामने से हट जाता है। वह रानी को समझाता है कि उसे कुछ वहम हुआ है। बिस्तर पर तो कुछ भी नहीं हैं। रानी भी समझ जाती है कि अकेली रहने के कारण उसे भ्रम हो रहे हैं। वह नागप्पा को नाग और चिड़िया को लेकर जनश्रृति बताती है जो उसने अपने पिता से सुनी थी। उस दिन नागप्पा और रानी अपने प्रेम की चरमसीमा को छू लेते हैं। रानी नागप्पा को कल के प्रेम को लेकर प्रेमपूर्वक उलाहनें देती है। नागप्पा उसे प्रेम के पथ पर आगे बढने के लिए बधाई देता है। भोर होते ही नाग अप्पण्णा के रूप में गुसलखाने की ओर बढता है।

अँधी माँ अपनी जड़ियाँ का असर हुआ है या नहीं यह देखने कप्पण्णा के साथ आती है। कप्पण्णा अप्पण्णा को गुसलखाने की ओर जाते हुए देखता है। लेकिन असल में वह नागप्पा था जो गुसलखाने की मोरी में से नाग बनकर बिल में जाता है। कप्पण्णा नाग को देखता है और अंधी माँ को वहाँ से चले जाने को कहता है। अँधी माँ रानी को जड़ियाँ के असर के बारे में पूछती है तो रानी कुछ नहीं बताती है। घर में कोई न होने की बात कहती है जबकि घर को अंदर से कुंडी लगाई गई थी। तब अँधी माँ को लगता है कि अप्पण्णा और रानी में प्यार का खेल शुरू हुआ है और वह इस बात के लिए खुश होकर चली जाती है।

कप्पण्णा को अप्पण्णा ने लाया हुआ कुत्ता मरे हुए हालत में मिलता है। उस रात नागप्पा के कान और गालों पर घाव के निशाण थे। अर्थात् शिकारी कुत्ता और नाग के बीच लड़ाई हुई थी जिसमें रानी को परेशान करने वाले शिकारी कुत्ते को नागप्पा ने काँटकर मार डाला था। दूसरे दिन सुबह जब अप्पण्णा घर आता है तो उसे अपना शिकारी कुत्ता मरा हुआ मिलता है। उसे बहुत गुस्सा आ जाता है। उसने वह कुत्ता 50 रुपए देकर लाया था। उसे पता चलता है कि नाग के काँटने से कुत्ते की मौत हुई है। ईर्या चमार को बुलाकर कुत्ते की लाश का बंदोबस्त करता है। अप्पण्णा रानी को कुत्ते के बारे में पूछता है तो वह कुछ पता न होने की बात कहती है। लेकिन रानी ने कल रात अप्पण्णा के कान और गाल पर जो घाव देखा तो आज नहीं था। रानी को कुछ समझ में नहीं आता कि यह उसके साथ क्या हो रहा है।

शिकारी कुत्ते के मर जाने के बाद अप्पण्णा का गुस्सा बढ जाता है। अब की बार वह एक मंगूस लाकर घर के सामने बाँध देता है। लेकिन मंगूस भी एक दिन ही जीवित रह पाता है। लेकिन नाग और उसमें जोरदार लड़ाई हुई थी। इसकारण नाग बूरी तरह घायल हो गया था। उस रात नागप्पा रानी के पास नहीं आता। दूसरे दिन मंगूस की लाश देखकर रानी बेहोश होती है। जख्मी हो जाने के कारण अगले पंद्रह दिन

नागप्पा रात को रानी के पास नहीं आ पाता। रानी फिर से विरह वेदना में तड़पती रहती है। पंद्रह दिनों के बाद नागप्पा रानी से मिलने रात को आता है। तब रानी बहुत खुश होती है। नागप्पा अर्थात् अप्पण्णा के शरीर पर चोटें देख वह उस पर मरहम लगाती है लेकिन उसे चोटें आने का कारण नहीं पूछती। वह नागप्पा को बताती है कि उसके गर्भ में उसके प्रेम का अंकुर विकसित हो रहा है। वह चार माह की गर्भवति है। नागप्पा यह सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है। उसकी कोई भी प्रतिक्रिया न देख रानी उदास होती है। तब नागप्पा इस रहस्य को किसी को न बताने की बात कहता है- ''तुमने इतने दिन से यह बात छिपाये रखी, यह अच्छा ही हुआ। आगे भी जितने दिन हो सके, इसका जिक्र नहीं करना। वह रहस्य बनकर ही रहे।''(पृ.48) रानी को आश्चर्य होता है कि भला गर्भवति होने की बात कैसे छिपाई जा सकती है? वह कहती है- ''करूँगी। यह नहीं पूछो क्यों, 'जैसा कहता हूँ वैसा करो। ठीक है, नहीं पूछूँगी। करूँगी। सुबह चिढे-चिढे रहना, रात को प्यार। दिन का मुँह कुछ और रात का रूप-स्पर्श कुछ और। एक का दूसरे से संबंध नहीं। पर यह नहीं पूछना 'क्यों'। दोनो समय का सूत्र एक ही- जो कहता हूँ, वह करो।' (पृ.49) रानी को पता था कि उसका गर्भवति होना पति को अच्छा नहीं लगा। इसलिए वह गर्भपात करने की सोचती है, लेकिन नागप्पा उसे ऐसा कुछ न करने की सलाह देता है और भोर होते ही वापस नाग की बाँबी में चला जाता है।

दूसरी सुबह अप्पण्णा घर में आकर कोलाहल शुरू करता है। उसे रानी गर्भवति होने की बात पता चलती है। वह उसे धक्का देते हुए गिराता है और कहता है, ''हाँ, कहने में शरम नहीं आती रंडी कहीं की। बाहर से ताला बंद रखने पर भी यार ढूँढ रखा है। बता, कौन मिल गया तुझे? किस हरामजादे के पास जाती थी, साड़ी खोलकर?''(पृ. 50) रानी बहुत ही झल्ला जाती है। अप्पण्णा का यह रूप और आरोप देखकर वह मासुमियत से विलाप करती रहती है। बाहर नाग फन निकालकर रानी के घर के आस-पास चक्कर काँटता रहता है। रानी नाग को देखती है और अप्पण्णा पत्थर उठाकर उसकी ओर फेंकता है। नाग पलभर में अदृश्य हो जाता है। अप्पण्णा उसे गालियाँ देकर मार-पीटकर पंचायत के सामने हाजिर करने की बात कहकर निकल जाता है। रानी रोती-बिलखती रहती है। रात को वह पड़े-पड़े रो रही थी कि इतने में अप्पण्णा के रूप में नागप्पा आ जाता है। वह रानी को समझाता है कि उसे पंचायत के सामने जाकर अपने पतिव्रत्य की परीक्षा देनी ही होगी। वह उसे नाग दिव्य करने के लिए कहता है। इसके सिवाय कोई विकल्प न होने की बात वह कहता है। रानी को डर लगता है। वह सारे पंचायत और गाँव वालों के सामने बेइज्जत होने से अच्छा अपने हाथों से जहर पिलाने को कहती है। लेकिन नागप्पा उसे समझाता है कि इस परीक्षा से उसे कुछ नहीं होगा। वह इस परीक्षा में पास होगी और अप्पण्णा उसे स्वीकार कर लेगा।

अप्पण्णा अपनी पत्नी रानी को चौपाल पर लगी पंचायत के बुजुर्ग पंचों के सामने पेश करता है। पंच उसे अपना अपराध मान्य करने को कहते हैं जिससे रानी को कोई परीक्षा नहीं देनी पड़ेगी। लेकिन रानी कहती है कि उसने कोई पाप नहीं किया। तब पंच उसे खौलते हुए तेल से चिमटा निकालने या गर्म सलियाँ को उठाने या फिर नाग दिव्य करने को कहते हैं। रानी पहले तो नाग दिव्य की परीक्षा देना स्वीकार करती है। तब बुजुर्ग पंच उसे समझाते हैं कि नाग के जहर से उसकी और उसके गर्भ में पल रहे बच्चे की मौत हो

सकती है। और वे भ्रूण हत्या का पाप नहीं लेना चाहते। साँप की बाँबी से बाहर आए नाग को देखकर वह डर जाती है और फिर से अपना विचार बदलते हुए गर्म सलियाँ उठाने की बात कहती है। इसकारण पंच सलियाँ गर्म करने के लिए रखते हैं। इतने में अंधी माँ की आवाज आती है। वह अपने बेटे कप्पण्णा का नाम लेकर उसे तलाश रही है। गाँव वाले बताते हैं कि कुछ दिनों से कप्पण्णा गाँव से गायब हुआ है और उसकी अंधी माँ उसे ढूँढते-ढूँढते पागल हो चुकी है। उसका कहना है कि कप्पण्णा को रोज कोई मायाविणी या यक्षिणी दिखाई देती थी। वह उसे देख नहीं सकती थी लेकिन कप्पण्णा उसकी बातें कहता था। उसी यक्षिणी मेरे बेटे को साथ लेकर गई है, ऐसा मानकर वह पागलों की तरह उसकी तलाश में भटकती रहती है। रानी को अंधी मां की दुर्दशा देखकर बहुत दुःख हो जाता है। अंधी माँ की दुर्दशा देखकर रानी को भी ऐसे जीवन से मृत्यु अच्छा लगता है और वह फिर से नागराज की बाँबी में हाथ डालकर नाग दिव्य करने की बात कहती है। तब पंच उसे नाग के बाँबी में हाथ डालकर नाग को पकड़कर कसम खाने को कहते हैं। रानी नागराज को हाथ में लेकर कसम खाती है, ''विवाह करके यहाँ आने के बाद मैंने इन हाथों से आज तक केवल दो को ही छुआ हैं। अप्पण्णा : आप लोगों ने सुना? वही मान रही दो। दो कौन? रानी : मेरा पति। अप्पण्णा : अच्छा और दूसरा कौन? रानी : यह 'नागराज'। मेरा पति और यह नागराज इन दो के अलावा मैंने किसी और को छुआ तक नहीं। किसी भी पुरुष को मैंने अपना शरीर छूने नहीं दिया। यह झूठ हो तो यह नागराज मुझे डस ले। और मैं यहीं मर जाऊँ।'' (पृ.57) रानी द्वारा यह कसम खाने के बाद नाग उसे कुछ नहीं करता। वह बहुत ही सौम्य होकर रानी के कंधों से रंगते हुए उसके सिर पर चढकर फन निकालता है। इस करीश्मे को देखकर बुजुर्ग पंचों, अप्पण्णा समेत सभी गाँव वाले हक्के-बक्के रह जाते हैं। बुजुर्ग पंच चिल्लाते है कि ''अप्पण्णा की स्त्री कोई मामूल स्त्री नहीं है, यह देवी है देवी। अत्यंत साहसी, प्रतिव्रता। अप्पणा, तुम्हारी पत्नी पूरी तरह देवी का अवतार है।''(पृ. 57) पूरे गाँव वाले आकर उसे चरण छूकर प्रणाम करते हैं। फिर एक पालखी लाकर अप्पण्णा और रानी को बिठाकर जयकारा करते हुए उनके घर तक छोड़ा जाता है। अप्पण्णा भी अपनी पत्नी के इस साहस को देखकर आश्चर्यचकित होता है। वह भी गाँववालों के सामने उसके चरण छूकर माफी माँगता है। कालांतर में उन्हें एक बेटा होता है और तीनों सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

❊ **कथानक के तीन अंत :** 'नागमंडल' इस नाटक की एक यह विशेषता रही है कि नाटककार गिरीश कर्नाड जी ने रंगमंच की दृष्टि से विवेच्य नाटक के तीन अंत दिखाए हैं। जिसमें पहला अंत जिसमें अप्पण्णा अपनी पत्नी रानी को गाँववालों के समान ही देवी का अवतार समझकर उससे माफी माँगता है और बेटे के साथ उसका स्वीकार करके सुखपूर्वक जीवन बिताता है।

दूसरा अंत इस तरह दिखाया गया है कि इसमें एक दिन नागराज (नागप्पा) को फिर से रानी को देखने की इच्छा होती है। क्योंकि वह रानी की सुंदरता पर पहले से ही आसक्त था। तब वह एक रात गुसलखाने की मोरी से घुँसकर रानी के कमरे में प्रवेश करता है। वह देखता है कि रानी के साथ बिस्तर पर उसका बेटा और साथ में उसका पति अप्पण्णा सोया हुआ है। रानी अपने सुंदर बाल बिस्तर पर बिखेरकर अपने पति अप्पण्णा की बाहों में चैन से सो रही है। यह देखकर नागराज को बहुत दुःख होता है। वह सोचता है कि

इतना मादक सौंदर्य अब अप्पण्णा के बाहों में हमेशा के लिए चला गया है। अब मेरे जीने की अंतिम आस भी समाप्त हुई तब वह रानी के बालों में रंगते हुए चला जाता है और उसके बालों का फँदा बनाकर खुदकुशी कर लेता है। रानी सुबह उठकर जब अपने बाल बनाना चाहती है तो बालों में उसे अजीब-सा एहसास होता है। उसके बालों में कंघी फँस जाती है। तब वह अप्पण्णा की मदद लेती है। अप्पण्णा जब ताकत से उसके बालों से कंघी घुमता है तब नागराज का शव नीचे गीर जाता है। दोनों भी घबरा जाते हैं। अप्पण्णा उसका अंतिम संस्कार करने का सोचता है। तब रानी अप्पण्णा से कहती है कि नागराज का अंतिम संस्कार अपने बेटे के हाथों से किया जाए और हर वर्ष उसके ही हाथों नागराज का पिंडदान भी किया जाए। अप्पण्णा को रानी की यह बात बहुत अजीब लगती है लेकिन उसकी जिद के आगे वह हार जाता है। वह अपने बेटे के ही हाथों नागराज का अंतिम संस्कार करके पिंडदान करता है।

नाटक का तिसरा अंक इस तरह है, रानी का सिर भारी हो जाता है। वह अप्पण्णा को कहती है कि उसके बाल कोई जड़ों से खिंच रहा है। अप्पण्णा देखता है कि एक बहुत बड़ा नाग रानी के कशों में रेंग रहा है। वह उसे मारने के लिए लाठी ढूँढने जाता है। रानी धीरे से नाग को हाथ में लेकर कहती है, तुम फिर वापस क्यों आए। जल्दी से यहाँ से चले जाओ वरना अप्पण्णा तुम्हें मार डालेगा। लेकिन नाग नहीं जाता वह बालों में ही रेंगता रहता है। तब रानी नागराज को हमेशा के लिए अपने लम्बे बालों में ही समा लेती है और अप्पण्णा लाठी लेकर उसे गुसलखाने की ओर खोजने के लिए चला जाता है। रानी उसे कहती है, ''यहीं रहो, मेरे बाल सुहाग की निशानी हैं। यहीं सदा सुख से रहो, आराम से तो हो न? अब मुझे अपने बच्चे को दूध पिलाना है।'' (पृ. 65) इसतरह नाटककार गिरीश कर्नाड जी ने विवेच्य नाटकों के तीन कलात्मक अंत दिखाए हैं।

2.3.4 'नागमंडल' के प्रमुख पात्र:

'नागमंडल' नाटक में मूलत: दो अंकों का है, जिसमें रानी और अप्पण्णा के दाम्पत्य जीवन की कहानी बताई है। लेकिन बाद में उनके दाम्पत्य जीवन में नागप्पा (इच्छाधारी नाग) का प्रवेश होता है। इसकारण रानी, अप्पण्णा और नागप्पा ये तीन नाटक के प्रमुख पात्र है। नाटक में अंधी माँ, उसका बेटा कप्पण्णा सहायक पात्र के रूप में दृष्टिगत होते हैं। तो नाटक में रानी के माता-पिता, अंधी माँ के पति, संन्यासी बाबा, बुजुर्ग पंच–1 बुजुर्ग पंच–3 और बुजुर्ग पंच–3, गाँववाले आदि गौण पात्र है। अत: प्रमुख एवं सहायक पात्रों के चरित्र-चित्रण का विवेचन इसप्रकार है-

❊ नाटक के प्रमुख पात्र :

विवेच्य नाटक में रानी, उसका पति कप्पण्णा और नागप्पा यह तीन पात्र प्रमुख है। रानी और कप्पण्णा के कुट दाम्पत्य जीवन में नागप्पा के प्रवेश से कहानी को नया मोड़ मिलता है। अत: इन तीन प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण इसप्रकार है।

3.4.1 रानी :

'नागमंडल' नाटक की प्रमुख स्त्री पात्र के रूप में रानी का परिचय मिलता है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं को निम्नांकित मुद्दों पर समझने की कोशिश करते हैं-

3.4.1.1 सुंदर और रूपवान रानी:

रानी अपने माँ-बाप की एकलौती संतान थी। वह बहुत सुंदर और रूपवान थी। रानी के बाल घने और लंबे थे। इसकारण वह अपने लंबे बालों का एक बड़ा जूड़ा बनाती थी। जब वह अपने बालों का जूड़ा बनाती थी तब ऐसा लगता कि साँप कुंडली मारकर झूम रहा हो। जब बालों को खोल देती तो काली घटा की तरह चमचमाते और पैर की पायलों को चूमते थे। जब अँधी माँ खिड़की से उसके चेहरे को छूती है तब उसके सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहती है-''हाय राम! तुम कितनी सुंदर हो। कान तो अड़हल के फूलों जैसे हैं। गाल रागी के लड्डू हैं। होंठ तो रेशम के लच्छे हैं। ऐसी सुंदर लड़की घर में अकेली छोड़कर गाँव में वह कैसे घूमता-फिरता है।'' (पृ.21) अत: स्पष्ट है कि रानी एक बेहद खूबसुरत युवती थी।

3.4.1.2 पति से प्रेम के लिए व्याकुल पत्नी:

रानी अपने माता-पिता की एकलौती संतान थी। उसकी शादी अप्पण्णा से बचपन में ही हुई थी। अप्पण्णा भी एक अमीर घर का लकलौता बेटा था। लेकिन बचपन में ही माता-पिता की मौत के कारण वह गुस्सैल और व्याभिचारी बन गया था। रानी रजस्वला हुई तो अप्पण्णा उसे मायके से अपने घर लाता है। लेकिन यहाँ आकर उसे पति का प्रेम नहीं मिलता जिसके उसने सपन संजोए थे। घर पहुँचते ही अप्पण्णा रानी को कैद करके रखैल के पास चला जाता है। वह रातभर गाँव की एक वेश्या की कोठी पर पड़ा रहता है और दोपहर का खाना खाने के लिए वापस आता है। रानी पति का प्रेम पाने के लिए तरसती रहती है लेकिन उसे अप्पण्णा से गुस्सा और मारपीट ही मिलती है। वह संशयी वृत्ति का होने के कारण रानी से कोई न बोले इसलिए हमेशा घर में बंद करके बाहर से ताला लगाता है। बाद में वह घर के आस-पास कोई न आए इसलिए शिकारी कुत्ता और मंगूस लाकर बाँधता है। पति का प्रेम पाने की व्याकुलता के कारण ही वह अंधी माँ से दिव्य जड़ियाँ लेती है। इन जड़ियों का प्रयोग करके वह अपने पति अप्पण्णा को अपने प्रेम में आसक्त बनाना चाहती थी। लेकिन जड़ी के दाल में मिलाने से हुए रक्तवर्ण से वह घबराती है और वह दाल साँप की बाँबी पर फेंक देती है। रानी ने शादी के बाद जिस पति प्रेम की कामना की थी वह पूरी नहीं होती। वह रात भर अपने माता-पिता को याद करके रोती रहती है। वह पति का प्रेम पाने के लिए व्याकुल होकर बस सपने देखती रहती है।

3.4.1.3 पति प्रताड़ना का शिकार :

रानी को पूरे नाटक में अपने पति अप्पण्णा की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। अप्पण्णा पुरुषप्रधान सोच रखनेवाला एक निर्दयी पति था। उसका स्वभाव गुस्सैल और अहंकारी होने के कारण

गाँववाले उससे दूर ही रहते थे। घर में इतनी सुंदर पत्नी होने के बावजूद वह किसी वेश्या पर आसक्त होकर रात को घर नहीं आता था। उसका स्वभाव शक्की होने के कारण वह पत्नी को घर में कैद रखता और किसी के साथ बोलने नहीं देता। रानी द्वारा कुछ पूछने पर वह उसपर क्रोध करता था जिससे रानी का उसके सामने जुबान खोलने का साहस नहीं होता। जब रानी अंधी माँ ने दी दिव्य जड़ी पिसकर दूध में मिलाकर अप्पण्णा को पिलाती है तो वह बेहोश हो जाता है। कुछ समय के बाद होश आने पर वह रानी को धक्का देकर गुस्से घर के बाहर निकल जाता है। रानी के आस-पास कोई न आए इसलिए घर के आँगन में शिकारी कुत्ता और मंगूस लाकर बाँधता है। बाद में जब रानी के गर्भवति होने की बात वह सुनता है तो वह जमीन-आसमान एक करता है। वह उसे गालियाँ देकर पीटता हुए कहता है– ''हाँ, कहने में शरम नहीं आती रंडी कहीं की। बाहर से ताला बंद रखने पर भी यार ढूँढ रखा है। बात, कौन मिल गया तुझे? किस हरामजादे के पास जाती थी, साड़ी खोलकर?'' (पृ. 50) वह उसे गाँव के पंचायत के सामने घसीटता है और इस बच्चे का बाप मैं नहीं होने का उसपर आरोप लगाकर पंचों को न्याय करने को कहता है। पंच भी उसे खौलते तेल में हाथ डालने, गर्म लोहा उठाने या फिर नागदिव्य की परीक्षा देने को कहते हैं। इसप्रकार रानी शादी के पहले दिन से अंत तक पति की प्रताड़ना को सहती है।

3.4.1.4 असंमजस्य में फँसी पत्नी का रूप :

विवेच्य नाटक में रानी का व्यक्तित्व में असंमजस्य पत्नी का रूप दिखाई देता है। रानी का जीवन सुबह और रात के बीच पति के आचरण से असंमजस्य में फँसा हुआ है। रानी ने पति अप्पण्णा को मोहित करने के लिए अंधी माँ से जिस दिव्य जड़ियाँ को पीसकर दाल में डाला था उसका रक्त वर्ण देखकर वह डर जाती है। उस दाल को वह साँप की बाँबी पर फेंक देती है जिससे वह दाल नाग के मुँह में चली जाती है और वह रानी के सौंदर्य पर मोहित होता है। वह एक इच्छाधारी नाग होने के कारण वह रानी के पति अप्पण्णा का रूप धारण करके रात के समय रानी से मिलने जाता है। इस बात से रानी अनभिज्ञ थी। अप्पण्णा के रूप में रात में आने वाले नागप्पा के प्रेम को देखकर वह आश्चर्यचकित होती है और वही अप्पण्णा जब सुबह आता है तब उसके रूखे व्यवहार को देखकर पुनः दुःखी होती है। अप्पण्णा के इस प्रेम के द्वंद्व से वह असंमजस्य में फँसकर कहती है-''अब मैं पत्नी हूँ, माँ भी तोता नहीं, बिल्ली नहीं। चिड़ियाँ भी नहीं। मुझमें भी कुछ समझ है। यह मानकर, समझकर क्यों नहीं बताते आप, क्यों ऐसा खेल खेल रहे हैं? सुबह से शाम तक आप क्यों गिरगिट के समान रंग बदलते रहते हैं? इस तरह से तो ऐसा लगता है कि सिर के फटकर दो टुकड़े हो जाएंगे।'' (पृ. 49) खुद नाटककार गरीश जी ने रानी की इस स्थिति को संयुक्त परिवार की युवती के रूपक से जोड़ दिया था। संयुक्त परिवार में पति सुबह एक अलग तरीके से पत्नी को मिलता है और रात के समय में वह बिलकुल उससे भिन्न रूप से आचरण करता है। स्पष्ट है कि रानी पति अप्पण्णा के सुबह और रात के दोहरे व्यक्तित्व से परेशान हो जाती है।

3.4.1.5 रानी की अग्निपरीक्षा :

विवेच्य नाटक में रानी भारत की पितृसत्तात्मक एवं पुरुषप्रधान व्यवस्था की शिकार होती है। उसका पति अप्पण्णा व्याभिचारी है और पूरा गाँव उसके इस गंदे चरित्र से भलीभाँति परिचित है। लेकिन उसे कोई अग्निपरीक्षा नहीं देनी पड़ती। लेकिन रानी गर्भवति होती है तब अप्पण्णा उसपर व्याभिचार के आरोप लगता है। उसने रानी को छूआ तक नहीं तो वह गर्भवति कैसे हुई? यह आरोप लगाकर वह उसे गाँव की पंचायत में घसीटता है। रानी अप्पण्णा और नागप्पा के दोहरे चरित्र से अनभिज्ञ थी। वह मासुमियत से खुद को निरापराध बताने की कोशिश करती है। वह अप्पण्णा को सब के सामने इज्जत न उछालने की बिनती करती है-''मेरी इज्जत क्यों उतार रहे हैं? इतने दिन मुझे घर में छिपाकर रखा। अब सड़क पर धकेलकर सारे गाँववालों के सामने मुझे नंगा कर रहे हैं? क्यों? इससे तो मार क्यों नहीं डालते? मैं खुद मर जाती। पर फाँसी लगाना चाहूँ तो घर में एक रस्सी भी नहीं है।'' (पृ.51) रानी पंचों के सामने और गाँववालों की मौजूदगी में नाग दिव्य की परीक्षा देकर खुद को पवित्र साबित करती है।

3.4.1.6 रानी की मानवीयता एवं पति परायणवृत्ति :

विवेच्य नाटक में रानी मानवीय गुणों में सर्वोच्च स्थान पाती है। उसका पति अप्पण्णा उसपर इतने अत्याचार और जुल्म करता है फिर वह अपने पति के लंबी उम्र की कामना करती है। अंधी माँ द्वारा दी जड़ बूटी से दाल जब रक्त वर्ण हो जाती है तो वह डर जाती है। उसे अपराधबोध होता है कि यह दाल अगर अप्पण्णा को खिलाई जाती तो वह मर जाता। वह इसे पाप समझकर उस दाल को फेंक देती है। उसका यह अपराध बोध उसमें निहित मानवीयता के गुण के कारण है। वह कहती है-''यह क्या? खून? विष का धुआँ? इसे मैं अपने पति को परोसूँ? नहीं, नहीं, भगवान, मुझसे गलती हो गई? मैंने महान अपराध कर डाला। ऐसे अच्छे माँ-बाप के पेट से जन्म लेकर मैं पाप कार्य करने चली थी। नहीं। इन्हें पता चलने से पहले ही इसे कहीं दूर ले जाकर फेंक आना चाहिए।'' पृ. 28 इससे रानी में निहित मानवीय गुण दिखाई देता है।

साथ ही जब नागप्पा को उसके गर्भवति होने की बात पता चलती है तो वह इस बात को सब से छिपाकर रखने को कहता है। नागप्पा के असलियत से अनभिज्ञ मासुम रानी को इस बात पर हैरानी होती है। फिर वह उसे पति का आदेश मानकर स्वीकारते हुए कहती है-''करूँगी। यह नहीं पूछो 'क्यों', 'जैसा कहता हूँ वैसा करो'। ठीक है, नहीं पूछूँगी। करूँगी। सुबह चिढे-चिढे रहना, रात को प्यार। दिन का मुँह कुछ और रात का रूप-स्पर्श कुछ और। एक का दूसरे से संबंध नहीं। पर यह नहीं पूछना 'क्यों'। दोनों समय का सूत्र एक ही- 'जो कहता हूँ, वह करो।' (पृ. 49) स्पष्ट है कि रानी पति की हर बात को मानते हुए अपना पति धर्म निभाती है।

नाटक के एक अंत में नाग रानी के बालों से फाँसी लगाकर आत्महत्या करता है। तब रानी अप्पण्णा से इस नाग का अंतिम संस्कार अपने बेटे के हाथों से करने और हर वर्ष बेटे के ही हाथों उसका पिंडदान करने को कहती है। अप्पण्णा भी उसकी बात मानकर अपने बेटे के हाथों नाग का अंतिम दाह संस्कार करके

पिंडदान करवाता है। तो दूसरे एक अंत में नाग को अप्पण्णा से बचाकर हमेशा के लिए अपने बालों में समा लेती है। इससे रानी में नाग के प्रति मानवीयता दिखाई देती है।

3.4.1.7 रानी का देवी रूप :

विवेच्य नाटक में जब रानी पंचायत और गाँव वालों के सामने नाग दिव्य की परीक्षा देते हुए कहती है कि, ''मैंने अपने जीवन में मेरे पति और इस नाग को अलावा किसी को छुआ तक नहीं'' (पृ.57) तब नाग रानी के हाथों से रंगते हुए उसके बालों से सर पर जाकर फन निकालकर डोलने लगता है। तब पंच, पति अप्पण्णा और सभी गाँव वाले हक्के-बक्के देखते रहते हैं। क्योंकि जनरीति के अनुसार नाग दिव्य परीक्षा के समय यदि कोई झूठ बोलता है तो नाग उसे काँटता है और उसके जहर से उस व्यक्ति की मौत हो जाती है। पंच और गाँव वाले रानी को देवी का रूप मानकर जयजयकार करने लगते हैं। पंचों में से एक बुजुर्ग कहता है-''अप्पण्णा, तुम्हारी पत्नी पूरी तरह देवी का अवतार है। यह सोचकर चिंतित न होना कि ऐसी देवी पर दोष लगाया। ऐसी महादेवी का चमत्कार दुनिया को पता चले, सोचकर ही भगवान ने तुम्हारे मुँह से वह बात कहलायी। तुम तो पुण्यात्मा हो।'' (पृ. 57) सभी लोग अप्पण्णा और रानी को पालखी में बिठाकर घर तक लाकर छुडते हैं। अप्पण्णा भी रानी के दिव्य रूप से प्रभावित होकर उसके पैर छुकर क्षमा माँगता है।

3.4.2 अप्पण्णा :

नाटक का दूसरा प्रमुख पात्र अप्पण्णा है। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ इसप्रकार है-

3.4.2.1 गुस्सैल और धनवान युवक :

अप्पण्णा अपने माता-पिता का एक लौता बेटा था। उसके बचपन में ही उसके माता-पिता का देहांत हुआ था। उसके माता-पिता अपार संपत्ति अप्पण्णा को छोड़कर चले गए थे। किसी का भी नियंत्रण न होने के कारण वह बहुत अहंकारी, गुस्सैल युवक बना था। गाँववालों से उसकी बोलचाल बहुत कम थी। शराब और वेश्याओं के कोठे पर पड़ा रहता था। अप्पण्णा के दुर्गुणों के कारण गाँववाले उसे पसंद नहीं करते थे। कभी-कभार अंधी माँ (जो उसकी दाई थी) से उसकी बातचीत होती लेकिन वह उससे भी बहुत रूक्षता से पेश आता था।

3.4.2.2 क्रूर एवं संशयी पति :

अप्पण्णा बहुत ही निर्दयी, क्रूर और संशयी पति था। जब रानी को वह मायके से अपने घर लाता है तो पहले ही दिन से उसे ताला लगाकर कैद करता है। उसका स्वभाव बहुत ही संशयी था। पत्नी रानी बेहद खुबसूरत होने के कारण वह उसे घर में हमेशा बंद करके रखता और उसे किसी के साथ बोलने नहीं देता था। एक दिन अंधी माँ उसके शादी की खबर पाकर नई दुल्हन से मिलने आती है लेकिन उसे यह बात भी पसंद नहीं आती। वह अंधी माँ को कहता है कि, 'उसे किसी के साथ मिलने और बोलने की जरूरत नहीं है।' दूसरे दिन वह 50 रुपए देकर एक शिकारी कुत्ता लाकर घर के आँगने में बाँध देता है ताकि कोई भी

उसके घर के आस-पास न आए। लेकिन नाग के दंश से जब शिकारी कुत्ते की मौत होती है तब उसे बहुत गुस्सा आता है। वह रानी की पिटाई करता है और दूसरे दिन आँगन में एक मंगूस लाकर बाँध देता है। इन दोनों प्राणियों को आँगन में बाँधने के पीछे उसकी संशयी वृत्ति काम करती है।

3.4.2.3 निर्दयी पति :

अप्पण्णा अपनी पत्नी रानी को पहले दिन से ही घर में कैद करके रखता है। वह केवल दोपहर को खाना खाने के लिए घर आता है और पूरी रात गाँव की एक वेश्या की कोठी पर पड़ा रहता है। वह अपनी पत्नी के सुख-दुःख से कोई वास्ता नहीं रखता है। उसकी पत्नी रातभर अकेली माँ-बाप की यादों रोती रहती है। दोपहर भी जब वह खाना खाने के लिए आता है तब वह उसके साथ बहुत ही गुस्से से रूखा व्यवहार करता है। एक बार जब दूध पीने के बाद वह बेहोश होता है तब होश आने पर रानी के गाल पर तमाचा मारकर उसे धक्का देकर निकल जाता है। दूसरी बार जब रानी दाल फेंकने के लिए घर के बाहर गई थी और अप्पण्णा के बुलाने पर वह जल्दी वापस नहीं आती तब भी वह उसकी पिटाई करता है। शिकारी कुत्ता के रातभर भौंकने से रानी परेशान हो जाती है और उसकी रात की नींद भी हराम हो जाती है। लेकिन अप्पण्णा को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता। उल्टे शिकारी कुत्ते के मौत होने से क्रोधित होकर वह रानी की पिटाई करता है। वह रानी को किसी भी प्रकार का पति सुख नहीं देता। लेकिन जब रानी गर्भवति होने की बात उसे पता चलती है तो उसके पुरुषी अहं को ठेंस लगती है। वह रानी पर व्याभिचार का आरोप लगाते हुए उसे बड़ी ही निर्दयता से डाँटता-फटकारता है-''कुछ किये बिना ही गर्भ ठहर जाता है क्या? ऐसे छोडूँगा नहीं तुझे। सारे गाँव के सामने मेरी इज्जत उतारेगी? मेरा मुँह काला कराएगी, हरामी। इस हरामी पिण्ड को बाहर नहीं निकलवाया इस हरामी गर्भ पर पत्थर नहीं डाला तो मैं अपने बाप का बेटा ही नहीं।'' (पृ. 50) वह अपनी पत्नी रानी को गाँव की पंचायत के सामने घसीटता है और अग्निपरीक्षा देने के लिए मजबूर करता है। इससे अप्पण्णा के चरित्र में एक निर्दय पति का दुर्गुण दिखाई देता है।

3.4.2.4 रानी के अग्निपरीक्षा से प्रभावित पति :

अप्पण्णा पूरे नाटक में एक खल पात्र के रूप में चित्रित किया गया है लेकिन नाटक के अंत में उसके चरित्र में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देता है। रानी जब पंचों और सारे गाँववालों के सामने नाग को उठाकर कसम खाती है तो नाग उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाता है। वह उसके हाथों से रेंगते हुए उसके सिर पर जाकर फन निकालकर झूमने लगता है मानो उसने किसी देवी को ही छाया दी हो। रानी के इस दिव्य रूप से अप्पण्णा बहुत प्रभावित होता है। सभी गाँव वाले उसे देवी का अवतार समझते हैं और अप्पण्णा को पुण्यात्मा। अप्पण्णा रानी पर किए जुल्मों के लिए उसके पैर छुकर माफी माँगता है। वह उसके बेटे को स्वीकारते हुए सुखपूर्वक रहने लगता है। तब से वह पत्नी रानी की हर बात मानता है। नाग जब रानी की विरह वेदना से खुदकुशी करता है तब रानी उसका अंतिम संस्कार और हरवर्ष पिंडदान अपने बेटे के हाथों से करने की इच्छा जाहिर करती है। अप्पण्णा रानी की इस इच्छा को भी पूरा करता है। अत: अप्पण्णा के चरित्र में नाटक के अंत में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देता है।

3.4.3 नागप्पा :

प्रस्तुत नाटक का तिसरा प्रमुख पात्र नागप्पा है जो रानी के रूखे-सूखे दाम्पत्य जीवन में इंद्रधनुषी रंग लाने का प्रयास करता है। उसके चरित्र की विशेषताएँ इसप्रकार है-

3.4.3.1 नागप्पा : एक इच्छाधारी नाग:

प्रस्तुत नाटक में नागप्पा एक इच्छाधारी नाग है जो अप्पण्णा का रूप लेकर रात के समय रानी से मिलता है। अप्पण्णा और रानी के घर के पास में एक नाग की बाँबी थी जिसमें वह रहता था। रानी ने अंधी माँ के कहने पर अप्पण्णा को मोहित करने के लिए दाल में दिव्य जड़ी पीसकर मिलाई थी। लेकिन वह दाल रक्त की तरह उबलने के कारण रानी उसे विष मानकर पति अप्पण्णा के डर से उसे नाग की बाँबी पर फेंक देती है। उस दाल को नाग चख लेता है और वह रानी पर मोहित होकर अप्पण्णा की गैरमौजूदगी में रात के समय घर के गुसलखाने की मोरी से प्रवेश करके अप्पण्णा को रूप धारण करके रानी से मिलना शुरू करता है। मूलत: यह अप्पण्णा का ही छद्म रूप है जिसे नाटककार ने पाठकों की सुविधा के लिए नागप्पा का नाम दिया है।

3.4.3.2 रानी के सौंदर्य पर मोहित और आसक्त:

प्रस्तुत नाटक में उस दिव्य जड़ी मिश्रित दाल को चखने के बाद नाग रानी के सौंदर्य पर मोहित हो जाता है। वह जब उसे मिलने जाता है तो वह मन-ही-मन कहता है, ''तुम कितनी सुंदर हो। तुम्हारी जैसी कच्ची कली को ऐसा बेकार पति।'' (पृ.33-34) वह रानी के लंबे बाल और सुंदर मुख पर मोहित हो जाता है। इस सौंदर्य के वश होकर वह रानी के साथ यौन-संबंध भी बनाता है। इससे रानी गर्भवति हो जाती है। अंत में रानी जब अप्पण्णा के रूप में आए नागप्पा के कहनानुसार नाग दिव्य करके खुद को पतिव्रता साबित करती है तो अप्पण्णा उसको बेटे के साथ स्वीकार करता है और वे खुशी से रहने लगते हैं।

कुछ दिनों बाद नाग को फिर से रानी से मिलने की इच्छा होती है। जब वह रात को रानी के कमरे में प्रवेश करता है तब रानी अप्पण्णा की बाहों में अपने बेटे के साथ सोई हुई थी। इस दृश्य को देखकर नागराज को बहुत दु:ख होता है। वह उसके प्रेम के मोह में आसक्त होता है। वह रानी को अप्पण्णा की बाहों में बर्दाश्त नहीं करत पाता। वह व्याकुल होकर कहता है-''रानी। मेरी रानी। मेरी आधी रात की सुगंधि, स्वप्न सुंदरी। दूसरे की बगल में? यह इस पुरुष को इसी प्रकार आलिंगनबद्ध करती होगी। रोज उसके होंठ काटती होगी। बाँहों में नाखून गड़ाती होगी। और मैं खिसककर गिरी कैचुली। काँटों की नोक से अटकी कैचुली। नहीं, यह मैं सह नहीं सकता। हममें से किसी एक को मरना होगा।'' (पृ. 60) इसतरह नागप्पा रानी के प्रेम में आसक्त होकर उसके विरह में उसकी बालों का फँदा बनाकर खुदकुशी करता है।

3.4.3.3 रानी पर सच्चा प्रेम करनेवाला :

नागप्पा रानी के सौंदर्य पर जरूर मोहीत था लेकिन वह उसे सच्चा प्रेम करता था। वह रानी को कोई भी दु:ख या तकलीफ न हो इसका खयाल रखता था। जब अप्पण्णा रानी के पास कोई न आए इसलिए

शिकारी कुत्ता और मंगूस लाकर घर के आँगन में बाँध देता है। तब रानी शिकारी कुत्ते के रातभर भौंकने से परेशान हो जाती है। जब वह इसका जिक्र रात को नागप्पा के पास करती है तो वह दूसरे दिन उस हिंसक शिकारी से लड़ाई करके उसे मार देता है। इस लड़ाई में नागप्पा के कान और गाल पर चोटे आती है। उसके बाद वह मंगूस से भी जोरदार लड़ाई करता है। इसमें वह गंभीर रूप से घायल हो जाता है। वह केवल रानी का प्यार पाने के लिए यह जोखिम उठाता है। अप्पण्णा जब भी रानी पर अत्याचार करता है तब नागप्पा नाग के रूप में ही बिल आकर फत्कारता रहता था। अंत में अप्पण्णा रानी पर व्याभिचारी होने का आरोप लगाकर पंचायत के सामने पतिव्रता की परीक्षा देने के लिए कहता है तब भी नागप्पा रानी की सहायता करता है। वह रानी को पंचों के सामने केवल नाग दिव्य की परीक्षा देने को कहता है। रानी जब नाग दिव्य की परीक्षा देती है तो नाग उसे कुछ भी नहीं करता और हाथों से रेंगते हुए सिर पर जाकर फन निकालकर छत्र बना लेता है। इससे रानी पति अप्पण्णा और पूरे गाँव के सामने देवी का रूप मान ली जाती है। वह चाहता तो रानी के पति को काँटकर उसे मारकर खुद हमेशा के लिए अप्पण्णा के रूप में रानी का प्रेम प्राप्त कर सकता था। लेकिन वह रानी के खुशहाल दाम्पत्य जीवन को देखकर उसके विरह में उसी के बालों में उलझकर खुदकुशी कर लेता है। इसप्रकार नागप्पा जीवन के अंतिम क्षण तक रानी का एक सच्चा प्रेमी होने का कर्तव्य निभाता है।

3.4.4 अंधी माँ :

विवेच्य नाटक में अंधी माँ यह एक सहायक पात्र है। अंधी माँ जन्म से अंधी थी। उसे कप्पण्णा नाम का एक बीस-बाई साल का बेटा था। वह अपने बेटे के पीठ पर बैठकर सारे गाँव का दौरा करके सबका खैर-कुशल पूछती रहती थी। अंधी माँ और अप्पण्णा की माँ बहुत अच्छी सहेलियाँ थी। अप्पण्णा जब गर्भ में था तब उसके माँ की जचकी (प्रसूति) का काम उसने किया था। अप्पण्णा के माता-पिता की मौत होने के बाद कुछ समय के लिए उसने अप्पण्णा की देखभाल भी की थी।

अंधी माँ को जब अप्पण्णा की शादी की बात पता चलती है तो वह नई दुल्हन से मिलने के कौतुहल से उसके घर जाती है। वहाँ नई बहु रानी से अप्पण्णा के रूखे बर्ताव और घर में कैद करके जाने की बात सुनकर उसे बहुत दुःख होता है। वह रानी को बताती है कि उसका पति गाँव की एक वेश्या के चंगुल में फँसा हुआ है। वह रानी को एक दिव्य जड़ी (औषधि) देती है जिसके पीसकर खाने से पति मोहित हो जाता है।

अंधी माँ ने यह दिव्य जड़ी एक संन्यासी की सेवा करके आशीर्वाद और प्रसाद के रूप में प्राप्त की थी। इसी जड़ी के प्रभाव से उसकी शादी हुई और उसका पति उसपर आसक्त होकर घर जमाई बनकर रह गया। उसे अपने बेटे से बहुत स्नेह था। अपने मातृभक्त बेटे कप्पण्णा को पाकर वह खुद को धन्य समझती थी। वह बहुत ही गोरा होने के कारण उसे किसकी नज़र न लगे इसलिए उसने उसका नाम 'कप्पण्णा'(काला) रखा था। अंधी माँ बहुत व्यवहार कुशल थी। वह रानी के साथ बातें करके कुछ पल के लिए ही क्यों न हो रानी को हँसाती थी। लेकिन अंत में उसका बेटा कप्पण्णा अचानक एक दिन गाँव से गायब हो जाता है। अंधी माँ

यह सदमा बर्दाश्त नहीं कर पाती। वह पागल होकर अपने बेटे को तलाशते हुए गाँव में घूमती रहती है। वह कहती है कि उसके बेटे कप्पण्णा को किसी मायाविणी या यक्षिणी अपने मोहपाश में उलझाकर अपने साथ ले गई है। तब से गाँव वाले अंधी माँ को पागल कहते हैं। इसप्रकार अंधी माँ के चरित्र में हमें ममतामयी माँ, संवेदनशील पड़ोसी, व्यवहारकुशल, चतुर स्त्री, पुत्र वियोग में पागल हुई माँ आदि गुण दिखाई देते हैं।

3.4.5 कप्पण्णा:

प्रस्तुत नाटक में कप्पण्णा एक सहायक पात्र है। वह अंधी माँ का एकलौता और प्यारा बेटा था। वह बीस-बाईस वर्ष का नवजवान और मजबूत कदकाठी का गौरा और सुंदर युवक था। वह अपनी अंधी माँ से बहुत प्रेम करता था। अंधी माँ ने अपने बेटे को नजर न लगे इसलिए उसका नाम 'कप्पण्णा' अर्थात् काला रखा था। वह अपनी अंधी माँ को अपने पीठ पर लेकर सारा गाँव घूमता था ताकि माँ गाँववालों से बातचीत कर सके। वह मातृभक्त था और माँ की किसी बात को टालता नहीं। लेकिन उसे अप्पण्णा पसंद नहीं था। जब अंधी माँ उसे अप्पण्णा के घर ले जाने को कहती है तो पहले इंकार करता है लेकिन माँ की इच्छा की खातिर उसे ले जाता है। लेकिन वह माँ को उसे घर छोड़कर खुद उस घर से दूर बरगद के पेड़ की छाया में बैठता है।

माँ के कहने पर वह घर में जाकर पुरानी ट्रंक में रखी जड़ियों की पोटली लाकर माँ को देता है। उसे गाँव की एक कुएं के पास एक खूबसूरत यक्षिणी दिखाई देती थी। वह हर बार अपनी माँ को इस यक्षिणी के बारे में बातें किया करता था। लेकिन उसकी अंधी माँ उसकी बात पर यकिन नहीं करती। वह इसे हर बार मजाक में टाल देती थी। नाटक के आखिरी पड़ाव में कप्पण्णा के गाँव से गायब होने की खबर आती है। गाँववाले कहते हैं कि वह गत पंद्रह दिनों से गाँव से गायब हो गया है। कहाँ गया किसी को कोई खबर नहीं थी। लेकिन उसकी पागल हुई अंधी माँ ने कहती है कि उसे किसी मायविणी या यक्षिणी ने अपने मोहजाल में फँसा है। वही उसे अपने वश में करके अपने साथ ले गई है। इसप्रकार नागमंडल में कप्पण्णा एक सहायक पात्र की भूमिका निभाता है जिसके चरित्र में हमें एक सुंदर मजबूत कदकाठी का युवक, मातृभक्त, यक्षिणी को देखने की शक्ति रखनेवाला, रहस्यमय तरीके से गायब होने वाला आदि गुण दिखाई देता है।

2.3.5 'नागमंडल' में चित्रित समस्याएं:

'नागमंडल' यह नाटक दक्षिण भारत की दो लोककथाओं पर आधारित है। यह कहानियाँ गिरीश कर्नाड जी ने सी. के. रामानुजन से सुनी थी। मिथकीय कहानियों के माध्यम से मनुष्य के आधुनिक जीवन की विसंगतियों को स्पष्ट करना गिरीश कर्नाड के नाटकों की विशेषता थी। विवेच्य नाटक में भी गिरीश कर्नाड जी ने भारतीय समाज जीवन में व्याप्त कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं को गहराई के साथ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। नाटक से अभिव्यक्त हुई महत्त्वपूर्ण समस्याएँ इसप्रकार है-

2.3.5.1 बेमेल विवाह की समस्या:

'नागमंडल' यह नाटक अप्पण्णा और रानी के दाम्पत्य जीवन को आधार बनाकर लिखा गया नाटक है। ये दोनों नाटक के प्रमुख पात्र है। रानी और अप्पण्णा की शादी एक बेमेल शादी थी। रानी की शादी एक

ऐसे पुरुष से हुई थी जिसका समाज में ऐसा कोई विशेष स्थान और नाम भी नहीं था। अपने स्वर्गवासी हुए माता-पिता ने छोड़ी संपत्ति को ऐय्याशी में उड़ाने वाले अप्पण्णा से रानी की शादी हुई थी। रानी के माता-पिता ने भी अप्पण्णा से केवल इसलिए शादी कराई थी कि वह एक धनवान परिवार का बेटा है और इकलौता वारीस है। भारत में लड़की के माता–पिता की केवल एक संकुचित धारणा होती है कि अपने बेटी को धनवान और संप्पन परिवार मिले। उन्हें लगता है कि आर्थिक संपन्नता के कारण उनकी बेटी खुशी से रह सकेगी। वे केवल बेटी की खुशहाली के लिए व्यावहारिक सोच रखते हैं, बेटी की क्या भावनाएँ होती है इसका ध्यान नहीं रखते। रानी के माता–पिता अप्पण्णा के साथ उसे ब्याह तो देते हैं लेकिन अप्पण्णा और उसके स्वभाव में कोई मेल नहीं है। अप्पण्णा एक शराबी, संशयी, गुस्सैल, अहंकारी, स्त्री का सम्मान न रखनेवाला, व्याभाचारी पुरुष होता है। इसकारण रानी को बहुत प्रताड़ना सहनी पड़ती है। इसलिए शादी में आर्थिक संप्पन्नता के बजाए भावनिक संपन्नता, विचारधारा, सोच, आचरण आदि को देखना जरूरी है। अत: लेखक ने बेमेल विवाह की समस्या को यहाँ स्पष्ट किया है।

2.3.5.2 पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी की अधीनता:

'नागमंडल' नाटक के जरिए गिरीश कर्नाड जी ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी के दोयम स्थान और उसकी अधीनता को स्पष्ट किया है। नाटक में पितृसत्तात्मक सोच एवं मातृसत्तात्मक सोच के बीच टकराहट दिखाई देती है। अप्पण्णा और नागप्पा दोनों भी इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अनुसार रानी से पेश आते हैं। अप्पण्णा रानी को ब्याह कर लाने के पहले दिन से ही घर में कैद करके रखता है और गाँव की ही एक वेश्या के साथ रंगरैलियाँ मनाता है। रानी के सभी बुनियादी अधिकारों को वह छिनकर एक जानवर की तरह उसे चार दीवारों के बीच कैद कर लेता है। रानी का बस एक ही काम था कि अप्पण्णा आने के बाद केवल दोपहर का खाना उसे परोस दिया जाए। वह रात भर अकेली डरी-सहमी रहती है। अपने माता-पिता की याद में रो-रोकर दिन काटती रहती है। जरा-सी भी गलती होने पर वह उसे मारता-पीटता है।

दूसरी ओर नागप्पा भी अप्पण्णा का रूप लेकर उसके सौंदर्य पर मोहीत होकर उससे प्यार करता है। लेकिन इस प्यार के पीछे भी रानी को भोगने का पुरुषी विचार ही ज्यादा प्रबल होता है। वह अप्पण्णा के छद्म रूप में रानी के साथ संभोग करके उसे गर्भवति बनाता है। रानी अपने से दूर न हो इसलिए वह गर्भवति होने की बात छिपाने को कहता है। साथ ही अप्पण्णा के व्याभिचारी करार देने और पंचायत में घसीटने के बाद नागप्पा उसे नागदिव्य की परीक्षा देने को कहता है। रानी जब मना करती है तो वह उसपर पुरुषी रौब झाड़ते हुए उसे मना लेता है। अप्पण्णा खुद एक व्याभिचारी है और गाँववाले भी इसे भलिभाँति जानते हैं। लेकिन कोई भी अप्पण्णा को नागदिव्य की परीक्षा देने को कहता नहीं। पर रानी पर व्याभिचार के आरोप लगाकर पूरा गाँव उसे पतिव्रता होने का प्रमाण देने के लिए जानलेवा परीक्षा देने की ज्यादती करता है। यह भारत में सदियों से पितृसत्तात्मक सोच में नारी के बलिदान एवं अधीनता की समस्या का ही तो परिचायक है। भले ही वह रानी के सुख-दु:ख का ध्यान रखता है लेकिन जब रानी को अप्पण्णा की बाहों में सोया हुआ देखता है तो उसके पुरुषी अहंकार को ठेंस पहुँचती है। वह एक पल के लिए अप्पण्णा को मारने की

भी सोचता है। मूलत: नाग इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पैरवी करनेवाले पुरुषों के विकृत मनोभावों का ही प्रतीक है। भारतीय पुरुषप्रधान व्यवस्था में नारी को मानव की तरह जीने का कोई अधिकार नहीं। वह केवल तभी आजादी और सम्मान प्राप्त कर सकती है, जब वह भगवान बन जाए। कुल मिलाकर देखे तो गिरीश जी ने अप्पण्णा, नागप्पा और रानी के जरिए भारतीय पितृसत्ता एवं पुरुषप्रधान व्यवस्था में नारी की अधीनता को दर्शाया है।

2.3.5.3 दाम्पत्य जीवन की समस्या:

'नागमंडल' नाटक में अप्पण्णा और रानी के दाम्पत्य जीवन का वर्णन है। भारतीय समाज में विवाह को एक संस्कार माना गया है। विवाह के बाद ही एक स्त्री और पुरुष एक होकर अपने काम जीवन की शुरुआत करते और उसके बाद अपना परिवार बनाते हैं। खुशहाल दाम्पत्य जीवन पर ही परिवार और विवाह संस्था की नींव खड़ी होती है। लेकिन प्रस्तुत नाटक में अप्पण्णा इन दोनों जगहों पर असफल साबित होता है। रानी के माता-पिता ने तो बड़े आरमानों के साथ अप्पण्णा की शादी की थी। लेकिन शादी के पहले दिन ही रानी के खुशहाल दाम्पत्य जीवन का मोहभंग होता है। अप्पण्णा उसे घर में कैद करके एक वेश्या के पास चला जाता है। वह केवल दोपहर खाने के लिए आता है और ताला लगाकर रातभर वेश्या के घर पर पड़ा रहता है। रानी इधर अकेली पति प्रेम के लिए व्याकूल होकर छटपटाती रहती है। संशयी अप्पण्णा उसे किसी के साथ बोलने या आने-जाने पर पाबंदी लगाता है। घर के आस-पास कोई न आए इसलिए हिंसक शिकारी कुत्ता लाकर बाँधता है। जरा-सी गलती होने पर उसे मारता-पीटता है। उसके गर्भवती होने से उसपर व्यभिचार का आरोप लगाकर गाँव के सामने उसकी इज्जत उछालता है। अत: अप्पण्णा उन छद्म पुरुषों का प्रतीक है जो स्त्री को अपने हाथ की कठपुतली समझकर उसके समस्त आरमानों, इच्छाओं और सपनों का कुचल कर रख देते हैं। कुलमिलाकर देखे तो नाटक में दाम्पत्य जीवन की समस्याओं को गिरीश जी ने सूक्ष्मता के साथ बताया है।

2.3.5.4 अंधविश्वास की समस्या:

'नागमंडल' नाटक में अंधविश्वास एक प्रमुख समस्या के रूप में दिखाई देता है। यह अंधविश्वास हमारी सदियों से आई रीतिरिवाजों और मान्यताओं से संबंधित है। किसी की सच्चाई साबित करने के लिए सार्वजनिक रूप में उसे समाज व्यवस्था ने निर्धारित की परीक्षा देने को कही जाती है और वह व्यक्ति उसे परीक्षा में सफल होने पर उसे सत्यवादी चरित्र घोषित किया जाता है। विवेच्य नाटक में अप्पण्णा को पता है कि वह रानी के पास कभी गया ही नहीं। इसकारण गर्भ में पल रहा बच्चा उसका नहीं है। लेकिन रानी सारे पंचों के सामने नाग दिव्य की परीक्षा देती है और नाग भी उसे कुछ नहीं करता तो पूरे गाँववाले उसे देवी का रूप घोषित करते हैं। लेकिन अप्पण्णा के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह जानता है कि उसकी पत्नी व्याभिचारिणी है, लेकिन गाँववालों के इन अंधविश्वास जो कि समाज व्यवस्था जुड़कर एक लोकोत्तर धारणा बने हैं, इसे वह चुनौती नहीं दे सकता। अब अप्पण्णा के सामने अपनी व्याभिचारिणी पत्नी को देवी मानने के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं बचता। पत्नी को लेकर संदेह और उसके दिव्य रूप पर विश्वास

के अजीबो-गरीब द्वंद्व में वह उलझकर रह जाता है-''मैंने इसे छुआ तक नहीं, यह मुझे मालूम है। ऐसी स्थिति में मेरी पत्नी गर्भिणी हुई। भला यह पतिव्रता कैसे? चाहे तो नागराज ही न्याय करें। चाहे जैसा करिश्मा क्यों न करे मुझे मालूम है। जो बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ, उसी की कीमत न हो तो भला मुझे सुख कहाँ से मिलेगा? संतोष कहाँ? किस विश्वास जीऊँ? क्यों जीवित रहूँ?'' (पृ.59) स्पष्ट है कि अंधविश्वास के कारण अप्पण्णा अपने पत्नी की नैतिकता और नैतिकता को लेकर एक विचित्र मानसिक द्वंद्व में फँस जाता है।

2.3.5.5 दोहरे व्यक्तित्त्व की समस्या:

'नागमंडल' नाटक में अप्पण्णा और नागप्पा के दोहरे व्यक्तित्त्व में रानी उलझकर रह जाती है। मूलत: नागप्पा अर्थात् इच्छाधारी नाग अप्पण्णा का ही छद्म रूप होता है। मूलत: यह नाग भारत के पुरुषप्रधान व्यवस्था के विकृत मनोभावों का प्रतीक है। अप्पण्णा सुबह केवल घर में खाना आता है तब रानी के साथ उसका बर्ताव बहुत ही निर्दयी, क्रूर एवं रूखा होता है। लेकिन वही जब नागप्पा उसके रूप में रात को रानी के पास आता है तो वह बेहद कोमल, रानी से प्रेमपूर्वक बातें करनेवाला होता है। उसके सौंदर्य की प्रशंसा करने वाला, उसके माँ-बाप की खैर-सलामती पूछनेवाला होता है। रानी अप्पण्णा के इस दोहर व्यक्तित्त्व को लेकर हमेशा उलझन में रहती है। कभी-कभार उसे नागप्पा पर संदेह होता है लेकिन वह बहुत ही चतुराई से रानी को बातों में उलझाकर रखता है। रात के समय नागप्पा शिकारी कुत्ते और मंगूस से लड़कर आने के कारण उसके शरीर पर जख्म होते हैं लेकिन जैसे ही सुबह में असली अप्पण्णा वापस आता है तो वह जख्म शरीर से गायब हो जाते हैं। रानी को एक समय लगता है कि उसे अकेले रहने के कारण भ्रम होने की बीमारी लग गई है। गिरीश कर्नाड जी ने भारतीय परिवारों में पुरुषों के दो रूपों को यहा प्रतीकात्मक रूप में स्पष्ट किया है। भारतीय परिवारों में भी सुबह पुरुष का आचरण अलग होता है और रात को वह अलग ही पेश आता है। भारतीय महिलाएँ रानी ही तरह अपने पति के इस दोहरे व्यक्तित्त्व के भावनिक द्वंद्व में उलझती रहती है।

2.3.6 'नागमंडल' का कलापक्ष:

गिरीश कर्नाड के नाटक कलापक्ष की दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। गिरीश कर्नाड जी ने कन्नड नाट्य-साहित्य को अपनी प्रयोगधर्मिता के कारण बहुत ही कलात्मक आयाम दिए हैं। उनके नाटकों ने आधुनिक भारतीय रंगमंच का एक नया पर्व शुरू करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। आधुनिक भारतीय रंगमंच को विकसित करने में बंगाली के बादल सरकार, मराठी में विजय तेंदुलकर, हिंदी में मोहन राकेश के साथ कन्नड नाट्य साहित्य में गिरीश कर्नाड का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। उनके कई नाटकों का अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और रंगमंच पर उनका सफलतापूर्व निर्देशन भी हुआ है। कुछ अध्येता उन्हें भारतीय अंग्रेजी रंगमंच का जनक भी मानते हैं। उनके नाटक रंगमंच, संवाद और अभिनेयता की दृष्टि से हमेशा कारगर सिद्ध हुए हैं। उनके 'नागमंडल' इस नाटक के कलापक्ष का रंगमंच, संवाद और अभिनेयता की दृष्टि से विवेचन इसप्रकार है-

2.3.6.1 'नागमंडल' की रंगमंचीयता:

गिरीश कर्नाड जी की नाटक के रंगमंच को लेकर समझ बहुत सूक्ष्म एवं गहन थी। रंगमंच को लेकर उनके दृष्टि का लोहा भारतभर माना जाता रहा है। रंगमंच की दृष्टि से जादुई पल साकार करने की क्षमता 'नागमंडल' के हर दृश्य में दिखाई देती है। 'नागमंडल' नाटक की प्रारंभ में ही मनुष्य कहता है- ''मैं अभी थोड़ी ही देर में मर सकता हूँ। नाटक की मृत्यु नहीं, असली मृत्यु।' मंच पर अभिनेता का यह पहला वाक्य ही दर्शकों को हिलाकर रख देता है। नाटककार को दर्शकों से मिले अभिशाप की कल्पना से नाटक की नींव रखी गई है जो दर्शकों को नाटक की अगली कहानी एवं दृश्यों से जोड़ी रखती है। दर्शक के रूप में अपने-अपने घरों के काम निपटाकर आई ज्योतियाँ और उनकी कहानियों, कविताओं से रंगमंच पर नाटक का माहौल बनता है। फिर कहानी कथावाचक बनकर ज्योतियों को कहानी सुनाती है जिससे नाटककार को मौत से बचाया जा सके, वह कहानी है-'नागमंडल' नाटक।

गिरीश जी ने इस नाटक के लिए दक्षिण भारत की दो लोककथाओं को आधार बनाया है, जो विशेष प्रसिद्ध है और पसंद की जाती है। इसमें उन्होंने मिथक, यक्षगान, लोककथा आदि की तकनीक का इस्तेमाल भारतीय रंगमच की दृष्टि से किया है। इच्छाधारी नाग की कहानी को गिरीश कर्नाड जी ने भारतीय रंगमंच के अनुसार ढालकर पेश किया है। इसकारण रंगमंच की दृष्टि से कई सजीव दृश्य साकार करने में गिरीश कर्नाड जी सफल हुए है। विजया मेहता ने पहली बार इस नाटक को मराठी रंगभूमी पर पेश किया। इसके बाद भारत की अनेक भाषा की रंगभूमी पर 'नागमंडल' नाटक ने अपनी जादू बिखरी। इच्छाधारी नाग के मिथक की अद्भूतता, रोमांच को उन्होंने नाटक के दूसरे अंक में बखूबी दर्शाते हुए पाठकों को मंत्रमुग्ध किया। नागमंडल में दिव्य जड़ी बुटी, नाग का इच्छाधारी होकर अप्पण्णा का छद्म रूप धारण करना, पंचायत के सामने नाग दिव्य की परीक्षा देना आदि दृश्य रंगमंच पर आदिम संस्कृति को साकार करती है। नाटक के प्रारंभ में भग्न मंदिर का दृश्य और उसके तुरंत बाद अप्पण्णा का घर का दृश्य दिखाया जाता है। उसके बाद नागा और शिकारी कुत्ते का युद्ध, नागा और मंगूस का युद्ध, अप्पन्ना रानी को व्याभिचारी कहकर पंचायत के सामने घसीटना आदि दृश्य रंगमंच की दृष्टि से प्रभावी बने है।

हर दृश्य से पहले पात्रों के मनोभाव एवं उनकी हलचलों को कर्नाड जी ने संकेत रूप में कोष्ठक में दिया है। जब हम नाटक को पढते हैं तो पात्रों की मनोदशा को दृश्यात्मक रूप में समझ लेते हैं। रंगमंच की दृष्टि से प्रकाश योजना का भी नाटक में कई दृश्यों में उल्लेख मिलता है। यही इस नाटक के रंगमंच की सफलता है। कुलमिलाकर कहे तो 'नागमंडल' में जिस मिथक एवं लोककथा का आधार गिरीश कर्नाड जी ने लिया है उसके पीछे भारतीय रंगमंच का नजरिया था। इससे रंगमंच भारतीय परंपरा और संस्कृति के

अनुसार फलने-फूलने में सहायता मिली। उनके नाटक रंगमंच पर पेश करना एक चुनौती का काम होता था। क्योंकि उनके नाटकों में भारतीय परंपरा और आधुनिक जीवन की संवेदना का गठजोड़ होता था। विजय मेहता, अलेक पद्मसी, अरूंधती नाग, सत्यदेव दुबे जैसे दिग्गज रंगकर्मियों ने उनके नाटकों को भारतीय रंगभूमि पर लाकर एक नए युग को साकार किया।

2.3.6.2 'नागमंडल' में अभिनेयता:

नाटक दृश्य-श्राव्य विधा होने के कारण उसमें रंगमंच और अभिनेयता के लिए अनन्य साधारण महत्त्व होता है। नाटक के पात्रों की शारीरिक, भाषिक, वेशभूषा तथा भावनिक प्रदर्शन की कला अभिनेयता कहलाती है। नाटक की सफलता अभिनेता और उसके अभिनय पर निर्भर होती है। नाटककार के उद्देश्य को दर्शकों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी अभिनेता पर होती है। वह अपने अभिनय की ताकत से दर्शकों को विचारप्रवृत्त करता है। अभिनेता पात्र की भूमिका का प्रस्तुत करने से पूर्व उस पात्र के स्क्रिप्ट को अच्छे तरीके से पढकर चिंतन-मनन करके उस पात्र को अपने अभिनय में जिंदा करता है।

'नागमंडल' नाटक की प्रस्तावना में मनुष्य आकर मरने के अभिशाप की बात करके पाठकों हिला देता है। इसके बाद कहानी कथावाचक बनकर नाटककार को अभिशाप से मुक्त करने के लिए 'नागमंडल' की कहानी सुनाती है। नाटक में अप्पण्णा और रानी प्रमुख अभिनेता है जबकि अंधी माँ, कप्पना सहायक अभिनेता है। नाटक में अप्पण्णा का ही छद्‌म रूप होने वाले इच्छाधारी नाग उर्फ नागप्पा का पात्र विशेष प्रभावी लगता है। अप्पण्णा के व्यक्तित्व के दो बिल्कुल विरोध रूप अभिनय के द्वारा साकार करने में नाटक में बहुत अच्छे दृश्य हैं। कोष्ठक में नाटककार कर्नाड जी ने पात्रों के मनोभाव के संकेत देने के कारण पात्रों की अभिनेयता को सहायता मिलती है। रानी अप्पण्णा और नागा के दोहरे रूप में उलझकर संभ्रमित रहती है। अंधी माँ का अपने बेटे के पीठ पर गाँव घूमना भी दर्शकों को खूब पसंत आता है। वह अंधी माँ से सहानुभूति दिखाने के बजाए उसकी चतुराई की प्रशंसा करते हैं। दिव्य जड़ी की दाल साँप के घर में फेंकने के बाद नाग का अप्पण्णा के रूप में साकार होना अभिनय की चरमसीमा प्रतीत होती है। दर्शक अप्पण्णा और छद्‌म अप्पण्णा के अभिनय के द्वंद्व को पसंद करते हैं। अंत में रानी के दिव्य नाग परीक्षा के दौरान पंचों और गाँववालों की उत्सकुता के साथ दर्शकों की उत्सुकता भी बढ जाती है। मूलत: यह नाटक के अभिनेयता की सफलता है। 'नागमंडल' दक्षिण भारत में प्रसिद्ध दो मिथकीय कहानियों पर आधारित होने के कारण अभिनेयता के कारण दर्शक इन कहानियों को रोमांच के साथ अनुभव करते हैं।

2.3.6.2 'नागमंडल' नाटक की संवाद–योजना:

नाटकों में संवादों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संवादों के बिना नाटक की कथावस्तु आगे नहीं बढ सकती। साथ ही पात्रों के चारित्रिक विकास में भी संवाद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'नागमंडल' नाटक की संवाद योजना की दृष्टि से गिरीश कर्नाड के अन्य नाटकों की तरह सफल माना जाता है। सीधे-साधे, सरल संवादों से विषय की स्पष्टता बढी है। पौराणिक एवं मिथकीय कहानी को नाटकार गिरीश कर्नाड जी आधुनिक मानवीय संवेदनाओं के साथ स्पष्ट करने में सफल हुए हैं। इस नाटक में छोटे संवाद, बड़े संवाद, व्यंग्यात्मक संवाद, प्रश्नात्मक संवाद, लाक्षणिक संवादों का लेखक ने प्रयोग किया है।

नाटक का प्रारंभ ही मनुष्य के दर्शकों के झकझोरने वाले बड़े संवाद से होता है– ''मैं अभी थोड़ी ही देर में मर सकता हूँ। नाटक की मृत्यु नहीं, असली मृत्यु। आप लोगों की आँखों के सामने ही में प्राण-पखेरू

उड़ सकते हैं।'' (पृ.7) इस लंबे संवाद में नाटककार को दर्शकों से मिले मृत्यु के अभिशाप की कहानी है, जिससे निजात पाने के लिए मास में कम-से-कम एक दिन पूर्ण जागरण करने पर ही जिंदा रहने का उपाय बताया था। एक दिन जागरण नहीं करेगा तो नाटककार की मृत्यु होने की पूरी कहानी इस लंबे संवाद में आती है, जो दक्षिणभारत की एक लोककथा एवं मिथक है। इसमें नाटककार के साथ कहानी एवं आग की लपटें संवाद करती है, जो एक मिथकीय चेतना है। लेकिन उनके संवादों से दर्शक 'नागमंडल' नाटक के पृष्ठभूमि से जुड़ जाते हैं।

नाटक में अप्पण्णा और रानी के बीच छोटे-छोटे संवाद आए हैं। इसकारण यह है कि अप्पण्णा रानी को पसंद नहीं करता था। इसकारण उससे उसकी औपचारिक ही बातें होती थी है। अप्पण्णा और रानी के बीच के संवाद में अप्पण्णा का रूखा पात्रानुकूल व्यवहार दृष्टिगत होता है। अंधी माँ और रानी के बीच परिचयात्मक छोटा और प्रश्नात्मक संवाद होता है। जब अंधी माँ रानी को मिलने उसके घर जाती है तब दोनों के बीच का संवाद इसप्रकार होता है-

अंधी माँ : ऐ लड़की, बेटी

रानी : (डरती हुई) कौन?

अंधी माँ : डर मत बेटी। मैं अंधी माँ हूँ। तुम्हारी सास और मैं सगी बहनों के समान थी। अप्पणा मेरे लिए बेटे के समान ही है। वह घर में नहीं है क्या?

रानी : नहीं।

अंधी माँ : तुम्हारा नाम क्या है?

रानी : मुझे सब 'रानी' पुकारते हैं।

अंधी माँ : तो अप्पण्णा कहाँ हैं?

रानी : मालूम नहीं।

अंधी माँ : बाहर कब गया?

रानी : कल दोपहर का भोजन करके गये।

अंधी माँ : तो फिर लौटेगा कब?

रानी : वे तो सिर्फ दोपहर के भोजन के समय ही घर पर रहते हैं?

अंधी माँ : अरे एक बार खाना खाकर जाने के बाद दूसरे दिन ही आता है क्या? तब सारा दिन तुम अकेली ही घर पर पड़ी रहती हो? ना-ना, रो मत बेटी। मैं तुम्हें रूलाने नहीं आयी। रोज ऐसे ही बंद करे जाता है क्या?

रानी : जी, जबसे मैं उनके साथ यहाँ आयी हँ, तभी से ऐस ही..।'' (पृ.20)

इस संवाद से अंधी माँ का परिचय और रानी की दुर्दशा दोनों का पता चलता है।

कुछ संवादों से पात्रों के मानसिक दशा और उनके विचारों का भी पता चलता है। जैसे अप्पण्णा और नागप्पा के व्यक्तित्व के द्वंद्व से रानी असंमजस्य में फँसकर कहती है-''अब मैं पत्नी हूँ, माँ भी तोता नहीं, बिल्ली नहीं। चिड़ियाँ भी नहीं। मुझमें भी कुछ समझ है। यह मानकर, समझकर क्यों नहीं बताते आप, क्यों ऐसा खेल खेल रहे हैं? सुबह से शाम तक आप क्यों गिरगिट के समान रंग बदलते रहते हैं? इस तरह से तो ऐसा लगता है कि सिर के फटकर दो टुकड़े हो जाएंगे।'' (पृ. 49)

पत्नी के गर्भवती होने के बाद अप्पण्णा का गुस्सा कुछ इस अंदाज में व्यक्त होता है-''कुछ किये बिना ही गर्भ ठहर जाता है क्या? ऐसे छोड़ूँगा नहीं तुझे। सारे गाँव के सामने मेरी इज्जत उतारेगी? मेरा मुँह काला कराएगी, हरामी। इस हरामी पिण्ड को बाहर नहीं निकलवाया इस हरामी गर्भ पर पत्थर नहीं डाला तो मैं अपने बाप का बेटा ही नहीं।'' (पृ. 50) इस संवाद से अप्पण्णा के गुस्से तीव्रता स्पष्ट होती है।

जब पंचायत के सामने रानी नाग दिव्य की परीक्षा देकर पतिव्रता सिद्ध होती है तो गाँववाले उसे देवी का अवतार मान लेते हैं। लेकिन अप्पण्णा के मन में संदेह के बादल छाये रहते हैं। क्योंकि उसे पता था कि वह कभी अपनी पत्नी के पास गया ही नहीं तो गर्भ कैसे ठहर सकता है। नाटककार ने अप्पण्णा के इस उलझन को इस संवाद में स्पष्ट किया है-''मैंने इसे छुआ तक नहीं, यह मुझे मालूम है। ऐसी स्थिति में मेरी पत्नी गर्भिणी हुई। भला यह पतिव्रता कैसे? चाहे तो नागराज ही न्याय करें। चाहे जैसा करिश्मा क्यों न करे? मुझे मालूम है। जो बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ, उसी की कीमत न हो तो भला मुझे सुख कहाँ से मिलेगा? संतोष कहाँ? किस विश्वास जीऊं? क्यों जीवित रहूँ?'' (पृ.59)

दूसरे एक संवाद में नागप्पा की रानी के प्रति आसक्ति और मोह को नाटककार ने सुंदर संवाद में अभिव्यक्त किया है– जैसे-''रानी। मेरी रानी। मेरी आधी रात की सुगंधि, स्वप्न सुंदरी। दूसरे की बगल में? यह इस पुरुष को इसी प्रकार आलिंगनबद्ध करती होगी। रोज उसके होंठ काटती होगी। बाँहों में नाखून गड़ाती होगी। और मैं खिसककर गिरी कैचुली। काँटों की नोक से अटकी कैचुली। नहीं, यह मैं सह नहीं सकता। हममें से किसी एक को मरना होगा।'' (पृ. 60) अत: स्पष्ट है कि 'नागमंडल' नाटक की संवाद योजना पौराणिक लोककथा के जरिए आधुनिक मानवीय संवेदना को साकार करने में सफल हुए हैं। संवाद पात्रों के चरित्र के साथ उनकी मानसिक उधेडबून को सजीवता से साकार करते हैं।

2.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

बहुविकल्पी प्रश्न :

1) कन्नड नाटक विधा का उदय .... भाषा के नाटकों के अनुवाद से हुआ है।

अ) अंग्रेजी ब) मराठी क) संस्कृत ड) हिंदी

2) .... नाटक को कन्नड का पहला नाटक माना जाता है।

अ) मित्रविंदा गोविंद ब) नागमंडल क) ययाति ड) गीत गोविंद

3) गिरीश कर्नाड का जन्म 19 मई, ... को हुआ।

अ) 1948 ई. ब) 1958 ई. क) 1968 ई. ड) 1938 ई.

4) गिरीश कर्नाड युवावस्था में........... नाटक मंडल से शौकिया नाटक करते थे।

अ) यक्षगान ब) तारांगण क) राजवर्धन ड) नाट्यरंग

5) गिरीश कर्नाड ने महाभारत की कथा पर आधारित .... यह पहला नाटक लिखा।

अ) नागमंडल ब) ययाति क) तुगलक ड) हयवदन

6) गिरीश कर्नाड को .... फिल्म में अभिनय के लिए राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला।

अ) वंशवृद्धि ब) टाइगर जिंदा है क) संस्कार ड) नि:शब्द

7) गिरीश कर्नाड ने कुल .... नाटक लिखे हैं।

अ) 10 ब) 12 क) 13 ड) 14

8) गिरीश कर्नाड ने 'नागमंडल' नाटक .... को लिखा।

अ) 1978 ई. ब) 1988 ई. क) 1998 ई. ड) 2000 ई.

9) 'नागमंडल' यह नाटक मूल .... भाषा में लिखा है।

अ) अंग्रेजी ब) मराठी क) कन्नड ड) हिंदी

10) 'नागमंडल' नाटक का हिंदी अनुवाद .... ने किया है।

अ) बी. आर. चोपडा ब) बी. आर. नारायण क) सी. कारंथ ड) सी.एल. शर्मा

11) गिरीश कर्नाड को साहित्य साधना के लिए भारत का साहित्य का सर्वोच्च .... पुरस्कार मिला है।

अ) साहित्य अकादमी ब) ज्ञानपीठ क) नवोदय ड) नोबेल

12) 'नागमंडल' यह नाटक .... अंकों में लिखा है।

अ) दो ब) तीन क) चार ड) पाँच

13) 'नागमंडल' नाटक की प्रमुख स्त्री पात्र .... है।

अ) कुरूधवा ब) रानी क) अंधी माँ ड) गीता

14) 'नागमंडल' नाटक में प्रमुख पुरुष पात्र .... है।

अ) अप्पण्णा   ब) कप्पण्णा   क) नागेश्वर   ड) बुजुर्ग

15) 'नागमंडल' में अप्पण्णा का छद्‌म रूप .... लेता है।

अ) नागप्पा   ब) कप्पण्णा   ड) बुजुर्ग   ड) कपिल

16) गिरीश कर्नाड ने 'नागमंडल' नाटक में नाग को .... प्रतीक माना है।

अ) पुरुष के विकृत भावों का   ब) जहर का

क) मोह का   ड) लालच का

17) अप्पण्णा को प्रेम में मोहित करने के लिए रानी को दिव्य जड़ी........... देती है।

अ) रानी की माँ   ब) अंधी माँ   क) सहेली   ड) बूढी माँ

18) अप्पण्णा अपनी पत्नी से न मिले इसलिए घर के आँगन में........... बाँधता है?

अ) शिकारी कुत्ता   ब) शेर   क) हाथी   ड) भालू

19) अप्पण्णा ने शिकारी कुत्ता .... रुपए में लाया था।

अ) 40 रुपए   ब) 50 रुपए   क) 60 रुपए   ड) 70 रुपए

20) गिरीश कर्नाड का देहांत .... को हुआ।

अ) 16 जून, 2019 ई.   ब) 17 जून, 2018 ई.

क) 15 जून, 2020 ई.   ड) 18 जून, 2021 ई.

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- रजस्वला स्त्री = महीने के महीने में स्त्रियों में जो रज:स्त्राव होता है, उस समय वो स्त्रिया रजस्वला कहती है।
- जचगी = प्रसूति या प्रसव करना।
- अड़हल = एक लाल फूल
- रागी = एक प्रकार का अनाज जिसके लड्डू बनाए जाते हैं।
- साँप की बाँबी = नाग का बिल या चिंटियों ने बनाया हुआ बड़ा घर
- जड़ियाँ = एक दिव्य जड़ी बूटी
- चंदचौटी = जड़ी घिसकर पीसने का बर्तन

* गुसलखाना = नहाने, हाथ-पैर धोने की जगह

मुहावरें : आसक्त होना = मुग्ध होना।, कोई चारा न होना = अन्य कोई उपाय न होना।

अपना गला फाडना = जोर-जोर से चिल्लाना।

दिमाग में दीमक लगना = कुछ भी नहीं सूझना।

रोंगटे खड़े हो जाना = डर लगना।

अकल पर पत्थर पड़ जाना = अक्ल या बुद्धि का नष्ट हो जाना।

प्रतीकात्मकता :

१) चिडिया और नाग की कहानी: नागप्पा द्वारा रानी को अपने वश में करने का प्रतीक

२) नाग : पुरुष के विकृत मनोभावों का प्रतीक

३) शिकारी कुत्ता और मंगूस : पुरुष के संशी वृत्ति के प्रतीक

४) नागमंडला : सुंदर महिला का चक्र,केंद्र या वलय

५) इच्छाधारी नाग : भारतीय लोककथाओं का एक मिथक

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर:

1) संस्कृत	2) मित्रविंदा गोविंद	3) 1938 ई.	4) यक्षगान
5) यक्षगान	6) ययाति	7) 13	8) 1988 ई.
9) कन्नड	10) बी. आर नारायण	11) ज्ञानपीठ	12) दो
13) रानी	14) अप्पण्णा	15) नागप्पा	16) पुरुष के विकृत भावों का
17) अंधी माँ	18) शिकारी कुत्ता	19) 50 रुपए	20) 16 जून, 2019 ई.

2.7 सारांश :

1) कन्नड भाषा में नाटक विधा का उदय मूलतः संस्कृत के नाटकों के अनुवाद से हुआ है। सन् 1689 में चिक्कदेवराय राजा के दरबारी कवि सिंगराचार्य ने संस्कृत के मूल नाटक से 'मित्रविंदा गोविंद' नामक नाटक का अनुवाद किया था। इसे ही कन्नड का पहला नाटक माना जाता है। इसके बाद बी. एम. श्रीकंठय्या (1884–1946) जी ने आधुनिक नाटकों की नींव डाली।

2) स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में कन्नड भाषा के आधुनिक नाटककारों में गिरीश कर्नाड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 1960 के दशक में कन्नड भाषा में एक आधुनिक नाटककार के रूप में उनका उदय

हुआ। उनके इस उदय को बंगाली भाषा के बादल सरकार, मराठी में विजय तेंडुलकर और हिंदी में मोहन राकेश की ही तरह कन्नड भाषा में महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

3) नाटककार गिरीश कर्नाड का जन्म 19 मई, 1938 ई. को महाराष्ट्र राज्य में स्थित माथेरान में एक कोंकणी भाषिक ब्रोह्मण परिवार में हुआ। सन् 1960 ई. को उन्हें इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की 'रोड्स स्कॉलर' यह छात्रवृत्ति मिली और उन्होंने सन् 1960 ई. से सन् 1963 ई. तक इंग्लैंड के लिंकन और मैग्डलेन कॉलेज में पढाई की। यहाँ पर उन्होंने राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र और अर्थशास्त्र में मास्टर ऑफ आर्टस् की उपाधि प्राप्त की। फिल्म-निर्माता, पटकथा लेखक, टी.वी. एवं फिल्म अभिनेता के रूप में भी अपनी प्रतिभा दिखाई थी। लगभग पाँच दशकों तक व्यावसायिक रंगमंच, सिनेमा और साहित्य को उन्होंने अपनी आजीविका का माध्यम बनाया।

4) गिरीश कर्नाड जी ने कुल 13 कन्नड नाटक लिखे। उन्होंने कन्नड नाट्य-साहित्य को विश्व मंच पर ले जाने के लिए अपने कुछ नाटकों का अंग्रेजी भी अनुवाद किया। उनके नाट्य-साहित्य की सूची इसप्रकार है- 1. 'ययाति' (1961), 2. 'तुगलक' (1964), 3. 'अंजुलिमलिगे' (1972), 4. 'बाली' (1980), 5. 'नागामंडला' (1988), 6. 'तलेदंडा' (1990), 7. 'अग्नि मट्टू माले' (1995),8. 'टिपुविना कनासुगालु' (1996), 9. 'ओडाकालु बिंबा' (2006), 10. 'मैडुवे एल्ब' (2006), 11. 'फूल' (2012), 12. 'बेंदा कालू ऑन टोस्ट' (2012) और माँ निशाधा (एकांकी) प्रमुख है।

5) गिरीश कर्नाड जी को गीत नाटक 'अकादमी पुरस्कार' (1972), भारत सरकार का 'पद्मश्री' (1974), 'पद्मभूषण' (1992), कन्नड 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार (1992), 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' (1994), कर्नाटक विश्वविद्यालय से 'डी.लिट' की उपाधि (1994), समग्र साहित्य योगदान के लिए 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' (1998), 'कालिदास सम्मान' (1998), कन्नड फिल्म 'संस्कार' के लिए सर्वेश्रेष्ठ निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है।

6) प्रस्तुत इकाई में हम गिरीश कार्नाड के बहुचर्चित नाटक 'नागमंडल' का अध्ययन करने वाले हैं। 'नागमंडल' यह नाटक दक्षिण भारत में प्रचलित एक लोक–कथा पर आधारित है। यह नाटक सन् 1988 ई. में मूल कन्नड भाषा में लिखा गया है, जिसका हिंदी अनुवाद बी. आर. नारायण ने सन् 1991 ई. में किया था। विवेच्य नाटक में भी गिरीश कर्नाड ने नाग को पुरुषप्रधान व्यवस्था एवं पुरुष के विकृत भावों का प्रतीक मानकर नारी की असहायता का उजागर किया है।

7) 'नागमंडल' नाटक में मूलत: दो अंकों का है, जिसमें रानी और अप्पण्णा के दाम्पत्य जीवन की कहानी बताई है। लेकिन बाद में उनके दाम्पत्य जीवन में नागप्पा (इच्छाधारी नाग) का प्रवेश होता है। इसकारण रानी, अप्पण्णा और नागप्पा ये तीन नाटक के प्रमुख पात्र है। नाटक में अंधी माँ, उसका

बेटा कप्पण्णा सहायक पात्र के रूप में दृष्टिगत होते हैं। तो नाटक में रानी के माता-पिता, अंधी माँ के पति, संन्यासी बाबा, बुजुर्ग पंच-1 बुजुर्ग पंच-3 और बुजुर्ग पंच-3, गाँववाले आदि गौण पात्र है।

8) विवेच्य नाटक में भी गिरीश कर्नाड जी ने भारतीय समाज जीवन में व्याप्त कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं को गहराई के साथ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें बेमेल विवाह की समस्या, दोहरे व्यक्तित्त्व की समस्या, अंधविश्वास की समस्या, दाम्पत्य जीवन की समस्या, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी की अधीनता की समस्या, परिवार एवं विवाह संस्था के विघटन की समस्या दृष्टिगत होती है।

9) गिरीश कर्नाड के नाटक कलापक्ष की दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। गिरीश कर्नाड जी ने कन्नड नाट्य-साहित्य को अपनी प्रयोगधर्मिता के कारण बहुत ही कलात्मक आयाम दिए हैं। उनके नाटकों ने आधुनिक भारतीय रंगमंच का एक नया पर्व शुरू करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। 'नागमंडल' नाटक में लोकथा एवं मिथक को भारतीय देशी रंगमंच के अनुरूप प्रयोग किया है।

10) नाटक में अप्पण्णा और रानी प्रमुख अभिनेता है जबकि अंधी माँ, कप्पना सहायक अभिनेता है। नाटक में अप्पण्णा का ही छद्म रूप होने वाले इच्छाधारी नाग उर्फ नागप्पा का पात्र विशेष प्रभावी लगता है। अप्पण्णा के व्यक्तित्त्व के दो बिल्कुल विरोध रूप अभिनय के द्वारा साकार करने में नाटक में बहुत अच्छे दृश्य हैं।'नागमंडल' दक्षिण भारत में प्रसिद्ध दो मिथकीय कहानियों पर आधारित होने के कारण अभिनेयता के कारण दर्शक इन कहानियों को रोमांच के साथ अनुभव करते हैं।

11) 'नागमंडल' नाटक की संवाद योजना की दृष्टि से गिरीश कर्नाड के अन्य नाटकों की तरह सफल माना जाता है। सीधे-साधे, सरल संवादों से विषय की स्पष्टता बढी है। पौराणिक एवं मिथकीय कहानी को नाटकार गिरीश कर्नाड जी आधुनिक मानवीय संवेदनाओं के साथ स्पष्ट करने में सफल हुए हैं। इस नाटक में छोटे संवाद, बड़े संवाद, व्यंग्यात्मक संवाद, प्रश्नात्मक संवाद, लाक्षणिक संवादों का लेखक ने प्रयोग किया है।

2.8 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी :

1) गिरीश कर्नाड का संक्षिप्त जीवन परिचय देकर 'नागमंडल' नाटक का कथानक अपने शब्दों में लिखिए।

2) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक के आधार पर रानी की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

3) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक के आधार पर अप्पण्णा की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

4) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक के आधार पर नागप्पा की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

5) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक के आधार पर अंधी माँ और कप्पण्णा की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

6) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक में चित्रित समस्याओं को स्पष्ट कीजिए।

7) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक की रंगमंचीयता पर प्रकाश डालिए।

8) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक की अभिनेयता पर प्रकाश डालिए।

9) गिरीश कर्नाड कृत 'नागमंडल' नाटक की संवाद-योजना को स्पष्ट कीजिए।

ब) संदर्भ व्याख्या प्रश्न:

1) ''अब मैं पत्नी हूँ, माँ भी तोता नहीं, बिल्ली नहीं। चिड़ियाँ भी नहीं। मुझमें भी कुछ समझ है। यह मानकर, समझकर क्यों नहीं बताते आप, क्यों ऐसा खेल खेल रहे हैं? सुबह से शाम तक आप क्यों गिरगिट के समान रंग बदलते रहते हैं? इस तरह से तो ऐसा लगता है कि सिर के फटकर दो टुकड़े हो जाएंगे।''(पृ.49)

2) ''मैंने इसे छुआ तक नहीं, यह मुझे मालूम है। ऐसी स्थिति में मेरी पत्नी गर्भिणी हुई। भला यह पतिव्रता कैसे? चाहे तो नागराज ही न्याय करें। चाहे जैसा करिश्मा क्यों न करे मुझे मालूम है। जो बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ, उसी की कीमत न हो तो भला मुझे सुख कहाँ से मिलेगा? संतोष कहाँ? किस विश्वास जीऊं? क्यों जीवित रहूँ?'' (पृ.59)

3) ''रानी। मेरी रानी। मेरी आधी रात की सुगंधि, स्वप्न सुंदरी। दूसरे की बगल में? यह इस पुरुष को इसी प्रकार आलिंगनबद्ध करती होगी। रोज उसके होंठ काटती होगी। बाँहों में नाखून गड़ाती होगी। और मैं खिसककर गिरी कैचुली। काँटों की नोक से अटकी कैचुली। नहीं, यह मैं सह नहीं सकता। हममें से किसी एक को मरना होगा।''(पृ. 60)

4) ''कुछ किये बिना ही गर्भ ठहर जाता है क्या? ऐसे छोडूँगा नहीं तुझे। सारे गाँव के सामने मेरी इज्जतउतारेगी? मेरा मुँह काला कराएगी, हरामी। इस हरामी पिण्ड को बाहर नहीं निकलवाय इस हरामी गर्भ पर पत्थर नहीं डाला तो मैं अपने बाप का बेटा ही नहीं।''(पृ. 50)

5) ''अप्पण्णा, तुम्हारी पत्नी पूरी तरह देवी का अवतार है। यह सोचकर चिंति न होना कि ऐसी देवी पर दोष लगाया। ऐसी महादेवी का चमत्कार दुनिया को पता चले, सोचकर ही भगवान ने तुम्हारे मुँह से वह बात कहलायी। तुम तो पुण्यात्मा हो।'' पृ. 57)

6) ''मैंने अपने जीवन में मेरे पति और इस नाग को अलावा किसी को छुआ तक नहीं'' (पृ.57)

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) गिरीश कर्नाड के फिल्म निर्देशन एवं अभिनय क्षेत्र की उपलब्धियों की जानकारी इकट्ठा कीजिए।

2) गिरीश कर्नाड के अन्य नाटकों की जानकारी लीजिए।

3) गिरीश कर्नाड और विजय तेंडुलकर के नाटकों की तुलनात्मक जानकारी इकट्ठा कीजिए।

4) हिंदी के मोहन राकेश के दाम्पत्य जीवन पर आधारित 'आधे-अधूरे' नाटक को पढिए।

5) 'नागमंडल' नाटक का कक्षा में मंचन एवं निर्देशन करने की कोशिश कीजिए।

6) 'नागमंडल' के नाटक के संवादों को मराठी में अनुवाद करने की कोशिश कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

हिंदी

1) रामबेला त्रिपाठी, हिंदी और भारतीय भाषा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, सं. 2017 ई.

2) संपा. डॉ. श्रीरंग, कन्नड रंगमंच का विकास, कन्नड साहित्य परिषद, बेलगाँव, सं. 2010 ई.

अंग्रेजी

3) लेखक पूनम पांडे, दि प्ले ऑफ गिरीश कर्नाड : ए स्टडी इन एस्टेनटायलिज्म, सं. 2010 ई.

4) जयदिपसिंह डोलिया, दि प्ले ऑफ गिरीश कर्नाड : क्रिटिकल प्रस्पेक्टीव, सं. 1999 ई.

मराठी

5) डॉ. दिनेश वाघुंबरे, मिथकांचा रंगाविष्कार (गिरीश कर्नाड यांच्या निवडक नाटकांच्या संदर्भात), गोदावरी प्रकाशन, अहमदनगर.

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न**

   1. कन्नड नाटक साहित्य का उदय........ भाषा के नाट्यानुवाद से माना जाता है।

      अ. संस्कृत ब. मराठी क. उर्दू ड. अंग्रेजी

   2. नागमंडल नाटक का प्रमुख पात्र पुरुष ..... है।

      अ. कप्पण्णा ब. अप्पण्णा क. नागेश्वन ड. बुर्जुग

   3. नागमंडल नाटक का प्रकाशन सन्........ई. में हुआ थां।

      अ. 1984 ब. 1988 क. 1989 ड. 1889

   4. नागमंडल नाटक में कुल कितने अंक है?

      अ. पॉच ब. दो क. तीन ड. चार

   5. नागमंडल की प्रमुख स्त्री पात्र है।

      अ. कुरुधबा ब. राजकुमारी क. अंधी माँ ड. रानी

उत्तर –

1. अ 2. ब 3. अ 4. ब 5. ड

2. **उचित मिलान कीजिए।**

1. गिरीश कर्नाड	अ. शिकारी कुत्ता
2. नागमंडल का नाग प्रतीक	ब. दक्षिण भारत लोककथा
3. अप्पण्ण के आंगन	क. पुरुष प्रधान व्यवस्था की शिकार
4. नागमंडल का कथाबीज	ड. पुरुष विकृत भाव
5. रानी	इ. ज्ञानपीठ

उत्तर–

1–इ, 2–क, 3–अ, 4–ब, 5–ड

3. **सही गलत की पहचान करें**

1. रानी अपने माँ–बाप की एकलौती संतान है, जिसका विवाह पति अप्पण्णा से हुआ है।
2. नागमंडल नाटक गिरीश कर्नाड द्वारा लिखित है, जिसका मूल कथाबीज मराठी भाषा से लिया गया है।
3. गिरीश कर्नाड का जन्म कर्नाटक में ब्राह्मण परिवार में हुआ था, उन्होंने मराठी में नागमंडल नाटक लिखा है।
4. नागमंडल का नागप्पा इच्छाधारी शेर है, जो मातृसत्ताक परिवार पध्दति का प्रतिनिधित्त्व करता है।
5. अप्पण्णा और रानी दाम्पत्य अनमेल विवाह का उदाहरण है, अप्पण्णा संशयी स्वभाव का है।

उत्तर–

1. पहला सही और दूसरा भी सही है।
2. पहला सही और दूसरा गलत है।
3. पहला गलत और दूसरा भी गलत हैं।
4. पहला गलत और दूसरा भी गलत है।
5. पहला सही और दूसरा भी सही है।

❑❑❑

इकाई 3
'उचक्का' (आत्मकथा) लक्ष्मण गायकवाड (मराठी)
अनु–सूर्यनारायण रणसुभे

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय विवेचन

3.3.1 लक्ष्मण गायकवाड का जीवन, परिचय और कृतित्त्व का परिचय।

3.3.2 'उचक्का' आत्मकथा का परिचय

3.3.3 'उचक्का' आत्मकथा : कथावस्तु

3.3.4 'उचक्का' आत्मकथा की समीक्षा।

3.3.5 'उचक्का' में चित्रित सामाजिकता।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने पर आप–

1. लक्ष्मण गायकवाड के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व से परिचित होंगे।
2. 'उचक्का' आत्मकथा का वस्तुविवेचन तथा लक्ष्मण गायकवाड के जीवन के बारे में जान सकेंगे।

3. 'उचक्का' आत्मकथा के माध्यम से उठाईगीर जाति की दरिद्रयता, उनकी मजबूरी, भूख के कारण होने वाली उनकी छटपटाहट और अभावग्रस्तता से परिचित होंगे।

4. 'उचक्का' आत्मकथा के माध्यम से घुमंतु जनजातियों की समस्याओं से अवगत होंगे।

३.२ प्रस्तावना–

'आत्मकथा' का अर्थ है- अपनी कथा। जब कोई महान व्यक्ति अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त विवरण स्वयं लिखता है, तब उसे 'आत्मकथा' कहा जाता है। आत्मकथा में लेखक को निरपेक्ष एवं तटस्थ रहना चाहिए्। हिंदी की आत्मकथा लेखकों में बनारसीदास जैन, भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, सत्यदेव परिव्राजक, देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ. हरिवंशराय बच्चन का नाम लिया जा सकता है। भारत की विभिन्न भाषाओं में भी लेखकों के द्वारा आत्मकथाएँ लिखी गई हैं्। मराठी भाषा में 'उचल्या' नाम की आत्मकथा लक्ष्मण गायकवाड ने लिखी है। इस आत्मकथा को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया है। 'उचल्या' मराठी आत्मकथा का हिंदी में 'उचक्का' शीर्षक से अनुवाद डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे ने किया है।

3.3 विषय विवेचन

3.3.1 लक्ष्मण गायकवाड का जीवन परिचय और कृतित्त्व :

भारतीय आत्मकथा साहित्य के इतिहास में लक्ष्मण गायकवाड का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लक्ष्मण गायकवाड आधुनिक भारत के उन आत्मकथाकारों में से हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में भारतीय उठाईगिरों के जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने लेखन का सीधा संबंध जन-जीवन के साथ स्थापित किया। जिससे भारतीय आत्मकथा साहित्य परंपरा में एक नए विचारों का प्रारंभ हुआ। इसीलिए लक्ष्मण गायकवाड को दलित, वांछित, उठाईगिरों के जीवन को प्रकाश में लाने वाले मुखिया कहा जाता है।

लक्ष्मण गायकवाड एक भारतीय मराठी भाषा के साहित्यकार और समाज सेवक है। लक्ष्मण गायकवाड विभिन्न निम्न जाति के लोगों के उत्थान के लिए काम करते हैं्। उन्होंने श्रमिक आंदोलन में सक्रीय रूप से भाग लिया और किसानों, झुग्गी-झोपड़ी में रहनेवालों और समाज के अन्य दोस्तों के कल्याण के लिए काम किया। विभिन्न दलित घुमंतु जातियों का संघटन करके अपने अधिकारों के लिए उन्हें जागृत किया। आधिकार प्राप्ति के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित किया।

जन्म, माता-पिता

अंग्रेज सरकार ने 'गुनहगार' का ठप्पा जिस समाज पर लगा दिया और सभी ने उसी रूप में इस समाज की ओर देखा ऐसे समाज में लक्ष्मण गायकवाड का जन्म हुआ। जीवन भर संघर्ष ही अपने जीवन का लक्ष्य मानकर जीते रहे। लक्ष्मण गायकवाड ने 'उचल्या'(उचक्का) आत्मकथा में उठाईगीर की दरिद्रयता, उनकी मजबूरी को प्रस्तुत किया है।

लक्ष्मण गायकवाड का जन्म दि. 23 जुलाई, सन् 1956 को धनेगाँव, जिला लातूर में हुआ है। इनका जन्म जिस जाति में हुआ है उस जाति के लोगों का न कोई गांव, न खेत है। जन्मदिन का हिसाब - किताब की कोई पद्धति भी नहीं है। लक्ष्मण गायकवाड की मां धोंडाबाई और पिता का नाम मार्तंड गायकवाड है, जो खेत में रखवाली का काम करते थे। पहले तो वे चोरी ही किया करती थे। इनके दादा लिंगाप्पा गायकवाड और दादी तरसाबाई भी चोरी करके ही घर चलाते थे। बड़े भाई मानिक भी चोरी ही किया करता था लेकिन अब वह मिल में नौकरी कर रहे हैं। छोटा भाई हरचंदा बकरियों को और सूअरों को संभालने का काम करता था। लक्ष्मण का विवाह योली नामक गांव की छबा से हुआ है ।

शिक्षा और नौकरी

उठाईगीर जाति के लक्ष्मण स्कूल में पढ़ने के लिए जाते थे। स्कूल जाने के कारण उन्हें स्वच्छता का एहसास हुआ था। वे खुद अपने घर की सफाई करते थे और घर में शुद्ध पानी पीने के लिए रखते थे। लक्ष्मण ने चौथी कक्षा तक शिक्षा पास के ही गांव से ली है। आगे पांचवीं कक्षा के लिए वे आश्रम विद्यालय सोनगांव, सोलापुर चले गए लेकिन वहां से भी वे वापस गांव आकर रहने लगे। आगे चलकर लातूर में केले बेचने का छोटा-मोटा व्यवसाय करने लगे। १६ साल की उम्र में ही वे लातूर की सूत मिल में नौकरी करने लगे। मिल में नौकरी करते, करते उन्होंने मजदूरों की यूनियन बना ली और उस यूनियन के लीडर खुद लक्ष्मण गायकवाड़ ही थे।

मिल में नौकरी करते, करते उन्होंने आगे चलकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय से एस. एस. सी. तक की शिक्षा ले ली। स्वतंत्र लेखक के साथ-साथ लक्ष्मण गायकवाड़ सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। खानाबदोश विमुक्त जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक कल्याण के लिए लक्ष्मण गायकवाड ने विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जनकल्याण विकास संस्था और डिनोटिफाइड एंड नोमैडिक ट्राइब्स आर्गेनाइजेशन के अध्यक्ष के रूप में वे सतत सामाजिक कार्यों में भी है।

कृतित्व -

1) उचल्या (सन् 1987 ई.)
2) दुभंग (सन् 1994 ई.)
3) उठाव (सन् 2019 ई.)
4) परिघाबाहेर (सन् 2000 ई.)
5) वकिल्या पारधी (सन् 2011 ई.)
6) समाज साहित्य आणि स्वतंत्र (सन् 2012 ई.)
7) वडार वेदना (सन् 2000 ई.)
8) दुभंग (सन् 1998 ई.)

9) चीनी मातीतील दिवस (सन् 2014 ई.)

10) पत्थर कटवा (सन् 2014 ई.)

11) उठाईगीर (सन् 2017 ई.)

12) गावकुसाबाहेर (सन् 2018 ई.)

13) विमुक्त भटक्यांचे स्वतंत्र (सन् 2016 ई.)

'उचल्या' आत्मकथा का अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी, कन्नड़, तेलुगु, उर्दू, फ्रेंच, बंगाली भाषा में हुआ है। इनकी 'वडार वेदना' रचना बहुचर्चित रही है।

सम्मान व पुरस्कार –

'साहित्य अकादमी पुरस्कार' (सन् 1988 ई.), 'महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार' (सन् 1990 ई.), भारत के 'राष्ट्रपति सार्क साहित्य पुरस्कार' (सन् 2001 ई.), 'महाराष्ट्र फाउंडेशन ग्रंथ पुरस्कार' (सन् 2003 ई.), 'महाराष्ट्र सरकार से सर्वश्रेष्ठ लेखक पुरस्कार' (सन् 2003 ई.), समता तथा संजीवनी अवार्ड, पानघण्टी पुरस्कार, मुकादम पुरस्कार आदि से सम्मानित ।

शोषित, पीड़ित समाज के लिए किए गए कार्य के लिए पुणे, पिंपरी, चिंचवड, कोल्हापुर, औरंगाबाद महानगरपालिकाओं ने नागरिक सत्कार किया। सार्क राष्ट्र द्वारा दिए जाने वाले अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार से भी इन्हें सम्मानित किया है।

शोषित, पीड़ित समुदायों में सामाजिक परिवर्तन लाने वाले और विमुक्त, घुमंतु जमातों के लोगों को न्याय और उनके अधिकार दिलाने के लिए उन्होंने कार्य किया है। महाराष्ट्र में 'विमुक्त भटके संघर्ष महासंघ' के व्यवस्थापकीय अध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। मजदूर, खेती मजदूर, होटल बॉयज, स्त्री मुक्ति इत्यादि आंदोलनों में सक्रिय रुप से सहभागी होते थे। सन् 1984 ई. में निकली विमुक्त घुमंतू लोगों की शोध यात्रा के संयोजक थे।

3.3.2 'उचक्का' आत्मकथा का परिचय:–

लक्ष्मण गायकवाड़ मराठी के उन लेखकों में हैं, जिन्होंने महाराष्ट्र के उठाईगिरों के जन–जीवन पर उपन्यास ही नहीं लिखे, बल्कि उनके सामाजिक उत्थान के लिए संघर्ष भी करते रहे। मराठी में 'उचल्या' और 'पत्थर कटवा' जैसी आत्मकथा के लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ पिछले 25-30 वर्षों से कई आदिवासी सामाजिक संगठनों से जुड़े हुए हैं। शोषित पीड़ित समुदायों में सामाजिक परिवर्तन लाने और घुमंतु जमातों के लोगों को न्याय दिलाने के लिए वे सन् 1978 ई. से कार्यरत हैं। उनकी आत्मकथा 'उचक्का' आदिवासी पारधियों की समस्याओं को सामने लाने का प्रयास है। आदिवासियों के जीवन पर प्रामाणिक साहित्य तब तक नहीं लिखा जा सकता, जब तक लेखक को आदिवासियों के जीवन की गहरी जानकारी न हो। हिंदी में

ऐसी जानकारी बहुत कम लेखकों को है। यही कारण है कि हिंदी में आदिवासी जीवन पर लिखे गए साहित्य की संख्या बहुत कम है।

'उचल्या' आत्मकथा वास्तव में एक कार्यकर्ता का मुक्त चिंतन है। इस कारण इस आत्मकथा का साहित्यिक मूल्यांकन करने की अपेक्षा समाजशास्त्रीय मूल्यांकन हो यह अपेक्षा है। संवेदनशील मन की एक ईमानदार अभिव्यक्ति ही यह लेखन है। इस लेखन के मूल में 'उपराकार' लक्ष्मण माने और विमुक्त जनजाति के कार्याध्यक्ष श्री बालकृष्ण रेणके की प्रेरणा महत्त्वपूर्ण रही है। सन् 1989 ई. के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित यह 'उचल्या' आत्मकथा बिना किसी आत्मदया या किसी क़िस्म की आत्मश्लाघा के बिना हमारे सामाजिक यथार्थ को सामने लाती है। दलित लेखकों की परम्परागत कथा से अलग, यह ऐसा आत्म-वृत्तान्त है जो समाज के छोटे-छोटे अपराधों पर परवरीश पाते एक समूह का प्रतिनिधित्व करता ।

3.3.3 'उचक्का' आत्मकथा का वस्तु विवेचन –

'उचक्का' (उचल्या) लक्ष्मण गायकवाड़ की आत्मकथा है। चोरी करके जीवनयापन करने वाली 'उथिया' या 'पाथरुड' जनजाति के लक्ष्मण गायकवाड़ को भी असमान सामाजिक व्यवस्था का अन्याय और उत्पीड़न सहना पड़ा। अंग्रेजों ने इस जनजाति को अपराधी घोषित कर दिया। इसलिए इस जनजाति में पैदा हुए बच्चों को जन्म से ही अपराधी माना जाता था। पूरा समाज उन्नत जनजातियों को अपराधी मानता था और उनसे संपर्क नहीं किया जाता था। संपूर्ण उचिया जनजाति हाशिए पर है। उठाईगीर जाति के कारण मजदूरी भी नहीं मिलती। इसका वर्णन करते हुए लिखते लक्ष्मण गायकवाड़ हैं- मेरे पिताजी मार्तंड बाबा को 'यह उठाईगीरों की जाति का है' कहकर लोग मजदूरी का कोई काम न देते। मां धोंडाबाई को खेतों पर काम में दिया जाता था। इस कारण दादी चोरी करने मेले में जाने लगी।

लक्ष्मण गायकवाड़ का जन्म जिस समाज में हुआ, उस समाज को यहां की वर्ण व्यवस्था और समाज व्यवस्था ने नकारा है। हजारों वर्षों से इस समाज के मनुष्य को मनुष्य के रूप में इस व्यवस्था द्वारा नकारा गया था। लक्ष्मण जी अपने घर की हालत का वर्णन करते हुए कहते हैं- यह छप्पर मुझे गौरैया की घोंसले की तरह लगता। जमीन पर बैठकर रेंगते हुए ही हम सबको इस घर के भीतर जाना पड़ता था। दादी तरसाबाई घर का खर्च चलाती थी। दादा बेकार हो चुका था। अंग्रेज सरकार ने तो गुनहगार का ठप्पा ही इस समाज को लगा दिया था। रोजी-रोटी के सभी साधन, सभी मार्ग इस समाज के बंद होने के कारण चोरी करके जीना ही इस समाज का आखरी मार्ग रहा था। लक्ष्मण जी खुद के पारिवारिक चोरी के व्यवसाय के बारे में लिखते हैं -अब हमारे घर में चोरियाँ करनेवाले तीन सदस्य हो गए। अण्णा या भाऊ के साथ दल के पीछे रहकर सामान सँभालने के लिए मैं कभी लातूर, अंबाजोगाई या रेणापपुर के साप्ताहिक बाजार में जाता। चोरी का सामान लाकर वे मुझे सौंपते, मैं सँभालने बैठता। अण्णा, दादा, भाऊ आढ़त पर जाते। वहाँ से कभी कोई गठरी, तेल का डिब्बा या चप्पलें ले आते। मैं उनके द्वारा तय किए गए स्थान पर बैठकर इन चीजों को सँभालता। काफी कमाई होते ही हम लोग गाँव की ओर निकल पड़ते। चोरी के लिए अब हमारे ही घर का

एक गिरोह बन गया था। चोरियों में प्राप्त गठरियों में रोटी, साग, चटनियाँ भी मिल जातीं। मैं उन्हें खा लेता। चोरी की सफलता की खुशी में दादा जलेबियाँ, पेड़े ले आता।

चोरी किस तरह से की जाती है इसके बारे में लक्ष्मण जी कहते हैं–चोरी करनेवालों का आठ–दस का एक गिरोह होता था। जब ये चोरी करने निकलते हैं, तब उनमें से किसी पर सबका सामान सँभालने की जिम्मेदारी होती है, एक रसोई बनानेवाला होता है। बाकी आठ लोग जेब काटनेवाले के साथ निकल पड़ते हैं। गिरोह में से एक ही व्यक्ति जेब काटनेवाला विशेषज्ञ होता। उसके साथ जो अन्य साथी होते हैं, उनमें एक अपनी तेज निगाहों से यह भाँप लेता है कि किसकी जेब अधिक भारी है। ऐसे व्यक्ति को वह बराबर ढूँढ़ निकालता है और दूसरे साथियों को इशारा कर देता है। गिरोह में से दूसरा उसका पीछा करता है। पैसेवाला भीड़ में घुसा कि धीरे–धीरे सभी उसके आसपास पहुँचने लगते हैं। बहुत सावधानी से जेब काटनेवाला उसके करीब पहुँच जाता है। उसकी दो उँगलियों में ब्लेड होती है। वह उस पैसेवाले के निकट जाकर कुछ ही क्षणों में उसकी जेब काट लेता है। ब्लेड जल्दी से मुँह में डाल जुबान के नीचे छिपा लेता है। दो उँगलियाँ से बटुआ या नोट उड़ाकर पीछे खड़े अपने साथी के हाथों सौंप देता है। साथी तेजी से उस भीड़ में से अलग हो जाता है। काम ठीक से फतह हो तो इनमें से एक खैखारकर या खाँसकर सबको निकलने का इशारा करता है। सभी वहाँ से खिसककर पहले से तय किसी स्थान पर इकट्ठे हो जाते हैं, अगर किसी दिन भीड़ ही न हो, या भीड़ के बावजूद पैसेवाला न मिले तो यह गिरोह सीधे बस अड्डे जाता है।

लक्ष्मण गायकवाड़ बचपन में स्कूल जाते थे तो बच्चे चिल्लाते थे 'पोर चोर आल रे पथरुड आल रे।' हर विद्यार्थी की आंखें भावुकता से भरी थीं। वह जिंदगी से गुजर रही थी। लक्ष्मण अपना दर्द इन शब्दों में व्यक्त करते हैं। वह कहते हैं, ''अगर किसी जंगली पक्षी को मुर्गीघर में छोड़ दिया जाए, तो बामणा–मराठा के बच्चे वैसे ही थे जैसे मुर्गियां पक्षी की पूंछ उठा लेती हैं।'' हर जगह छात्र होने के बावजूद लक्ष्मण ने एकाकी जीवन व्यतीत किया।वे शिकारियों के चंगुल में फंसे शिकार की तरह लक्ष्मण को सता रहे थे। उसने सदैव स्वयं को उच्च वर्गों के चंगुल में अकेला पाया है। उनकी नॉन–मैट्रिक तक की शिक्षा ऐसी ही विपरीत परिस्थितियों में हुई।

स्कूल जाकर शिक्षा लेने के कारण ही लक्ष्मण जी के जीवन में बहुत सारा बदलाव आ गया था। अब खुद कहते हैं–स्कूल जाने के पहले मैं कभी–कभार ही दाँत साफ करता। पर पुस्तक में पाठ पढ़ने के बाद मैं रोज दाँत साफ करने लगा। ठीक से मुँह धोने लगा। घर की औरतें कुएँ या नदी से पानी लाकर मिट्टी के एक बड़े घड़े में उड़ेल देतीं। पाँच–छह घड़े पानी उसमें उड़ेला जाता। इस घड़े को धोने का काम कभी मेरी ओर आ जाता था। तब उसके तल में छोटे–छोटे कीड़े, मेंढक, केकड़े, कीचड़, कचरा आदि निकलता। हम सब बिना किसी झिझक के इसमें से पानी पीते थे। शुद्ध पानी पीना चाहिए, ऐसा किसी को लगता ही नहीं था। स्कूल जाने के बाद अब मैंने यह काम अपने हाथों में लिया। हर रविवार को सतत मैं इसे धोने लगा, पूरी झोपड़ी साफ करने लगा और घर के दूसरे सदस्यों को सफाई का महत्त्व समझाने लगा।

लक्ष्मण को उनकी ही जाति पंचायत ने शिक्षा से वंचित कर दिया था। जैसे ही लक्ष्मण शिक्षा के लिए गये, जाति के लोग बीमार पड़ गये। उसके कबीले के लोगों का मानना था कि बुखार और बुखार है। तब मास्टर ने उसे समझाया, मांग गुर्जी की जाति पंचायत, सामद्यान ने सुनी। लक्ष्मण गायकवाड़ के घर के लोगों ने उसे शिक्षा से दूर रखा। वह घर में हाशिए पर था और स्कूल जाने के बाद भी शिक्षक ने परिवार और परिवार को समझाया। इसे स्वीकार कर लिया, लेकिन स्कूली छात्रों और सामाजिक व्यवस्था को कौन समझेगा? अन्य अछूतों की तरह। लक्ष्मण भी जातिवादी सामाजिक व्यवस्था का शिकार हो गए। बाबा चामले के यहाँ पहरेदारी कर रहा था, वहाँ चार अच्छी बातें सुनकर आता, हमें सुनाता। कहता, हमें गाँव के अन्य लोगों की तरह जीना चाहिए, गाँव के लोग हमें अपने कुओं से पानी नहीं भरने देते, ऊपर से पानी पिलाते हैं। मन्दिर में नहीं जाने देते। इन्हीं दिनों जंगली बिल्ली को मारकर खाने की घटना हुई। गाँव में बदनामी हुई। हालाँकि बिल्ली जंगली थी, पर गाँववालों का कहना था कि वह पालतू थी। पालतू बिल्ली को मारना और फिर खाना भयंकर पाप था। परिणामतः गाँववालों ने हमारा पानी बंद कर दिया। बस्ती के सभी लोगों ने तुलसीराम को काफी डाँटा। तुलसीराम ने प्रतिज्ञा की कि भविष्य में वह किसी बिल्ली को मारना और खाना तो दूर, पकड़ेगा भी नहीं।

लक्ष्मण जी के बाबा ज्ञान की कहानियाँ सुनाते थे। वे यह भी कहते थे कि, लोग गांव वाले हमें पानी नहीं पीने देते। पानी ऊपर से उठता है। उन्हें मंदिर में प्रवेश की अनुमति नहीं है इसलिए हमें अपने आचरण में सुधार लाना चाहिए। समाज अपने आचरण में सुधार करने वाला नहीं था क्योंकि उन्नत जन जाति ने अपने आचरण में सुधार कर लिया था। उठाने के प्रति भी उनका यही दृष्टिकोण था। ऐसी ही एक घटना लक्ष्मण के साथ घटी। वे कहते हैं, ''किसी को भी पानी भरने की इजाजत नहीं थी, किसी को कुछ भी छूने की इजाजत नहीं थी. लक्ष्मण गायकवाड और धनगर जाति का विष्णु सर्दी के कारण मां के मंदिर के सामने जाल लगाकर बैठा रहता था। उस समय आग जलती थी तब दोनों सेकने बैठे। जब लक्ष्मण बैठा तो गलती से विष्णु को छू लिया। उसके हाथ में पीतल का लोटा था। उसने लक्ष्मण को दो-चार बार गालियां दीं। उसने जाल में ही तांबा जला दिया। जब जाल से तांबा निकाला गया, तो तांबा धोकर घर चला गया। यह जाल लक्ष्मण ने लगाया था। जिन हाथों ने जाल बिछाया, उन्हीं हाथों के स्पर्श से तांबा निकला। धूमिल हो गया। तांबा धूमिल हो गया लेकिन अग्नि धूमिल नहीं हुई।'' लक्ष्मण आत्ममंथन के साथ-साथ समाज का भी निरीक्षण करते हैं। उन्हें कहीं भी अपना दोष नहीं दिखता। बिना किसी दोष के अपराधी का जीवन, लक्ष्मण को छुआछूत और सांप्रदायिकता का जीवन जीना था। एक बार वे भुसनी के पाटिल के बेटे की शादी में खाना खाने बैठे। वह अपने घर की स्थिति जानता था। उन्होंने अपने परिवार के लिए कुछ खाने की मिठाईयां ले ली। जैसे ही बुजुर्ग ने देखा, वह परेशान हो गया और बोला, हेन च्या मायला हलकट कोन्या म्हारा, मंगचा ही की, समदी पंगत बटाविला ती बटाविला। जहां भोजन और पानी का दान करना धन्य माना जाता है, उसी धर्म के लोग जाग उठे। खाने की पंक्ति में बैठे लोगों को भ्रष्ट किया है इस हेतु लक्ष्मण को पंक्ति से उठाया। लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा में लिखते है -कभी-कभी दादा की पत्नी अर्थात् मेरी भाभी चक्की टाँकने निकलती, तब मैं भी उसके साथ थैली लेकर जाता। एक छोटी-सी थैली में चकमक, छेनी,

लकड़ियों के छिलके होते। भाभी घर-घर घूमती। आवाज देती। किसी ने बुलाया कि भाभी और मैं भीतर जाते। भाभी चक्की का एक पाट निकालती। भीतर जाने के पहले ही चक्की को हमारे हाथों के स्पर्श के डर से सवर्ण औरतें सारा आटा निकाल लेतीं। इस कारण कभी-कभार भाभी मुझसे कहती कि भीतर जाने के तुरंत बाद चक्की को छू लिया। इससे चक्की के भीतर का पूरा आटा हमें ही मिल जाता।

पिछड़ी जाति के होने के कारण और घर की हालत ठीक-ठाक न होने के कारण पेट की आग बुझाने के लिए उठाईगिरों की जाति के लोगों को कहीं से भी खाना मिले तो वे खाते थे। हम भूखे जो थे।किसी गाँव में अगर कहीं शादी होती अथवा मौत का खाना होता, तो मैं तुलसीराम, नाऱ्या और तुक्या वहाँ इकट्ठे होकर जाते थे। मेरे गाँव के आसपास जो और गाँव थे-रमजनपुर, उमरगा, शिवणी, भुसनी, बाभलगाँव, भातखेड़ा, उनमें कब और किसके यहाँ शादी है, कौन पूरे गाँव को न्योता दे रहा है, किस बड़े घर में कब मौत हुई है, वहाँ खाना कब दिया जा रहा है, इसकी ताक में हम रहते। जब पता चलता तब हम सारी बिरादरी को बता देते कि वहाँ जाना है।वे आगे लिखते हैं कि हम लोग पेट भरने के लिए खाना भी चुराते थे।हम सबको जोरों की भूख लग गई्। किसी की जेब में पैसे नहीं थे। चन्द्रभागा के पुल के पास हम सब बैठे थे। पास में एक प्रौढ़ स्त्री बड़ी पतीली में चावल पका रही थी। उस स्त्री के साथ आए सभी लोग शायद चन्द्रभागा में स्नान के लिए गए हुए थे। जावली के जीजा का ध्यान उस स्त्री की पतीली पर था। चूल्हे पर पतीली में चावल पक रहे थे। वह स्त्री तो वहाँ सामने ही बैठी थी। हमारे दल के लोगों में चर्चा शुरू हुई कि उठाईगीर की जो सच्ची औलाद है, वह उस स्त्री की उपस्थिति में चावल की पतीली को गायब करके दिखाए्। कोई तैयार नहीं हो रहा था। पके भात की पतीली को कैसे उठाया जाए, इस पर चर्चा शुरू हुई्। शर्तें लगाई जाने लगीं्। जावली के संतराम जीजा ने कहा कि मैं उठाईगीर की सच्ची औलाद हूँ। उस औरत की उपस्थिति में मैं वह पतीली उठाकर लाता हूँ। मुझे केवल एक साथी की जरूरत है। जीजा और भाड़गाँव के सखाराम में शर्त लगी। जावली का जीजा उस औरत के पास गया। शराबी का नाटक कर उस औरत के सामने वह पेशाब करने खड़ा हो गया। इस कारण चूल्हे के सामने मुँह कर बैठी वह औरत मुँह फेरकर बैठ गई और गालियाँ देने लगी। अब चूल्हे की ओर उसकी पीठ थी। वह कहने लगी, लफंगा, बदमाश, बेशर्म, धोती ऊपर कर मेरे सामने मूत रहा है। वह सतत गालियाँ देने लगी। इस बीच जावली का जीजा, बड़ी तेजी से चूल्हे पर रखी पतीली धोती के सिरे से पकड़ भाग निकला। जब तक वह दूर तक न निकल गया, तब तक शराबी मूतने का नाटक करता रहा और वह औरत गालियाँ बकती रही। थोड़ी देर बाद पेशाब करनेवाला उस औरत के सामने से शराबी का नाटक करते हुए धीरे से निकल गया। वह औरत अब चूल्हे की ओर देखने लगी। चूल्हे की पतीली गायब हो चुकी थी।

चोरी करने के कारण जीवन में जो कुछ नुकसान होता है, उसकी जानकारी लक्ष्मण जी के पिताजी को थी। इसलिए पिताजी कहते हैं-एक दिन बाबा लातूर आया। उसकी तबीयत बहुत खराब हो गई थी। कहने लगा, बेटे, स्कूल न छोड़्। घर के टीन बेच दूँगा, तुझे किताब कॉपियाँ लाकर दूँगा, पर पढ़ाई जारी रख। चोरियों के कारण हरचंदा की जिन्दगी बर्बाद हो गई है। अब तो वह न चोरियाँ करता है और न कुछ्। वह काम से गया।

उठाईगीरों के यहां सभी लोगों को शराब की आदत होती है। खुद लक्ष्मण जी अपने बचपन के किस्से बताते हुए लिखते हैं–इस शराब को हमारे यहाँ छोटे–बड़े सभी पीते। परन्तु एक नियम था। पीने के पहले छोटों को बड़ों के पैर छूने पड़ते थे। भाऊ, दादा, अण्णा, बाबा सबके पैरों को मैं छूता और खोपड़ी पीता। एक बात अच्छी थी कि खोपड़ी पीते समय परिवार के सभी पुरुष एक स्थान पर बैठे रहते। मैं सबसे छोटा था, इस कारण मुझे सबके पैर छूने पड़ते। झुककर किसी एक के पैर छूने लगता कि सब मेरी पीठ की ओर हाथ बढ़ाते और आशीर्वाद देते।

अनैतिक संबंधों के बारे में लक्ष्मण जी कहते हुए खुद के परिवार के सदस्यों का वर्णन अपनी आत्मकथा 'उचक्का' में करते हैं– ''एक बार मैं और भाभी बाहर आँगन में सोए थे। अन्य भाभियाँ भीतर सोई थीं। देर रात में कोई एक पुरुष वहाँ आया और सीधे भाभी के शरीर पर लेट गया। मैं सोया नहीं था। परन्तु चुपचाप लाश की तरह पड़ा रहा। मेरी भाभी के शरीर को काफी घोलकर वह तेजी से निकल पड़ा। भाभी जोर–जोर से चिल्लाने लगी। भागो, भागो, कोई मेरे शरीर की ओर आया था। भीतर से भाई लोग निकले और उस दिशा में दौड़े। परन्तु अँधेरे में वह व्यक्ति गायब हो गया। हमारी अन्य भाभियाँ इस भाभी से पूछने लगीं, वह तेरे साथ सोया था क्या? तब भाभी ने कहा, मैं क्यों सोने दूँगी? भड़वा, मेरे शरीर पर लेट रहा था। मुँह पर हाथ रख रहा था। वास्तविकता क्या थी–भाभी को ही मालूम। मैं असलियत जानता था। परन्तु भाई भाभी को छोड़ देंगे इसलिए खामोश रहा।''

संयुक्त परिवार में पले बड़े हुए लक्ष्मण जी को जब संयुक्त परिवार का विघटन हुआ। घर के सभी भाइयों के स्वतन्त्र हो जाने के कारण मेरी देखभाल का प्रश्न था ही। इस कारण मैंने बाभलगाँव की बोर्डिंग में रहने का निर्णय लिया। कक्षा के एक लड़के ने मुझसे कहा था कि पिछड़े वर्ग के लिए बोर्डिंग की व्यवस्था होती है और वहाँ पैसे देने की जरूरत नहीं होती। मैं हेडमास्टरजी के यहाँ गया। मैंने उनसे बोर्डिंग के सेक्रेटरी के नाम एक चिट्ठी ले ली। सेक्रेटरी ने कहा, सामान ले आओ। उनकी बोर्डिंग में विमुक्त जनजातियों का एक भी लड़का नहीं था। इस कारण उन्होंने तुरन्त हाँ भर दी। फिर मैंने भाई से कहा, मुझे अब बोर्डिंग में जगह मिल गई है। मैं वहीं जा टिकता।

लक्ष्मण गायकवाड़ ने खुद कमाना शुरू कर दिया। उन्हें सूत मिल में नौकरी मिल जाती है। आश्रय के लिए कमरा नहीं मिलने पर लक्ष्मण गायकवाड़ ने अपनी पीड़ा व्यक्त की। मैं और मेरा दोस्त कमरों में गए। हम सभी जातियों की तलाश कर रहे थे। अगर हम जाति बताना चाहते थे, तो हमें कमरा नहीं मिला। मैंने साले गल्ली में एक जगह पर मराठा जाति के है ऐसा कहा और हमें एक कमरा दिया गया। लेकिन जाति ने उनका पिछा ही नहीं छोड़ा। कहीं न कहीं से घर के मालिक को पता चल जाता और लक्ष्मण को घर छोड़ना पड़ता। सिर्फ अपनी जाति की वजह से उन्हें लातूर में 19 बार कमरा बदलना पड़ा।

लक्ष्मण गायकवाड की आत्मकथा 'उचक्का' (उचल्या) में उन्होंने अपनी जनजाति में होने वाले जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, अंधविश्वास पर भी प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं–उसके बाड़े में एक बार एक मसानजोगी (एक जनजाति) आया था। उससे इसने एक कंगन और दो हड्डियाँ खरीदीं। इन वस्तुओं का काफी धूर्तता से

उपयोग करती रही। इन चीजों को सामने रखकर वह किसी को शकुन बतलाती, किसी को अंगारा देती, किसी को दवा। दवा के नाम पर गाँजे और तुलसी के पत्तों को कूटकर उनका मिश्रण देती। आश्चर्य इस बात का कि कुछ लोगों को इससे फायदा भी होता। जिसे बच्चा नहीं हो रहा था, ऐसी औरत को उसने यह दवा दी और उसे बच्चा हुआ–ऐसी अफवाह फैल गई।'

गरीबों के कारण लक्ष्मण गायकवाड़ को हर रोज काम करके शाम के वक्त स्कूल जाना पड़ता था। इससे उनके संघर्षमय जीवन का दर्शन होता है।मैं स्कूल जा रहा था। नौकरी भी कर रहा था। इस कारण काफी दोस्त मिल गए्। वेतन आने पर मैं उन पर खर्च करता। मैं कुछ आवारा दोस्तों के सम्पर्क में आ गया। उनके साथ कहीं पर भी घूमता रहता।

लक्ष्मण जी शहर में जब रहते थे तब शोभा नाम की लड़की से प्रेम कर बैठे थे। लेकिन वह ऊंची जाति की थी। इसीलिए ऊंची जाति के दोस्त उनसे जलने लगे थे। जीवन में मिले हुए दोस्त और प्रेम के बारे में खुद लक्ष्मण जी लिखते हैं–''जिन दोस्तों के साथ में आवारागर्दी करने जाता, औरों की पिटाई के लिए उनका साथ घूमता, उन्हीं दोस्तों में से एक ने मुझसे एक दिन कहा, शोभा तुझे बुला रही है चल। और वह मुझे एक कमरे में ले गया। वहाँ और भी दोस्त बैठे थे। सबने मुझ घेर लिया और पीटने लगे। बहुत मारा उन्होंने। कहने लगे, खबरदार, आगे कभी शोम से बातचीत की लो। अब कभी उसके साथ दिखलाई दिया तो तुझे खत्म ही कर देंगे। उस दिन मुझे पता चला कि प्रेम किसे कहते हैं? दोस्ती का भी अनुभव मुझे हो गया।''

लक्ष्मण को छुआछूत और जातिवाद ने बुरी तरह सताया था। इसलिए उन्होंने छुआछूत और जातिवाद को रोकने के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित करने का फैसला किया। जब उन्होंने पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण किया तो उन्होंने अपने समाज के साथ हो रहे अन्याय को देखा। मराठा लोगों ने हनमंत वडार को इसलिए मार डाला क्योंकि वडार ने पानी भर दिया था। यह अस्पृश्यता का शिकार था, कलंबा तालुका के मोहा गांव के पारधियों पर सरपंच और पुलिस ने हमला किया था। ये हमला मानवता की रक्षा के लिए नहीं था। यह जातिवाद की रक्षा के लिए था। ढोकी गांव में पारधी अपराधियों के रूप में पारधियों का नरसंहार किया गया। ढोकी गांव और आसपास के गांव के दबंगों ने सात पारधियों को जिंदा काट डाला। ये भी छुआछूत और जातिवाद के शिकार थे। लेखक को इस बात पर अफसोस है कि भले ही नरसंहार हो रहे हों, हत्या करने वाले सभी लोग, भले ही अस्पृश्यता को रोकने के लिए कई कानून पारित किए गए हों, लेकिन जो लोग अस्पृश्यता को बढ़ावा देते हैं और जातिवाद रखते हैं वे निर्दोष हैं।

लक्ष्मण गायकवाड विवाह के कुछ दिन बाद अपनी पत्नी मारपीट करके उसे ससुराल भेज देते है्। झगड़े का कारण खुद को जब समझ में आता है। तब भी सोचने लगते हैं–किसी की मत सुन।

मेरा दिमाग अचानक चमक उठा। पता लग गया कि मेरा हँसता–खेलता वैवाहिक जीवन ध्वस्त करनेवाले मेरे अपने ही लोग है्। तब से मैं बहुत सजग हो गया। पत्नी को बुला लाने के लिए मैंने अपने भाई को ससुराल भेजा। मेरी पत्नी का एक पाई उठाईगीरी करता था। पिछली घटना से वह मुझ पर खार खाता

था। उसने भाई से कहा, लक्ष्मण को ही भेजो। उसने मेरी बहन की इतनी पिटाई की है कि उस याद से बहन अभी भी रोती है। उसकी यह शरारत मुझे पसन्द नहीं है। वह कौन ऐसा जागीरदार बना बैठा है। जब तक वह नहीं आएगा, मैं बहन को नहीं भेजूंगा। मजबूर होकर मै ससुराल गया।

लक्ष्मण गायकवाड़ शहर में रहने के कारण और पढ़ाई करने के कारण भाषण देने लगे थे। जिस मिल में वे काम करते थे वहां पर 15 अगस्त के अवसर पर भाषण की तैयारी कर रहे थे। सूत मिल के की हालत बहुत ही थी। हमारी यूनियन (इंटक) दीपावली पर बोनस लेने के लिए ही थी। उसका ऑफिस कहाँ है, नेता कौन है, कुछ भी मालूम नहीं था। वेतन के साथ वर्ष-भर में हमें केवत तीन ही दिन की छुट्टियाँ दी जाती थीं-15 अगस्त, 1 मई, 26 जनवरी। इस 15 अगस्त को मजदूरों पर होनेवाले अन्यायों के खिलाफ भाषण देने का निर्णय मैंने मन-ही-मन ले लिया। जो कुछ होना है, होने दो, कुछ मजदूरों ने मुझसे कहा, लक्ष्मण, इस बार तुझे मजदूरों के अन्याय के खिलाफ बोलना ही चाहिए। पिछली बार तू साहब की ओर से बोला था। हमारी पिटाई होती है-ऐसा तू बोल, फिर हम तुझे मानेंगे।

अन्ततः 14 अगस्त का दिन आया। कल सबेरे सभी मजदूर झंडावंदन पर आएँ। कल छुट्टी है। यह सूचना लग गई। मुझे क्या बोलना है-इस पर मैं रात भर सोचता रहा।

अंग्रेज और स्वतंत्रता के बाद के अपने ही लोगों द्वारा किए जा रहे अमानवीय व्यवहार, नियमों के बारे में लिखते हुए कहते हैं -''ब्रिटिश सरकार ने यह अमानवीय नियम बनाया था कि पारधी और अन्य कई जनजातियाँ गुनहगार हैं और जन्मतः गुनहगार हैं। इन जातियों की सूची बनाई गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जवाहरलाल नेहरूजी ने कहा, कोई भी जनजाति जन्मतः गुनहगार हो ही नहीं सकती। आज भारत अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुआ है, इसलिए मैं इन जन-जातियों को मुक्त करता हूँ। इन्हें विशेष मुक्त-विमुक्त ऐसा नाम देता हूँ। उसी दिन से इन जन-जातियों को विमुक्त जनजातियाँ कहा जाने लगा। परन्तु आज स्वतन्त्रता के इतने वर्षों के बाद भी पुलिस और शासन इन जातियों को सुधारने की अपेक्षा बिना किसी प्रमाण के, झूठ-मूठ आरोप लगाकर उन्हें जेल में डालती है।''

लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी आत्मकथा 'उचक्का' में आपने राजनीतिक चुनाव का वर्णन करते हैं - ''बहुजन समाज पार्टी के लोगों ने मुझसे कहा था कि मेरे लिए वे पचास-साठ हजार रुपए खर्च करेंगे। उन्होंने मुझे टिकट दे दिया। मैं उनकी दो-तीन बैठकों में गया। काफी प्रभावित हुआ। इतना बड़ा चुनाव मैं लड़ने वाला हूँ, इस बात से मैं बहुत खुश था। चुनाव फार्म भरने का दिन आया। पाँच सौ रुपए जमानत के भर दिए। गवाहों के हस्ताक्षर लेकर फार्म जमा कर आया।'' लातूर की सभी राजनीतिक पार्टियों के लोगों में खबर फैल गई कि लक्ष्मण गायकवाड़ चुनाव के लिए खड़ा हो गया है। विमुक्त जनजाति के एक लाख से अधिक मत वह ले जाएगा।लक्ष्मण गायकवाड़ ने विभिन्न आंदोलन शुरू किए और उसमें उन्हें उनकी पत्नी ने भी साथ दिया। इसका भी वर्णन वे अपनी आत्मकथा में करते हैं -''बैंक से ऋण लेकर मैंने अब पत्नी को एक जनरल स्टोर खुलवा दिया है। मेरी पत्नी छबु पढ़ी-लिखी नहीं है। परन्तु आन्दोलनों में मुझे वह पूर्ण सहयोग देती रही है। मोर्चे में सहभागी होकर स्त्रियों को सुधारने और संगठित होने के लिए प्रवृत्त करती है।

मुझे अब दो लड़कियाँ-संगीता और मंजुषा तथा एक लड़का प्रफुल्ल है। ये तीनों स्कूल जाते हैं। इन दिनों लातूर में ही हूँ। मेरे माँ-बाप, भाई पेट भरने के लिए उठाईगीरी करते हुए निरन्तर भटकते रहे। उन्हीं में से एक मैं आज समाज-व्यवस्था के परिवर्तन के लिए न्याय, अधिकार और समता की स्थापना के लिए राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलन करता हुआ भटक रहा हूँ। मेरे भटकने में और उनके भटकने में निश्चित ही मूलभूत अन्तर है।

लक्ष्मण गायकवाड की आत्मकथा 'उचक्का' (उचल्या)में जाति व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था की पारंपरिक परंपरा को सशक्त बताया गया है। उन्होंने अपनी स्वच्छंद भाषा शैली में, अपनी ही बोली में अपनी आत्मकथा लिखी है। कहीं-कहीं पर अंग्रेजी के शब्द, अपनी जनजाति में बोली जाने वाली भाषा के शब्द, मुहावरे, कहावतों के माध्यम से अपने भाव- भावना, जीवन में घटित घटनाओं को आत्मकथा में प्रस्तुत किया है।

3.3.4 'उचक्का' आत्मकथा की समीक्षा –

जन्म के समय अपराधियों के रूप में निंदा की गई ऐसी एक जनजाति का लक्ष्मण गायकवाड़ का संघर्ष ही इस अवसर पर इस 'उचक्का' (उचल्या) की आत्मकथा में प्रस्तुत किया गया है। चोरी करना इस जनजाति का व्यवसाय था। सभी रिश्तेदार एक ही व्यवसाय में थे। लेखक के पिता भी खेत में मजदूर के रूप में काम करते थे। उन्हें एहसास हुआ कि समाज उनकी जनजाति के साथ अन्याय कर रहा है। इसी अहसास से वह आगे बढ़ने और शिक्षा प्राप्त करने के लिए आगे आए। लेकिन गाँव ने लेखक के अच्छे काम की सराहना नहीं की। इसके विपरीत उन्होंने उनका अभिवादन भी स्वीकार नहीं किया। उस समय वह सोचता था, कम से कम एक बार इस गांव में आकर अपनी नाक ऊंची करूंगा और इन लोगों को खुश करूंगा। वह अपने गुस्से का समाधान करता था। उनका बचपन अन्याय सहते हुए बीता। हालाँकि यह सच है लेकिन उन्हें इस अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा भी मिली। उनके मन में यह विचार था कि संघर्ष के बिना मुक्ति नहीं है। लेखक की जाति के साथ अन्याय हो रहा था। यद्यपि कोई अपराध नहीं था फिर भी समाज ने उनके साथ जन्म के समय अपराधियों जैसा ही व्यवहार किया। तत्कालीन 'सामाजिक कानून' और 'सामाजिक नियम' ऊंची जातियों के अपराधी हैं। ऐसे कानूनों और विनियमों के खिलाफ लड़ने के लिए लक्ष्मण गायकवाड ने निर्णय लिया।

पुलिस जेबकतरों की जेब से उनकी गाढ़ी कमाई भी छीन लेती है। लेखक ने सोचा कि असली अपराधी कौन है? सरकारी लोग जो हजारों करोड़ रुपये चुराते हैं, व्यापारी, ठेकेदार, अमीर लोग या कुलीन जनजाति जो अपने पेट के लिए एक या दो रुपये चुराते हैं। समुदाय ने उन लोगों को अस्वीकार कर दिया जिन्होंने आस्था और उद्योग के अन्य कार्य अपनाए। इसलिए उन्हें बिना कुछ लिए चोरी करनी पड़ी। तो लेखक उत्तेजित हो जाता है। संघर्ष करने लगता है। अब मैं वास्तव में उत्साहित हो गया और मराठवाड़ा में खानाबदोशों के अन्याय को तोड़ने के लिए हर जगह जाने लगा। कभी कानून के जरिए तो कभी मोर्चे करके और अधिकारियों पर दबाव बनाने के लिए कदम उठा रहे हैं। लेखक ने संघर्ष का रास्ता अपनाया। लेखक

का मानना है कि घुमंतू लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष के अलावा कोई विकल्प नहीं है। संघर्ष उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। लेखक के शरीर में संघर्ष और समाज सेवा का खून उबल रहा था। लातूर के व्यापारी गाँव के किसानों के साथ बहुत धोखेबाज़ थे। इन व्यापारियों के लिए एक सबक जो बुआई के समय किसानों को 22 रुपए की हाईब्रिड की एक बोरी 45 रुपए में बेचते हैं्। मैंने और प्रदीप ने व्यापारी को पकड़ लिया और उसे गधे पर बिठाया। हमने उसके चेहरे पर पत्ते का गीला टुकड़ा बांधकर उसका चेहरा काला कर दिया और उसकी गर्दन के चारों ओर साइकिल का टायर डाल दिया और उसके सिर पर हाईब्रिड बैग डाल दिया और गोलाई से हनुमान चौक तक मार्च किया। नारे लगाने लगे. व्यापारियों। यह लेखक के लिए एक जीत थी। सूती मिल मजदूरों की स्थितियाँ भी दयनीय थीं। मजदूर ओवरटाइम काम से लेकर मारपीट तक से परेशान थे। मजदूर गुलाम का जीवन जी रहे थे। ''अब मज़दूरों का पक्ष लड़ने लगा।'' लेखक बताते हैं। 15 अगस्त के अवसर पर जब लेखक को अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिला तो मैनेजर के सामने वे अपने भाषण में अश्रुपूर्ण स्वर में मजदूरों की पीड़ा बतानी शुरू कर दी।

लेखक उजड़ी हुई जनजाति को न्याय दिलाने के लिए संघर्ष करता है। साथ ही, वह किसानों, श्रमिकों और अछूतों के न्याय के लिए सक्रिय रूप से लड़ते हैं। उनका संघर्ष सड़क से कानून तक और समाज से सरकार तक देखा जा सकता है।

लक्ष्मण की 'उचक्का' (उचल्या) आत्मकथा का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक परिवर्तनवादी की कथा है। मनोगत में लेखक कहते हैं कि, हमें एक इंसान के रूप में जीने का अधिकार है। और उन्हें समझाते हुए कि हमें इस आधिपत्य से दूर रहना चाहिए और अपने दम पर जीना चाहिए, शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और अन्याय के खिलाफ संगठित होना चाहिए, हमें यह एहसास होने लगा कि तथाकथित गणमान्य व्यक्तियों, बुद्धिजीवियों और मध्यम वर्ग को इस समाज की पीड़ा की बिल्कुल भी परवाह नहीं है। पता नहीं। इसलिए लोगों के सामने यह सारी पीड़ा है।

लेखक उनसे आंदोलन से जीतते हैं। यह वास्तव में उनकी जीत हैं। उनकी आशाओं और जीत के सपनों को साकार करने के लिए कार्यकर्ता निडर होकर आगे आने लगे। यह निडरता उनके रचनात्मक संघर्ष से आ रही थी।

3.3.5 'उचक्का' में चित्रित सामाजिकता –

'उचक्का' (उचल्या) लक्ष्मण गायकवाड़ की आत्मकथा है, जो अपराधी मानी जाने वाली जनजाति का प्रतिनिधित्त्व करती हैं्। इस आत्मकथा में इस बात की चर्चा की गई है कि कैसे छुआछूत और जातिवाद के कारण उठाइगीर समुदाय पर लगातार भयानक और क्रूर अत्याचार होते रहे हैं्। आज भी उठाइगीर जनजाति पर हर जगह अन्यायपूर्ण अत्याचार हो रहा है। 'उचक्का' (उचल्या) लक्ष्मण गायकवाड़ स्वयं अपनी आत्मकथा को एक समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ मानते हैं। आलोचकों का यह भी कहना है कि लक्ष्मण गायकवाड़ को इस लेखन को कार्यकर्ताओं की गुप्त कृति के रूप में भी देखना चाहिए्। कहा गया है कि इसे समाजिक दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए और यह सही लगता है।

पाथरूट, भामटा, टाकरी जैसी कई जातियाँ हैं। कामती, करिनावादर, कामती, घण्टीचोर, वडार जातियों को उठाइगीर माना गया है। लक्ष्मण गायकवाड़ का जन्म 'धानेगांव' नामक एक गांव में हुआ था। लक्ष्मण को अपने गांव से प्यार जरूर हुआ लेकिन गांव ने उन्हें हमेशा दूर रखा। धानेगांव के बारे में लक्ष्मण गायकवाड कहते हैं, इस गांव को मेरा जन्म गांव कहा जाता हैं, लेकिन यह गांव मुझे भूखा रखता था और मैं गरीबी में जी रहा था। यहां तक कि मराठा जाति का छोटा बच्चा भी कहता था कि लछिमन ताता केकड़े खाते हैं? इसीलिए मैं चिढ़ता था। अगर मैं किसी का बर्तन छूता था, तो मुझे उसे जलाकर साफ करना पड़ता था। नहीं तो, गाय को छू लेते। मैं एक साल के लड़के को भी अदबीन कहता था। मैं बड़ा हुआ था।गाँव में एक गुलाम के रूप में हमे समझा जाता हैं। हालाँकि इसके अलावा कुछ भी नहीं था, इस गांव में जन्म हो गया था इसलिए गाँव से प्यार किया था, क्योंकि मैं इस गाँव में रहता था। न केवल गाँव द्वारा बल्कि इस सामाजिक व्यवस्था द्वारा, अस्वीकृत उत्थान ने गरीबी के अलावा कुछ नहीं दिया है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में उठाइगीर समुदाय के पास आजीविका के विभिन्न तरीके थे। घर के चूहों को गेहूं के खेत में छोड़कर वे किसानों के खेतों से गेहूं चुरा लेते थे। इस चुराए गए गेहूं से पिता ने चार मटकुले गेहूं से भर दिए। हमारे दादाजी और अन्ना गेहूं चुराने का ही काम करते थे। इसके साथ ही उठाइगीर समाज के लिए शिकार आजीविका का एक महत्त्वपूर्ण साधन था। चूहे, खरगोश, नेवले, हिरण, गिद्ध, छछूंदर, बत्तख, बगुले, कछुए, मछलियाँ, जंगली बिल्लियाँ, तीतर, सूअर, पान-कुत्ते, लोमड़ी, कबूतर, केकड़े, भेड़, हिरन, गिद्ध, मटन, मोर आदि का शिकार करके मैंने खाया है। लक्ष्मण कहते हैं कि इसी का मुझे भोजन करना पड़ता।

लक्ष्मण गायकवाड़ उठाइगीर जाति समुदाय का प्रतिनिधित्त्व करते हैं। धोखाधड़ी, जेब काटना, जूते चुराना, चोरी करना, ठगी करना उठाइगीर जाति समुदाय के लिए जीविकोपार्जन के यही तरीके थे। उठाइगीर जाति समुदाय प्रशिक्षण देता था इस काम के लिए्। और जो भी इस काम में पाया जाए, उसे बांटा जाता । कुत्ते भी लक्ष्मण गायकवाड़ के कंबल के नीचे सोते थे। ठंड में बकरियों के पास सोते थे। कुत्ते, बकरियों के कारण लक्ष्मण के शरीर को गर्मी मिलती और ठंड में अच्छा लगता था।

वहां ग्रामीण जीवन में कोई सम्मान नहीं था और मानवता की कोई गंध नहीं थी। इस जीवन से तंग आकर और शहर से आकर्षित होकर लक्ष्मण लातूर भाग गए। घरवालों ने उसे ढूंढ लिया। मां और दादा उसे पास लेकर रोने लगे और कहा कि वह क्यों छोड़कर चला गया।बाद में लक्ष्मण का शहर जाने का सपना सच हो गया। घर की हालत देखकर उन्होंने लातूर के नांदेड़ नाका के पास ब्रेड बेचना शुरू कर दिया। ब्रेड में मुनाफा न होने पर केले बेचने लगे। लक्ष्मण यहीं नहीं रुके। उन्होंने एक फैक्ट्री में काम किया। उसे खोने के बाद उन्होंने नटराज टॉकीज के सामने एक चाय का होटल खोला। होटल छोड़कर, उन्होंने एक सब्जी की दुकान स्थापित की और दूध का व्यवसाय भी शुरू किया। चूंकि मैं बेईमानी बर्दाश्त नहीं कर सकता था, इसलिए मैंने मिर्च बेचने का काम किया, एन. बी. शेख गुरुजी की मदद् से मैंने पथरूट समाज जिला संगठन का गठन किया और जी.एस पाटिल की मदद् से मैंने नगर पालिका में चपरासी के रूप में काम किया। मैंने नगर परिषद की १२ नंबर स्कूल में चपरासी के रूप में काम किया। आवेदन करने के बाद मेरा तबादला

जकात नाका में कर दिया गया। उन्होंने साइकिल की दुकान छोड़ दी। उन्होंने ठेकेदार का काम किया। फिर क्लर्क और इंजीनियर को बिल निकालने के लिए हाथ-पैर जोड़ने पड़े और भुगतान करना पड़ा। तब उसे एहसास हुआ कि हमने गलती कर दी है। बहुत कुछ मिस कर दिया है। ऐसा लग रहा था कि भ्रष्टाचार के खिलाफ दहाड़ने वाले ने आज इस भ्रष्टाचार के सामने घुटने टेक दिए हैं।

लक्ष्मण गायकवाड़ और उनका उजड़ा हुआ समुदाय सामाजिक व्यवस्था में हाशिए पर था। न केवल सामाजिक व्यवस्था बल्कि सरकार ने भी समाज को अपराधियों की श्रेणी से बाहर रखा। इसीलिए समाज के नैतिक मूल्यों के बावजूद भी उत्थानशील समाज अपने तरीके से जी रहा है। यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि उत्थानित समाज का समग्र जीवन, उनका दर्द और उनका अस्तित्त्व हाशिये पर पड़े लोगों का अस्तित्त्व है। गांव में भी यह समुदाय आपराधिक प्रवृत्ति का है। वह भी शहर का अपराधी है। लक्ष्मण गायकवाड़ ने उस समुदाय के दर्द और पीड़ा को प्रस्तुत किया है जो अपराधी नहीं हैं, लेकिन सरकार द्वारा उन्हें अपराधी करार दिया गया है। यह सिर्फ लक्ष्मण गायकवाड़ की पीड़ा नहीं है, बल्कि पूरे 'उठाइगीर' समुदाय की पीड़ा है।

लक्ष्मण गायकवाड़ को पता था कि गाँव के लोग हमें पानी भरने नहीं देते। पानी ऊपर से देते है। वे उसे मंदिर तक नहीं जाने देते। गायकवाड़ को समंदी पंगत बटविला कहकर भोजन की कतार से बाहर कर दिया गया। तब उनकी सामाजिक चेतना जाग उठी। धनगर के बेटे का हाथ से तांबा छू गया। तब उन्होंने तांबे के जल से अपना बल्ला निकाला, उसे शुद्ध किया। लेखक को अपनी जाति के कारण उनतीस बार कमरे बदलने पड़े। यह दर्द फूट रहा था। मराठा समाज के लोगों ने हनमंत वडार को मार डाला क्योंकि वडर ने पानी भर दिया था। ये सभी घटनाएँ लेखक और उसके समाज को इस सामाजिक दुख से मुक्त कर देंगी। लेखक अपनी आत्मकथा की प्रस्तावना में कहता है, जिस समाज में मैंने जन्म लिया, उसे जाति व्यवस्था ने अस्वीकार कर दिया था और वह सामाजिक व्यवस्था, जिसे सैकड़ों-हजारों वर्षों तक मनुष्य के रूप में सभी ने अस्वीकार कर दिया और जानवरों की तरह जीवन जीने के लिए मजबूर किया। इसीलिए वह खुद को एक सामाजिक कार्यकर्ता कहते हैं।

एक जेब कतरे यानी समाज द्वारा खारिज किया गया लेखक इन विकृत व्यवहारों में समाज और सरकार की माँगों को अस्वीकार करना शामिल है। अगर आप किसी मराठी किताब का पहला पन्ना खोलेंगे तो पहले पन्ने पर आप देखेंगे, भारत मेरा देश है। सभी भारतीय मेरे भाई हैं। मुझे इन स्थापित परंपराओं पर गर्व है। मैंने सोचा कि यह वही था। फिर वे ऐसा क्यों करते हैं बिना किसी कारण के हम पर चोरी करने और हमें मारने का आरोप लगाते हैं। वे मेरी मां को मारते थे, मेरी मां की साड़ी पकड़ते थे, उन्हें मारते थे और उन्हें पैसे मांगते थे, वह चोरी कर रही हैं। मैंने सोचा, अगर भारत मेरा देश है, तो हमारे साथ अलग व्यवहार क्यों किया जा रहा है? लेखक को लगा कि पाठ्यपुस्तक के पहले पन्ने पर लिखी प्रतिज्ञा झूठी है। क्योंकि उनकी और उनके समाज की स्थिति बहुत अलग थी।

सोलह साल की उम्र में केशवराव सोनवणे की सिफ़ारिश पर उन्होंने खुद को सोलह की बजाय अठारह साल का बताया और सुतगिरनी के रिंग फ्रेम अकाउंट में नौकरी पा ली। कुछ दिन बाद वेतन बढ़ गया। लेकिन शिक्षा के प्रति उनके जुनून ने उन्हें शांत बैठने की अनुमति नहीं दी, इसलिए उन्होंने शिवाजी हाईस्कूल, लातूर में दाखिला लिया। दिन में पढ़ाई के बाद वह रात में काम करने लगे।

लक्ष्मण को कारखाने में मजदूरों का शोषण नज़र आया। मोहनदास करमचंद गांधी, पं. जवाहर लाल नेहरू का सपना गरीबों को खुशहाल बनाना था, लेकिन आज आजाद देशों में भी मजदूरों को पीट-पीटकर मार डाला जाता है, आठ घंटे काम और चार घंटे हाजिरी। मजदूरों के साथ जो व्यवहार किया गया वह गलत था। लेखक अपने भाषण में कहा करते थे कि मजदूर जितना चाहे उतना काम करें लेकिन उन्हें मारना बंद करें। लेखक अपने अधिकारों को प्राप्त करने में श्रमिकों के नेतृत्त्व को स्वीकार करता है। लेखक मिल मजदूरों के साथ होने वाले अन्याय के खिलाफ संघर्ष करते हैं। मजदूरों की हड़ताल, मजदूरों की मांगें पूरी हुईं। लेकिन अपनी जीत का बदला लेने के लिए कुछ दिनों बाद उन्हें मिल से निकाल दिया जाता है। नौकरी छोड़ने के बाद नटराज टॉकीज के सामने होटल बनाया। एक दिन मिल का मालिक और उसका स्टाफ उसके पास आये। होटल में चाय का ऑर्डर दिया। साहब से मिलने पर लेखक को अपमान महसूस हुआ। उन्होंने ठान लिया था कि एक दिन उन लोगों के साथ बैठेंगे जिन्होंने उनका अपमान किया है।

अत: चूँकि समाज ने उन्हें स्वीकार करने से इंकार कर दिया, इसलिए स्थापित समाज भी उन्हें अवांछित महसूस करता है। लेकिन वे समाज में रहना चाहते हैं। हमें समाज में आचरण करना होगा। वे हमारे समाज के उत्थान के लिए जागृत हैं। वे 'उचक्का' (उचल्या) के चौथे संस्करण के वक्तव्य में कहते हैं कि, ''मैं आज भी सामाजिक चेतना के साथ, खानाबदोशों के संगठन में और परिवर्तन आंदोलन में काम कर रहा हूं। आज मैं महाराष्ट्र में एक घुमंतू संगठन के अध्यक्ष के रूप में काम कर रहा हूं। लेखक स्वयं घुमंतू जनजाति को सामाजिक चेतना से ऊपर उठाने के लिए संघर्षरत हैं। हड़ताल करने के कारण उन्हें नौकरी से निकाल दिया जाता है। हालाँकि, वे अपना संघर्ष नहीं रोकते बल्कि संपूर्ण घुमंतू जनजातियों की समस्याओं को हल करने के लिए और अधिक सक्रिय हो जाते हैं।

3.3.6 'उचक्का' आत्मकथा में चित्रित समस्याएँ–

भारतीय समाज के दलित, उठाईगीर, घुमंतु अशिक्षितों में बीमारी हटाने के लिए, मनोकामना पूर्ति के लिए, संकट से मुक्ति पाने के लिए, बरसात के लिए, आदि के प्रति कई अंधविश्वास देखने को मिलते हैं। आत्मकथा लेखकोंने दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षितों में स्थित धर्मसंबंधी मान्यता, अंधविश्वास, भूत, प्रेत, डायन, चुडैल संबंधी विश्वास, पाप-पुण्य संबंधी मान्यता, शकुन-अपशकुन संबंधी धारणा, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, झाड़-फूंक सम्बन्धी समस्याओं पर विस्तार से सोचा है, जिसका वर्णन 'उचक्का' आत्मकथा में लक्ष्मण गायकवाड करते हैं।

1) **शिक्षा सम्बन्धी समस्या–**

व्यक्ति तथा समाज के विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। आज के आधुनिक युग में शिक्षा का अनन्य साधारण महत्त्व है। भारत सरकार ने देश को प्रगतिशील राष्ट्र बनाने हेतु शिक्षा प्रसार पर बल दिया। दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षितों में शिक्षा प्रसार के लिए विशेष योजनाएँ बनाई। जब तक दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित शिक्षित नहीं होता, तब तक उसका शोषण समाप्त नहीं होगा। नागरी संस्कृति में रहने वाला दलित शिक्षित हो रहा है, परन्तु देहातों में रहने वाला दलित, उठाईगीर, घुमंतु आज भी अशिक्षित है। आलोच्य आत्मकथा लक्ष्मण गायकवाड जी इस पर विचार प्रकट किया है। बाबा भी परेशान। वह भी कहने लगे की कल से स्कूल मत जा। मैंने कहा, ठीक है। क्यों भी स्कूल में मेरी हालत उसे पक्षी की तरह थी जो कभी गलती से मनुष्य समूह में रह आया हो और केवल इसी कारण जंगल लौट के पश्चात दूसरे सभी पक्षी उस पर टूट पड़ रहे हों। इस कारण स्कूल छूटने से मुझे खुशी ही हुई। पर कुछ ही दिनों बाद स्कूल के एक ब्राह्मण शिक्षक ने मेरी की पूछताछ की और कुछ लड़कों को भिजवा कर मुझे जबरन स्कूल बुलवाया।

देहात में रहने वाला व्यक्ति, दलित, मजदूर, किसान, नारी आदि सभी शिक्षा व्यवस्था से वंचित रहे। परिणामतः अशिक्षा की मात्रा बढ़ती रही। भारत सरकार ने शिक्षा प्रसार और प्रचार के लिए कार्य शुरू किया। अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा की घोषणा की गई। गाँव–गाँव में पाठशालाएँ खोली। छात्रवृत्ति, छात्रावास की योजना बनायी, परन्तु इसका कितना लाभ हुआ? कितने लोग शिक्षित हो गये? यह भी सोचने का विषय रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था में प्राचीन काल में शूद्र और नारी को शिक्षा का अधिकार नहीं था दलित लोग प्राचीन काल से अज्ञानी, अशिक्षित रहे हैं। शिक्षा की सुविधा उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी। जातीय भेदाभेद के कारण दलितों को पाठशाला में प्रवेश नहीं मिलता, कभी–कभी पाठशाला के बाहर बैठाया जाता था।

2) **रहन–सहन व निवास व्यवस्था–**

ग्रामीण जीवन में रहने वाला दलित, उठाईगीर, घुमंतु आज भी अर्थाभाव से पीड़ित है। देहातों में मिलने वाली वस्तुओं का वह उपयोग करता है। गन्दी–बस्ती, टूटे–फूटे बर्तन, फटे हुए कपड़े, कीचड़, बदबू, अंधेरा, झुग्गी–झोपड़ी यही उनके जीवन का अंग है। आलोच्य आत्मकथा में दलित, उठाईगीर, घुमंतु के रहन–सहन चित्रित किये हैं।

3) **आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय–**

किसी भी समाज की सम्पन्नता उसकी आर्थिकता पर निर्भर है। दलित, उठाईगीर, घुमंतु समाज की स्थित इससे अलग नहीं। अज्ञान, अंधविश्वास के साथ–साथ गरीबी उनके जीवन का एक अंग बनी है। धन के बल पर व्यक्ति विकसित बन सकता है। अर्थात् विकास की नींव सम्पत्ति रही है। जिसका अभाव दलित, उठाईगीर, घुमंतु का जीवन है। परंपरागत ढंग से व्यवसाय करने वाले दलित,उठाईगीर, घुमंतु अर्थाभाव में जीवन जी रहे है उनके व्यवसाय अप्रगत हैं। आज सरकार उन्हें विकास योजना से लाभान्वित करने की कोशिश कर रही है। परन्तु सफलता अधिक मात्रा में नहीं मिल रही है। आलोच्य आत्मकथा में दलित, उठाईगीर, घुमंतु की आर्थिक स्थिति पर विचार प्रकट किया है जो इस प्रकार– जिस समूह के पास ना कोई

अपना गांव है, न खेत, ना कोई जाति और न जन्म दिन के हिसाब किताब की पद्धति ऐसी ही एक जाति में में जनमा।

4) **बलि प्रथा–**

भारतीय दलित, उठाईगीर, घुमंतु धर्म व्यवस्था के साथ-साथ रूढ़ि-परंपरा में अटका है। धर्म और देवी-देवता से उसका संबंध रहा है। देवी-देवता को प्रसन्न करना, मनोतियाँ मनाना, संकट दूर करने के लिए प्रार्थना करना आदि के कारण कई प्रथाओं का निर्माण हुआ। उन प्रथाओं में बलि प्रथा एक प्रथा है। मुर्गा, मुर्गी, बकरी, सुअर की बलि देकर मनोकामना पूर्ति की आशा की जाती है। यह प्रथा हिंसक होकर भी उनके लिए आनंद-प्रद लगती है। इसके पीछे अज्ञान, अशिक्षा, धार्मिक भावना, मानसिक रही है। आलोच्य आत्मकथा में इस पर विचार प्रकट किया है।

5) **देवी देवताओं संबंधी मान्यता–**

भारतीय दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित लोग देवी-देवताओं की उपासना के साथ-साथ तत्संबंधी रूढ़ि-परंपराओं का भी पालन करते हैं। मानव ने उसके बल पर सृष्टि के रहस्य को समझने का प्रयास किया है। दलितों, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षितों में भी अपने देवी-देवता के प्रति निष्ठा एवं आस्था रही है। देवी-देवता की पूजा करना, मंत्र पठन करना, बलि देना, देवता के नाम पर उत्सव पर्व मनाना आदि उनकी सम्बन्धी मान्यता स्पष्ट होती है। आलोच्य 'उचक्का' आत्मकथा में इस पर प्रकाश डाला है।

6) विवाह संबंधी समस्या –

मानव एक सामाजिक प्राणी होने के कारण रोटी, कपड़ा, मकान, कामवासना, प्रेम तथा रक्षा आदि उनकी आवश्यकताएँ होती है। इनकी पूर्ति वह समाज से करता है। मानव समाज ने यौन संबंध स्थापित करने के लिए विवाह संस्था का निर्माण किया। इसके मूल में नैतिकता और प्रेम रहा है। 'हिन्दी शब्द सागर में स्त्री-पुरुष को दाम्पत्य सूत्र में बांधने वाली रीति को विवाह कहा है। तो यज्ञ दत्त शर्मा ने विवाह एक सामाजिक बंधन है, जो मानव जीवन को व्यवस्थित और सुचारू रूप से चलाने के लिए समाज ने बनाया है। ऐसा कहा है। उठाईगीर, घुमंतु, दलित, अशिक्षितों में विवाह को संस्कार मानकर उसको तोड़ना अनैतिक और बुरा माना जाता है। इसे एक पवित्र संस्कार कहा है। आलोच्य आत्मकथा में भी इस संस्कार पर विचार किया है। इस संस्कार में अनेक रूढि, परंपराओं का पालन किया जाता है। हमारी जाति के दो ही कुलनाम हैं- जाधव और गायकवाड। विवाह हेतु यादव गायकवाड को लड़का- लड़की देंगे या गायकवाड जाधव को। जाधव जाधव या गायकवाड गायकवाड में बेटी-व्यवहार नहीं होता। एक दो कुलनाम प्रमुख हैं, अलावा इसके इन दोनों कुलनामों में अनेक उपकुल है।

7) मंत्र-तंत्र, झाड़-फूँक, जड़ी-बूटी, जादू-टोना सम्बन्धी अंधविश्वास की समस्या–

दलित, उठाईगीर, घुमंतु, समाज अज्ञानी, अंधविश्वासू होने के कारण भूत-पिशाच संबंधी मान्यताएँ उनमें रही है। परिणामतः उस पर उपाय के रूप में मंत्र-तंत्र, जादू-टोना तथा बीमारी दूर करने के लिए झाड़-

फूंक जड़ी–बूटी का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक ज्ञान–विज्ञान, चिकित्सा सुविधा का अभाव होने के कारण इसे बढ़ावा मिल रहा है दलित, उठाईगीर, घुमंतु, लोग दवाइयों की अपेक्षा दुवा पर अधिक विश्वास रखते हैं। जड़ी–बूटी का प्रयोग करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आत्मकथाओं में दलितों, उठाईगीर, घुमंतु में स्थित इस अंधविश्वास तथा मान्यता पर गहराई से विचार प्रकट किया है। येलम्मा देवी का प्रकोप हो जाएगा। देख मार्तंड, हम फिर कहते हैं कि लक्ष्या को स्कूल से निकल ले। अगर वह फिर स्कूल गया तो हम जात–पंचायत बिठाएंगे और तुझे बहिष्कृत करेंगे।

8) शुभ–अशुभ संबंधी अंधविश्वास की समस्या–

दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित लोग अंधविश्वासी और अज्ञानी होने के कारण शकुन–अपशकुन पर विश्वास रखते हैं। अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं का भविष्य के साथ संदर्भ जोड़ने की उनकी प्रवृत्ति आलोच्य आत्मकथा में दिखाई देती है।

9) शोषण की समस्या–

भारतीय समाज के दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित में जाति–व्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण है। जातीय व्यवस्था के कारण इस समाज की एकता खंडित हो रही है। समाज में ऊँच–नीच सवर्ण–दलित आदि कई भेद खड़े हो गये हैं। इस सामाजिक भेदाभेद के कारण शोषण की समस्या को प्रश्रय मिला। ऊँच–नीच भेदाभेद के कारण समाज का ऊपर का तबका निचले सामाजिक तबके का शोषण करता रहा है।

10) जमींदारों द्वारा शोषण समस्या–

भारतीय समाज व्यवस्था में स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल में जमींदार वर्ग अत्याचार और शोषण का प्रतीक रहा है। यह वर्ग सत्ता और धन के बलपर सामंतीवादी प्रवृत्ति को बनाये रखने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। कानून से जमींदार प्रथा समाप्त हो गई है परन्तु जमींदारों की ऐंठन अभी भी दिखाई देती है। उनकी नई–नई प्रवृत्ति, शोषण की नीति, दमनचक्र के हथकंडे आदि के दर्शन 'उचक्का' आत्मकथा में होते हैं। दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित, किसानों की जमीन हड़प करना, उनसे बेठबिगारी लेना, मजदूरी देने से इंकार करना, उनकी नारियों की अस्मत को दिन–दहाड़े लूटना, उन पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें जेल भेजना, उनका कत्ल करना गंदी राजनीति का सहारा लेना, पुलिसों को अपना पक्षघर बनाकर लोगों पर जुल्म करना आदि कई रूपों में दलितों, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित का शोषण आज भी कर रहे हैं। इस समस्या का चित्रण 'उचक्का' आत्मकथा में दिखाई पड़ता है।

11) पुलिस द्वारा शोषण की समस्या–

आजादी के पश्चात भारत सरकार ने अपनी विकास नीति के अनुसार समाज के सभी स्तर के लोगों के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ किया। इस विकास नीति के अनुसार नगर तथा गाँवों तक सरकारी अफसरों की नियुक्तियाँ की गई। सरकारी विकास योजना का गाँवों तक, हर एक मकान तक पहुँचना, हर एक व्यक्ति को उसका लाभ पहुँचाना इसी उद्देश्य से यह कार्य किया गया, परन्तु इस कार्य में

कितनी सफलता प्राप्त हो चुकी है यह एक अनुसंधान का विषय है। वास्तविक रूप में कागज से प्राप्त होने वाली विकास की जानकारी और समाज में हुआ वास्तविक विकास में अंतर 'उचक्का' आत्मकथा में दिखाई देता है।

12) जातीय भेदाभेद की समस्या–

भारतीय दलित, उठाईगीर, घुमंतु, अशिक्षित समाज व्यवस्था में धर्म के साथ जाति एवं गोत्र का महत्त्व रहा है। गसमाज के लोग अपनी जाति व्यवस्था को सुरक्षित रखना चाहते हैं। परिणामतः जातीय भेदाभेद की समस्या का निर्माण हुआ है। आज देश में जातीयता एवं साम्प्रदायिकता की दग्धता फैल रही है। 'उचक्का' आत्मकथा में भी इसके दर्शन होते हैं।

13) भ्रष्टाचार की समस्या–

आजादी के पश्चात भारत सरकार देश के विकास के लिए कार्य कर रही है। एक ओर विकास की गंगा बह रही है तो दूसरी ओर नयी–नयी समस्याओं की बदबू भी आ रही है। ये समस्याएँ भारतीय जनता का शोषण कर रही हैं। उनमें एक समस्या भ्रष्टाचार की समस्या है। इसका निर्माण किसी धार्मिक मत या अंधविश्वास का परिणाम नहीं बल्कि वर्तमान व्यवस्था एवं नीति के कारण इस समस्या का जन्म हुआ। शिक्षित, अशिक्षित, नागरी, ग्रामीण, दलित, उठाईगीर, घुमंतु सभी लोग इस समस्या से पीड़ित हैं। इसका वर्णन 'उचक्का' आत्मकथा में लक्ष्मण गायकवाड करते हैं।

14) अवैध यौन संबंधों की समस्या–

भारतीय जनजातीय समाज व्यवस्था में यौन संबंधों की स्थापना के लिए विवाह संस्था के अतिरिक्त अन्य मार्गों से भी यौन संबंध स्थापित किये जाते हैं। इसका वर्णन 'उचक्का' आत्मकथा में लक्ष्मण जी करते हुए दिखाई देते हैं, वे खुद आपनी आंखों से आपनी भाभी के अवैध यौन संबंधों को देखकर भी चुप चाप बैठते हैं। कुछ जनजातियों में स्वच्छंदतापूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता रहती हैं, तो कुछ जातियों में कठोर नियम भी लक्षित होते हैं। सेक्स मानव की आदिम भूख है, सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आदमी ने सेक्स की भूख को दाम्पत्य के भीतर नियंत्रित किया ताकि सामाजिक संबंधों एवं मूल्यों की मूल धारणा को क्षति न पहुँचे।

15) नशापान की समस्या–

नशापान की समस्या कुछ दशकों पहले एक नैतिक समस्या एवं सामाजिक अनुत्तरदायित्त्व का लक्षण समझा जाता था। नशापान यह स्थिति है जिसमें शराब पीने वाला अपने आप पर नियंत्रण खो बैठता है। अपना गम भुलाने के लिए, व्यथा से छुटकारा पाने के लिए कई लोग शराब का आधार लेते हैं। तो कई लोग नशा के आदती बन जाते हैं, कई जनजातियों में विशेषतः आदिम जनजातियों में मेहमान के स्वागत के लिए शराब दी जाती है। आज बदलते नैतिकता के मापदण्डों में भले ही नशापान समस्या न हो परन्तु गरीब, देहाती, शिक्षित, अशिक्षित, नागरी, ग्रामीण, दलित, उठाईगीर, घुमंतु सभी लोगों मंत नशापान एक समस्या

है। अवैध धंधा करने वाले लोग अवैध रूप में शराब, अफीम, चरस बेचते हैं। ग्रामीण लोग, दलित लोग, अशिक्षित लोग उनके शिकार बने हैं। इसका वर्णन 'उचक्का' आत्मकथा में लक्ष्मण जी करते हुए लिखते है। ऐसा की एक बार शराब के नशे में वह चोरी करने गया। जेब काटने के लिए वह बाजार में घूम रहा था। धोती में बड़ी हिफाजत से रखें पैसों को उड़ाने के लिए वह शिकार के पास गया। पर नशे की हालत में ब्लेड गलत जगह लग गया। परिणामत: उस आदमी की जांघ बुरी तरह कट गई। खून बहने लगा। वह आदमी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। तब पुलिस वालों ने दादा को रंगे हाथ पकड़ लिया।

निष्कर्ष–

आत्मकथाओं में चित्रित दलित, गरीब, देहाती, शिक्षित, अशिक्षित, नागरी, ग्रामीण, दलित, उठाईगीर, घुमंतु समाज के जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। अंधविश्वास की समस्या के साथ- साथ भूत-प्रेत, पाप-पुण्य, शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, जड़ी-बूटी संबंधी अधविश्वास, शोषण की समस्या के अंतर्गत जमींदारों द्वारा शोषण, धार्मिक व्यक्ति द्वारा शोषण, सरकारी अफसरों द्वारा शोषण, पुलिस द्वारा शोषण, राजनीतिक नेताओं द्वारा शोषण, नारी शोषण आदि जातीय भेदाभेद की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, अवैध यौन संबंधों की समस्या, नशापान की समस्या आदि समस्याओं पर 'उचक्का' आत्मकथा में लक्ष्मण जी विस्तार के साथ वर्णन करते है।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न–

1. 'उचक्का' (उचल्या) लक्ष्मण गायकवाड़ स्वयं अपनी आत्मकथा को एक .... दस्तावेज़ मानते हैं।

   क) मानसशास्त्रीय   ख) खगोलशास्त्रीय   ग) समाजशास्त्रीय   घ) राज्यशास्त्रीय

2. 'उचल्या' मराठी आत्मकथा का हिंदी में 'उचक्का' शीर्षक से अनुवाद .... ने किया है।

   क) डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे   ख) डॉ. सूर्यनारायण तांबे

   ग) डॉ. सूर्यकुमार रणसुभे   घ) सूर्यकुमार तांबे

3. 'जब कोई महान व्यक्ति अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त विवरण स्वयं लिखता है', तब उसे .... कहा जाता है।

   क) निबंध   ख) संस्मरण   ग) रेखाचित्र   घ) आत्मकथा

4. 'उचल्या'(उचक्का) आत्मकथा में .... की दरिद्रता, उनकी मजबूरी को प्रस्तुत किया है।

   क) किसानों   ख) मीलमजदूरों   ग) उठाईगीरों   घ) चपरासियों

5. अपनी जाति की वजह से लक्ष्मण को लातूर में .... बार कमरा बदलना पड़ा।

   क) 19   ख) 20   ग) 21   घ) 22

6. लक्ष्मण की.............आत्मकथा को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया है।

क) उचक्का　　　ख) दुभंग　　　ग) गोदान　　　घ) जबान

7. 'उचल्या' आत्मकथा सन् 1987 ई. को प्रकाशित हुई।

क) 1984　　　ख) 1985　　　ग) 1986　　　घ) 1987

8. .... की बजाय अठारह साल का बताया और सुतगिरनी के रिंग फ्रेम अकाउंट में नौकरी पा ली।

क) चौदह　　　ख) पंद्रह　　　ग) सोलह　　　घ) सत्रह

9. ....भी लक्ष्मण गायकवाड़ के कंबल के नीचे सोते थे।

क) कुत्ते　　　ख) बकरी　　　ग) बिल्ली　　　घ) बच्चे

10. हरचंदा ने पिटाई सहन की, पर मुंह नहीं खोला इसलिए उसे......... में डाल दिया गया।

क) पुलिस स्टेशन　　　ख) रिमांड होम　　　ग) जेल　　　घ) सुधारगृह

11. एक बार स्कूल में............ की तैयारी चल रही थी। यह दिन स्कूल के लिए खुशी का दिन होता था।

क) ट्रिप　　　ख) स्नेह सम्मेलन　　　ग) 26 जानवरी　　　घ)15 अगस्त

12. .... पुलिस आई है यह सुनकर ही जंगल की ओर भाग गई थी।

क) धोंडाबाई　　　ख) तरसाबाई　　　ग) छबाबाई　　　घ) कमलाबाई

13. .... चिल्लाते हुए घूमने लगा, धनेगाँव का एक लड़का गुम हो गया है।

क) बटरवाला　　　ख) केलेवाला　　　ग) मुनादीवाला　　　घ) बंदरवाला

14. नवेली भाभी लक्षण को............. नाम से बुलाती थी।

क) छोटे रायसाहब　　　ख)छोटे साहब　　　ग) नवाबराय　　　घ) छोटे सरकार

15. ईसव्या नामक गड़रिया के.......... के लोटे को लक्ष्मण ने भ्रष्ट कर दिया था।

क) पीतल　　　ख) मिट्टी　　　ग) तांबे　　　घ) सोने

16. अंजनाबाई चूल्हे पर पतीली चढ़ा कर............. पकाने लगी।

क) गेंहू　　　ख) चावल　　　ग) दाल　　　घ) मूंग

17. मजदूरों की दृष्टि से........... का कोई फायदा नहीं था।

क) मोर्चे   ख) हड़ताल   ग) अनशन   घ) तोडफोड़

18. .... और.............जगताप को एक दिन मैनेजमेंट ने बुला लिया और कहा कि हम तुम दोनों को और अन्य कुछ मजदूरों को काम पर ले लेते हैं।

क) रामलिंग, शामलिंग   ख) रामलिंग, सुरेश   ग) सुरेश, शामलिंग   घ) शामलिंग, रमेश

19. दो -तीन कार्यकर्ताओं को साथ लिए लक्ष्मण खुद............ उम्मीदवार के यहां पहुंचा।

क) शिवसेना   ख) राष्ट्रवादी   ग) भाजपा   घ)कांग्रेस

20. लक्ष्मण को कारखाने में .... का शोषण नज़र आया।

क) औरतों   ख) बालकों   ग) किसानों   घ)मजदूरों

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

घुमंतू – घुमंतू ऐसे लोग होते हैं जो किसी एक जगह टिक कर नहीं रहते बल्कि रोज़ी-रोटी के जुगाड़ में यहाँ से वहाँ घूमते रहते है्।

छात्रावास- जहां पर बहुत सारे विद्यार्थी निवास करते हो उसे छात्रावास कहा जाता है।

हड़ताल- औद्योगिक संस्थान में कार्य करनेवाले कारीगरों द्वारा सामूहिक रूप से कार्य बंद करने अथवा कार्य करने से इनकार करने की कार्यवाही को हड़ताल कहा जाता है।

अनशन – आहार त्याग; उपवास। भूख-हड़ताल।

परडियां – बांबू की कड़ियों से बनी छोटी सी गोल टोकरी

मिलो – बहुत हल्के दर्ज की ज्वार का एक प्रकार

जोगवा – महाराष्ट्र में देवी की आराध्य के प्रति मंगलवार और शुक्रवार घर-घर देवी के नाम पर भिक्षा मांगती हैं, उसे जोगवा कहते है्।

तुमड़ी – वैदू के पास की एक विशिष्ट वास्तु, इससे वे फोड़े को फोड़कर भीतरी पीप को मुंह से खींचकर बाहर निकलते है्।

रूकवत – विवाह के तुरंत बाद वधू – पक्ष की ओर से वर – पक्ष को जो वस्तुएं भेंट रूप में दी जाती है्।

गोंधल – मातृसत्ताक पद्धति का विशेष कर्मकांड

पारधी – एक जनजाति का नाम

लमान – एक विमुक्त जनजाति

मसानजोगी – एक जनजाति, ये श्मशान भूमि के आसपास रहते हैं, दरिद्रता उनकी विशेषता है।

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1. समाजशास्त्रीय	2. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे	3. आत्मकथा	4. उठाईगीरों
5. 19	6. उचक्का	7.1987	8. सोलह
9. कुत्ते	10. रिमांड होम	11. 15 अगस्त	12.धोंडाबाई
13. छोटे रायसाहब	14. छोटे रायसाहब	15. पीतल	16. दाल
17. हड़ताल	18. रामलिंग, सुरेश	19. कांग्रेस	20. मजदूरों

3.7 सारांश

1) सबसे ज्यादा पीड़ित घुमंतू जातियां हैं। गैरकानूनी घोषित किए जाने के बावजूद घुमंतू जातियां अस्पृश्यता और अन्य प्रकार के भेदभाव का शिकार हैं।

2) लक्ष्मण गायकवाड़ के माध्यम से मुक्ति के लिए घुमंतू जातियों में बढ़ती चेतना का जवाब क्रूर उत्पीड़न और अत्याचारों से दिया जा रहा है।

3) 'उचक्का' आत्मकथा में चित्रित घुमंतू जनजातियाँ अब भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से हाशिये पर मौजूद हैं और इसमें से कई जनजातियाँ अपने मूल मानवाधिकारों से भी वंचित हैं।

4) 'उचक्का' आत्मकथा में चित्रित घुमंतू समुदायों के सदस्यों के पास पेयजल, आश्रय और स्वच्छता आदि संबंधी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इसके अलावा ये स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा जैसी सुविधाओं से वंचित रहते हैं।

5) विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों के संबंध में प्रचलित गलत और अपराधिक धारणाओं के कारण आज भी उन्हें स्थानीय प्रशासन और पुलिस द्वारा प्रताड़ित किया जाता है।

6) चूँकि इन समुदायों के लोग प्रायः यात्रा पर रहते हैं, इसलिये इनका कोई स्थायी ठिकाना नहीं होता है। उनके पास सामाजिक सुरक्षा कवर का अभाव होता है और उन्हें राशन कार्ड, आधार कार्ड आदि भी नहीं जारी किया जाता है।

7) 'उचक्का' आत्मकथा में विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों के बच्चों के बीच शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता को उजागर किया है।

8) विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू जनजातियाँ वे हैं, जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किये गए आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत पूरी आबादी को जन्म से अपराधी घोषित कर दिया गया था।

9) घुमंतू और विमुक्त जनजातियां भेदभाव, अन्याय और विकास योजनाओं के अभाव का सामना करती हैं। इन समुदायों के मानसिक स्वास्थ्य को इनके संघर्ष से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

10) आज भी विमुक्त जनजातियों के ख़िलाफ़ गलत मामले बनाए जाते हैं तो वे चोरी, ठगी और डकैती के होते हैं। यह उनके अपराध से जोड़ दिए गए अतीत की याद दिलाने जैसा होता है।

3.8 स्वाध्याय

※ दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. 'उचक्का' (उचल्या) आत्मकथा की कथावस्तु लिखिए।
2. 'उचक्का' (उचल्या) आत्मकथा में चित्रित समस्याएं लिखिए?
3. समाजशास्त्रीय दृष्टि से 'उचक्का' (उचल्या) आत्मकथा की समीक्षा कीजिए।
4. 'उचक्का' (उचल्या) आत्मकथा के लक्ष्मण गायकवाड़ का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व स्पष्ट कीजिए।
5. 'उचक्का' (उचल्या)आत्मकथा में चित्रित जातियता का चित्रण कीजिए।

3.9 क्षेत्रीय कार्य

1) 'सिंहावलोकन' और 'उचक्का' आत्मकथा की तुलना कीजिए।
2) उचल्या(मराठी)लक्ष्मण गायकवाड़ को पढ़े।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. आप बीती - भाई परमानंद
2. मेरी जीवन यात्रा - राहुल सांकृत्यायन
3. उपरा - लक्ष्मण माने
4. बलुत - दया पवार
5. अर्द्धकथा - बनारसीदास जैन
6. मेरी फिल्मी आत्मकथा - बलराज साहनी
7. मेरा जीवन - शिव पूजन सहाय
8. आत्म परिचय - फणीश्वरनाथ रेणु

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न**

    1. उचक्का आत्मकथा को ....पुरस्कार से सम्मनित किया गया है।

       अ. राज्य विशेष गुणवत्ता   ब. साहित्य अकादमी

क. भारत भूषण	ड. ज्ञानपीठ

2. उचक्का आत्मकथा में मूल कथाबीज में....... स्वर प्रधान है।

अ. स्त्री जीवन	ब. उठाईगिर	क. किसान	ड. रेल मजदूर

3. उचक्का आत्मकथा .... का दस्तावेज माना जाता है।

अ. समाजशास्त्रीय	ब. राज्यशास्त्रीय	क. शैक्षिक	ड. धर्म

4. हरचंदा को ......भर्ती किया जाता है।

अ. पुलिस थाना	ब. जेल	क. रिमांड होम	ड. मिलीटरी

5. ....बाई चुले पर पतीली चढाकर दाल पकाने लगी थी।

अ. रंजना	ब. कमला	क. अंजना	ड. विमला

उत्तर –

1. ब	2. ब	3. अ	4. क	5. क

2. **उचित मिलान कीजिए।**

1. गोंधळ	अ. मजदूर
2. लक्ष्मण गायकवाड	ब. हडताल
3. नवेली भाभी लक्ष्मण की	क. छोटे रायसाहब
4. मजदूर मांग	ड. कांग्रेसी कार्यकता
5. कारखाना शोषण	इ. मातृसत्ताक पध्दति

उचित मिलान उत्तर

1-इ,	2-ड,	3-क,	4-अ,	5-ब

❑❑❑

इकाई 4
'मेरी आवाज़ सुनो' – कैफी आज़मी

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन–

4.3.1 कैफी आज़मी जीवन परिचय, व्यक्तित्त्व, कृतित्त्व

4.3.2 गीतकार कैफी आज़मी, 'मेरी आवाज सुनो' परिचय

4.3.3 'मेरी आवाज सुनो' भावपक्ष और कलापक्ष

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्दार्थ

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- कैफी आज़मी के व्यक्तित्त्व से परिचित होंगे।
- कैफी आज़मी के गीतों की विशेषताओं से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य में उर्दू गीतकार के रूप में कैफी आज़मी को समझ पाएँगे।
- कैफी आज़मी के कृतित्त्व से परिचित होंगे।
- कैफी आज़मी के गीतों में साहित्यिकता को समझ पाएँगे।
- गीतकार के रूप में कैफी आज़मी के गीतों की मौलिकता को समझ पाएँगे।
- 'मेरी आवाज़ सुनो' के विषय वैविध्य को समझ पाएँगे।

4.1 प्रस्तावना

भारतीय सिनेमा जगत् में फिल्मी गीतों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। विशेषतः हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार में हिंदी फिल्मी गीतों का महत्त्वपूर्ण हाथ है। ये गीत दर्शक और श्रोताओं के कंठमाल बन चुके हैं। हिंदीतर प्रदेशों में भी इनकी ख्याति है। सौभाग्य से हिंदी सिनेमा के शुरुआती दौर में जो गीतकार थे वे मूलतः प्रतिभावान शायर या कवि थे। फिल्मी गीत फिल्मों की कहानी को आगे बढाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ऐसे में प्रसंगोचित गीत लिखने में बढ़ते कवि-गीतकार की प्रतिभा की कसौटी होती है। पुराने फिल्मों के दौर में मजरूह सुल्तानपुरी, जाँ निसार अख्तर, नक्श लायलपुरी, शैलेन्द्र, हसरत जयपुरी कवि प्रदीप, भरत व्यास जैसे गीतकारों ने गीत लेखन के क्षेत्र में बहुत बडा योगदान दिया है। इन्हीं गीतकारों में कैफी आज़मी का नाम अहम है। कैफी आज़मी मुलतः सशक्त शायर हैं। शुरुआती दौर में आर्थिक विवशताओं के कारण उन्होंने गीत लिखना आरंभ किया। 'कागज के फूल', 'हकीकत', 'हँसते ज़ख्म', 'हीर रांझा', 'अर्थ' जैसी फिल्मों के गीतों में कैफी आज़मी के कलम का जादू देखा जा सकता है। 'मेरी आवाज़ सुनो' कैफी आज़मी के फिल्मी गीतों का संकलन है। प्रस्तुत संकलन में प्रकाशित गीतों में कैफी आज़मी की प्रतिभा का चमत्कार देखा जा सकता है।

4.3 विषय-विवेचन

4.3.1 कैफी आज़मी : जीवन परिचय

हिंदी फिल्मी गीतकारों में कैफी आज़मी एक अग्रणी गीतकार हैं। कैफी आज़मी उर्दू के श्रेष्ठ शायर भी रहे हैं। 'मेरी आवाज सुनो' पुस्तक का अनुशीलन करने से पहले उनके जीवन-चरित व्यक्तित्त्व-कृतित्व से परिचित होना सुविधाजनक होगा। अतः हम निम्नलिखित पंक्तियों में कैफी आज़मी का जीवन-चरित, व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व को संक्षेप में देखने का प्रयास करेंगे।

जन्म स्थान

कैफी आज़मी का जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ जिले के फूलपुर तहसील के मिज़वाँ गाँव में हुआ।

जन्मतिथि –

कैफी आज़मी की जन्मतिथि के बारे में मतभिन्नता है। कई स्थानों पर उनकी जन्मतिथि अलग- अलग है परंतु उनके नाम पर आंतरजाल पर बनी .. वेबसाईट पर दि. 14 जनवरी सन् 1919 ई. जन्मतिथि बताई गई है। अब यही तिथि प्रमाणित मानी जाती है।

पूरा नाम –

कैफी आज़मी का पूरा नाम 'अतहर हुसैन रिज़वी' है। आगे जब उन्होंने शायरी लिखने की शुरुआत की तो उन्होंने 'कैफी आज़मी' नाम धारण किया, जो पूरी दुनिया में मशहूर हो गया है। इनके पिता का नाम सैयद फतह हुसैन रिज़वी था और माता का नाम कनिज़ फातमा था। कैफी अपने माता-पिता की चौथी संतान थे।

पिताजी गाँव के जमींदार थे। आगे चलकर वे लखनऊ चले आए और उन्हें अवध के बनहरी प्रान्त में तहसीलदारी की नौकरी मिल गई।

शिक्षा–दीक्षा –

कैफी आज़मी के माता, पिता ने निर्णय लिया कि कैफी को दीनी तालीम (धार्मिक शिक्षा) दिलाई जाए। कैफी जी का दाखिला लखनऊ के एक शिया मदरसा सुल्तानुल मदारीस में कर दिया गया। मदरसे की अव्यवस्था को लेकर कैफी जी ने छात्रों की यूनियन बना कर अपनी माँगों के लिए हड़ताल शुरू की। डेढ़ वर्ष तक सुल्तानुल मदारीस बंद कर दिया गया। सुल्तानुल मदारीस से कैफी जी और उनके कुछ साथी निकल दिए गए। बावजूद इसके कैफी जी ने पढ़ना बन्द नहीं किया। प्राइवेट परीक्षा में बैठते हुए फारसी भाषा को अवगत किया और मुंशी कमिल की डिग्री हासिल कर ली।

विवाह एवं परिवार –

कैफी जी बाकायदा कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे और मुंबई में कम्युनिस्टों के कम्यून में रहते थे। प्रगतिशील आंदोलन के वे सक्रिय कार्यकर्ता थे। सन् 1947 ई. में हैदराबाद के एक मुशायरे के कार्यक्रम के बाद शौकत खान नाम की एक लड़की के साथ उनकी पहचान हुई। पहला प्रेम में रूपांतरित हुई। कैफी शिया थे तो शौकत सुन्नी। दोनों के घर से विवाह की अनुमति नहीं थी। परंतु शौकत ने कैफीजी से ही विवाह करना ठान लिया था। शौकत के पिताजी शौकत को लेकर मुंबई आ गए और उन्होंने कैफी जी जहाँ रहते थे वह कम्यून और उनकी तंगहाली दिखाई। फिर भी जब शौकत का निर्णय नहीं बदला। प्रोगेसिव राइटर्स एसोसिएशन के संस्थापक सज्जाद ज़हीर के ड्राइंग रूम में मुंबई में कैफी और शौकत का विवाह हुआ और वे जीवनसाथी बन गए। कैफीजी के घर में पहले एक बेटी और फिर एक बेटे ने जन्म लिया। बेटी शबाना आज़मी हिंदी फिल्मों की समर्थ और सफल अभिनेत्री के रूप में सुविख्यात है और बेटे बाबा आज़मी फिल्म इंडस्ट्री में सिनेमाटोग्राफर हैं।

मित्र–परिवार –

मुंबई में इप्टा (इंडियन पीपुल्स थियेटर) के दिनों में उनके कई अभिन्न मित्र थे जो बाद में बहुत बड़े और नामी कलाकार के रूप में जाने गए। होमी भाभा, कृष्ण चंदर, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी, बलराज साहनी, इस्मत चुगताई, हेमंत कुमार, शैलेन्द्र, सलिल चौधरी जैसे कम्युनिस्ट इनके मित्र थे। ये सारे मित्र कम्युनिस्ट थे। सर्वहारा और मजदूरों के हित में छेडे गए तरह–तरह के आंदोलन में सम्मिलित थे।

जीवन–दर्शन –

कैफी आज़मी अपने कविकर्म के साथ–साथ कम्युनिस्ट पार्टी के एक कुशल संगठनकर्ता थे साथ ही वे मजदूर सभा, ट्रेड युनियन में भी काम करते थे। कैफी एक पुख़्ता कामरेड थे और जीवन के अंतिम समय तक कम्युनिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर बने रहे। कैफी लाल कार्ड हमेशा सीने से लगाए रखते थे। इसी प्रगतिशील विचारधारा से उनका जीवन–दर्शन पनपा है। इसीकारण अन्याय के विरोध में आवाज़ उठाना, प्रतिरोध करना

यह एक बागी के गुण उनके व्यक्तित्त्व में थे। उन्होंने अपनी कविता में हिंदू–मुसलमान, गरीब–अमीर के बराबरी की बात की, औरत–मर्द के बराबरी की बात की। इस बात को वे अपनी कविता के द्वारा लोगों तक लगातार पहुँचाते रहे। फिल्मों के लिए लिखे गीतों में भी अवसर मिलनेपर अपने प्रगतिशील जीवन–दर्शन का रंग बिखेरा। वे मुहब्बत के गीतकार थे तो क्रांति के शायर भी थे।

स्वर्गवास –

कैफी जी सन् 1973 ई. में लकवाग्रस्त हो गए थे। अपनी विकलांगता के बावजूद वे कम्युनिस्ट पार्टी की सभा–समारोह, इप्टा और प्रलेस (प्रगतिशील लेखक संघ) की संगोष्ठियाँ और मुशायरे में हमेशा उपस्थित रहे। 10 मई 2002 में कैफी जी का स्वर्गवास हुआ।

कृतित्व –

कैफी जी प्रतिभासंपन्न शायर थे। उन्होंने 11 वर्ष की अवस्था में पहली ग़ज़ल कही थी। एक मुशायरें में बालक कैफी ने एक शेर कहा था, जिसपर सुननेवालों ने आशंका व्यक्त की कि यह शेर कैफी का न होकर किसी दूसरे का है। खुद पिताजी का भी विश्वास न था। कैफी की परीक्षा लेने की तरकीब सूझी। कैफी के बडे भाई शब्बीर के मुंशी शौक बहराईची ने कैफी को मिसरा (शेर की एक पंक्ति) दिया और उसपर ग़ज़ल कहने को कहा। वह मिसरा था – 'हँसने से हो सुकून, न रोने से कल पडे'। 11 वर्ष के बालक कैफी ने थोड़ा समय लिया और ग़ज़ल कही

'इतना तो जिंदगी में किसी की खलल पड़े
हँसने से हो सुकून, न रोने से कल पड़े
जिस तरह हँस रहा हूँ मैं पी–पीके गर्म अश्क
यूँ दूसरा हँसे तो कलेजा निकल पड़े
मुद्दत के बाद उसने की तो लुत्फ की निगाह
जी खुश तो हो गया मगर आंसू निकल पड़े।'

कैफी की प्रतिभा पर सुननेवाले आश्चर्य–चकित हो गए। यह कैफी की साहित्य रचना का आरंभ बिंदु है। आगे चलकर विश्व सुविख्यात ग़ज़ल गायिका बेगम अख्तर ने इस ग़ज़ल को संगीत में बाँधकर खुद गाया।

कैफी जी के कुल तीन कविता संकलन हैं और फिल्मों के लिए लिखे गीतों का 'मेरी आवाज सुनो' संकलन भी है।

झंकार (सन् 1943 ई.) –

'झंकार' कैफी जी का पहिला काव्य संग्रह है। सन् 1933 ई. से लेकर सन् 1943-44 ई. इस कालखंड में कैफी जी लखनऊ और कानपुर में रहे थे। प्रस्तुत कविता संग्रह इसी कालखंड में कैफी जी के

जीवनानुभव, बेकारी, संघर्ष, आशा जैसे काव्यानुभव से ओतप्रोत हैं। कविता संग्रह में कुछ कविताएं रोमँटिक हैं तो कुछ प्रगतिवादी विचारधारा के प्रभाव से उभरी कविताएँ क्रांतिकारी हैं।

आखिर–ए–शब (सन् 1947 **ई.) –**

'आखिर–ए–शब' कैफी जी का दूसरा कविता संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं से ज्ञात होता है कि कैफी जी जीवन के सुंदरता की तलाश में हैं। साथ ही समाज में चलती आ रही बासी रुढियाँ और शोषण की कुरुपता को समाप्त करने के लिए आग्रही भी हैं। समाज के हर स्तर पर बदलाव के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। प्रस्तुत संग्रह में विशुद्ध रोमँटिक कविताएँ संख्या में अधिक हैं। लेकिन बाकी कविताओं में उनकी प्रगतिवादी सोच भी दिखाई देती है। यहाँ कैफी जी की समाज के प्रति जिम्मेवारियों की आँच तेज होती हुई परिलक्षित होती है।

'आवारा सज्दे' (सन् 1974 **ई.) –**

'आखिर–ए–शब' के बाद पूरे सत्ताइस वर्षों के बाद 'आवारा–सज्दे' कविता संग्रह प्रकाशित हुआ। आज़ादी के बाद छब्बीस–सत्ताइस वर्षों का लेखा जोखा संग्रह में आया है। ढाई दशक के लंबे कालखंड में कैफी जी के अनुभव, बहुआयामी परिवर्तन, रुमानियत और इन्कलाबी विचारों में की प्रौढ़ता और आशा के बल पर दुनिया को बदलने का प्रयास प्रस्तुत कविता संग्रह में अभिव्यक्त हुए हैं। प्रस्तुत संग्रह की भूमिका हिंदी के, श्रेष्ठ कवि शमशेर बहादुर सिंह जी ने लिखी है। इस संग्रह के लिए कैफी जी को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ है।

'मेरी आवाज सुनो' (सन् 2002 **ई.) –**

'मेरी आवाज सुनो' कैफी जी के फिल्मों के लिए लिखे गीतों का संकलन है। कैफी जी के गीत आज भी श्रोताओं को याद हैं। इस संकलन से कैफी जी के श्रेष्ठ शायर के साथ–साथ श्रेष्ठ गीतकार का रुप भी उभरता है।

पुरस्कार एवं सम्मान –

कैफी जी को कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित किया गया था। कैफी जी को मिले पुरस्कारों को तीन विभागों विभाजित किया जा सकता है

फिल्म संबंधी सम्मान –

1970 : सात हिंदुस्तानी फिल्म के गीत के लिए राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार।

1973 : 'गर्म हवा' फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ कहानी राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार।

1975 : 'गर्म हवा' फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ संवाद, सर्वश्रेष्ठ कहानी, सर्वश्रेष्ठ पटकथा ऐसे तीन फिल्मफेअर पुरस्कार मिले।

साहित्य संबंधी सम्मान –

1975 : 'आवारा सजदे' कविता संकलन के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार।'

2002 : साहित्य अकादमी फैलोशिप।

अन्य महत्त्वपूर्ण सम्मान –

- ✻ सन् 1974 ई. में देश के सबसे बडे पुरस्कार 'पद्मश्री' से सम्मानित।
- ✻ उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी पुरस्कार।
- ✻ महाराष्ट्र उर्दू अकादमी पुरस्कार।
- ✻ सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड।
- ✻ एफ्रो एशियन राइटर्स एसोशिएशन की ओर से लोटस अवार्ड।
- ✻ राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार।
- ✻ सन् 1998 ई. में महाराष्ट्र सरकार द्वारा संत ज्ञानेश्वर पुरस्कार से सम्मानित।
- ✻ पूर्वांचल विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय और शांति निकेतन की विश्वभारती से डॉक्टरेट उपाधि।
- ✻ दिल्ली सरकार और दिल्ली उर्दू अकादमी का पहला मिलेनियम पुरस्कार। साथ ही उनके मिजवाँ गाँव को जानेवाली सड़क का नाम 'कैफी आज़मी रोड' है। सुल्तानपुर-फूलपुर हाइवे का नाम 'कैफी आज़मी हाइवे' है। दिल्ली से आज़मगढ ट्रेन का नाम 'कैफियत एक्सप्रेस' है। मुंबई के जुहू में 'कैफी आज़मी पार्क' है। दिल्ली में आर के पुरम के पास 'कैफी आज़मी रोड' है।

अपने साहित्य, गीत-लेखन और सामाजिक कार्यों के कारण कैफी आज़मी इतने सारे पुरस्कारों से सम्मानित हुए।

कैफी आज़मी : व्यक्तित्व –

कैफी आज़मी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। निम्न बिंदुओं से उनके व्यक्तित्व को समझा जा सकता है।

विद्रोही व्यक्तित्व –

कैफी आज़मी बचपन से विद्रोही थे। बचपन में सुलतानुल मदारिस जिस मदरसे में वह पढ़ते थे वहाँ थे वहाँ की अववस्था को देखकर उन्होंने सारे छात्रों की यूनियन बनाई और मदरसे के दरवाजे पर धरना दिया। ब्रिटिश हुकूमत में विदेशी कपड़ों की होली करने के कारण उनको पकड़ा गया था। सिर्फ 10 वर्ष की आयु होने के कारण पुलिस ने उन्हें जेल में बंद नहीं किया परंतु पीटकर घर भेजा। भारत में जब-जब समानता के

विरोध में, बंधुता के विरोध में घटनाएँ घटित हुई तब उन्होंने अपनी कलम से विद्रोह प्रकट किया। उनकी 'दूसरा वनवास', 'मकान', 'सोमनाथ', 'औरत' कविताएँ इसी बात की साक्ष्य हैं।

गंगा–जमनी तहजीब के पक्षधर –

जहाँ हिंदू और मुसलमानों में भाईचारा हो, शांतिपूर्ण मित्रता की मिलीजुली विरासत हो ऐसी संस्कृति को गंगा–जमनी तहजीब कहा जाता है। कैफी जी हिंदू और मुसलमानों में होनेवाले दंगों से व्यथित हुआ करते थे। इन दोनों धर्मों के लोगों के प्रति उन्हें फिक्र थी। जाति–धर्मों के पार वह मनुष्य को देखना चाहते थे

'बस्ती में अपनी हिंदू मुसलमाँ जो बस गए
इन्सान की शक्ल देखने को हम तरस गए'

कैफी जी को किसी धर्म से परहेज नहीं था। उन्होंने इसाई धर्म पर बनी सिरीअल के भी गीत लिखे। उनकी कविताओं, गीतों में भी हिंदू पुराणों के संदर्भ मिलते हैं। कैफी आज़मी मुसलमान थे परंतु उनके घर का नाम था – 'जानकी कुटीर'। गंगा–जमनी तहजीब का इससे सुंदर उदाहरण नहीं मिलेगा।

कट्टर और सक्रिय साम्यवादी –

कैफी जी बचपन से ही प्रगतिशील आंदोलन और विचारधारा से प्रभावित थे। 'प्रगतिशील लेखक संघ' के 'अंगारे' कहानी संग्रह को पढ़कर और लखनऊ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन के अध्यक्ष प्रेमचंद के 'साहित्य का उद्देश्य' वक्तव्य सुनकर कैफी जी अभिभूत हुए थे। उन्होंने अपनी शायरी में भी अपने समाज की हालत, गरीब, जरूरतमंद लोगों के दुःख के बारे में भरपूर लेखन किया है। उन्होंने सांप्रदायिकता, कट्टरवाद और महिलाओं के अधिकारों पर भी लिखा। कैफी जी इंडियन पीपुल्स थिएटर असोसिएशन (इप्टा) के अखिल भारतीय अध्यक्ष और प्रोग्रेसिव राइटर्स असोसिएशन (पीडब्ल्यूए) के एक्टिव मेंबर थे।

कैफी की प्रगतिशीलता सिर्फ शायरी लिखने तक सीमित नहीं थी। वह जहाँ रहते थे उस मदनपुरा में वह फुटपाथपर बैठकर मजदूरों से बात करके उनकी समस्याओं को जान लेते थे। उन्होंने टेक्सटाईल वर्कर्स, शू–वर्कर्स, बीडी मजदूरों की यूनियन बनाई और उनके हक के लिए लडे।

जन्मभूमि के प्रेमी –

मुंबई में रहने के बावजूद कैफी जी का मन हमेशा अपने गाँव मिजवाँ में लगा होता था। गाँव के पिछडेपन को देखकर कैफी जी ने विकास के कुछ कदम उठाए। फूलपुर से मिजवाँ तक पक्की सड़क बनवाई। सरकार के आदेश पर फूलपुर रेल स्टेशन यह कह कर तोड़ा जा रहा था कि यहाँ स्टेशन की जरूरत नहीं। पटरियाँ उखाडी जा रही थी तब कैफी जी अपने व्हीलचेअर के पटरियों के बीच जाकर बैठ गए। उनके आंदोलन से फूलपुर रेल लाईन कायम रही। फूलपुर के लिए उन्होने 'ब्रॉडगेज' लाईन की माँग की, वह मंजूर भी हो गई मगर दिक्कत यह थी कि एक भी एक्सप्रेस फूलपुर में रुकती नहीं थी। कैफी जी के प्रयास से गोरखपुर से मुंबई जानेवाली 'गोदान एक्सप्रेस' फुलपूर में रूकने लगी। शिक्षा से दूर लड़कियों के लिए

पाठशाला खोली जो आज 'कैफी आज़मी कन्या इंटर कॉलेज' नाम से प्रगतिपथ पर है। कैफी जी ने 'मिज़वाँ वेल्फेअर सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की जहाँ महिलाओं को सिलाई-बुनाई का काम सिखाने की सुविधा उपलब्ध कराई जिससे वह आत्मनिर्भर हो गई। मिजवाँ के कॉलेज में कम्प्युटर शिक्षा के लिए सरकारी फंड से सात लाख रुपये प्राप्त करके क्लासरूम भी बनाए। कम्प्यूटर सिखाने के लिए जौनपुर के अध्यापकों को नियुक्त किया। कैफी जी अपनी जन्मभूमि के सच्चे सपूत है जिससे उन्होंने अपने जन्म-स्थान मिजवाँ का कायाकल्प कर दिया।

आदर्श पिता

कैफी जी ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को खुला आसमान प्रदान किया था। उनके बेटे बाबा आज़मी एक सफल सिनेमाटोग्राफर हैं। बेटी शबाना आज़मी नामचीन व्यक्तित्त्व हैं। अपने सशक्त अभिनय से उन्होंने फिल्म जगत् में खूब नाम कमाया है। उनको अभिनय के लिए कई पुरस्कार मिले हैं। वह संसद सदस्य रही है। अभिनय के साथ सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में बहुत सारा काम भी किया है। उनको पाँच बार राष्ट्रीय तथा पाँच बार फिल्मफेअर पुरस्कार मिला है। 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' पुरस्कार से सम्मानित शबानाजी को सामाजिक कार्यों के लिए भी कई राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किए हैं। महिलाओं के अधिकारों, समानता के लिए उनकी लड़ाई को पुरस्कारों से रेखांकित किया गया है। इन्होंने अपने एम. पी. फंड से पैसे देकर आज़मगढ के 'शिब्ली कॉलेज' में पढनेवाली लड़कियों के लिए 'गर्ल्स होस्टल' बनवाया। मिजवाँ कॉलेज में कम्प्युटर क्लासरूम बनने के बाद शबानाजी ने फिर से अपने फंड से दस कंप्यूटर दिए।

कैफीजी का कवि व्याक्तित्त्व और जीवन एक दूसरे से विपरीत नहीं था। उन्होंने समानता के लिए 'औरत' कविता लिखी। अपने खुले विचारों के साथ बेटों को खुला आसमान प्रदान किया। उनका यह गुण अनुकरणीय हैं।

गीतकार कैफी आज़मी –

आज़ादी के बाद कम्युनिस्ट दल पर प्रतिबंध लग गया था। तब कैफीजी अपने साथियों के साथ अंडरग्राउंड थे। उनकी पत्नी उस समय हैदराबाद में थी और वह गर्भवती थी। कैफीजी के पास काम भी नहीं था और पैसा भी। अपने अंडरग्राउंड होने के दिनों में वे कई बार उर्दू की श्रेष्ठ लेखिका इस्मत चुगताई के घर में रहे थे। उनके पति शाहिद लतीफ फिल्म निर्माता और निर्देशक थे। दोनों को कैफीजी के प्रति आत्मीयता थी। कम्युनिस्ट पार्टी से सिर्फ 40 रुपये मिलते थे। वह भी बंद हो गए थे। ऐसी परिस्थिति में लतीफजी ने कैफीजी को अपने 'बुजदिल' फिल्म में गीत लिखने के लिए पूछा। इससे पहले कैफीजी मेहबूब कारदार जैसे बड़े निर्माताओं को भी गीत लिखने के लिए ना बोल चुके थे। उस समय भी गीत का संगीत तैयार रहता था और उसपर बोल लिखने पड़ते थे। कैफीजी ने शाहिदजी से कहा 'यह काम तो, पहले कब्र खोदना, फिर उसमें मुरदा सही ढंग से गाढ देना ऐसा है, क्या में यह कर पाऊंगा?' शाहिद जी ने कैफीजी का हौसला बढ़ाया। कैफीजी ने 'बुजदिल' में 'रोते रोते गुजर गई रात रे', और 'मझधार में कश्ती डूब गई' दो गीत

लिखे। 'रोते रोते गुजर गई रात रे' गीत मशहूर हुआ। दो गीतों के लिए मिले एक हजार रुपये कैफीजी ने अपनी पत्नी को भेज दिए। इस प्रकार अर्थार्जन के लिए कैफीजी की गीतकार की यात्रा आरंभ हुई।

'मेरी आवाज़ सुनो' –

'मेरी आवाज़ सुनो' कैफीजी के फिल्मी गीतों का संकलन है। प्रस्तुत संकलन में कैफीजी ने सन् 1951 ई. से सन् 1997 ई. इस कार्यकाल में 81 फिल्मों में लिखे हुए 240 गीत समाहित हैं। यह संकलन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सन् 2002 ई. में प्रकाशित हुआ है। कैफीजी ने फिल्मों की कहानी के अनुसार गीत लिखे हैं। जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा, तीज-त्यौहार सभी अंगों पर आवश्यकता के लिए हुए गीत 'मेरी आवाज़ सुनो' में मिलते हैं। इन गीतों को मदन मोहन, एस. डी. बर्मन, ओ. पी. नय्यर, हेमंत कुमार, शंकर-जयकिशन, बप्पी लाहिरी से लेकर अन्नु मलिक तक के नामचीन संगीतकारों ने संगीत दिया है तो लता मंगेशकर, मोहम्मद रफी, तलत महमूद, मुकेश जगजीत सिंग जैसे सुरीले कंठ के गायकों ने गाया है। कैफी जी के फिल्मी गीत फिल्म संगीत की अमूल्य निधि हैं।

'मेरी आवाज सुनो' : भावपक्ष

कैफी जी बहुमुखी प्रतिभा के श्रेष्ठ कवि और गीतकार थे। विशेषत: 'मेरी आवाज सुनो' के गीतों में श्रेष्ठ गीतों के सारी विशेषताएँ दिखाई देती हैं। उनके गीत आज भी श्रोताओं की स्मृतिओं में बसे हुए हैं। कैफी जी के गीतों में उपलब्ध होनेवाली भावपक्ष और कलापक्ष की विशेषताएँ नम्नलिखित हैं।

साहित्यिकता से प्रचूर गीत –

कैफी आज़मी मूलत: उर्दू के श्रेष्ठ कवि थे। आर्थिक विवशता के कारण उन्होंने फिल्मों में गीत लिखना आरंभ किया। गीत लेखन में भी उन्होंने साहित्यिकता को अनदेखा नहीं किया। कैफी जी के गीतों में कहीं भी फूहड़ता दिखाई नहीं देती। उनके लिखे फिल्मी गीत उच्चकोटि की कविता है। धुनों पर गीत लिखने की आवश्यकता पर भी उन्होंने साहित्यिकता से समझौता नहीं किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उनके कविता संकलन 'आवारा सज्दे' की दो कविताएँ फिल्म 'हकीकत' में गीत बनी। 'मैं यह सोचकर उसके दर से उठा था' यह गीत मूलतः कविता है, जिसका शीर्षक है – 'पशेमानी' और 'होके मजबूर मुझे उसने बुलाया होगा' गीत भी मूलत: उनकी कविता है, जिसका शीर्षक है – 'अंदेशे'। 'मेरी आवाज सुनो' के गीत असल में गीतों में छिपी हुई कविताएँ है।

जीवन-दर्शन

कैफी जी ने अपने जीवन के अनुभवों को गीतों में ढाला है। इन अनुभवों के आधार पर ही उनका जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है।

'नादान तमन्ना रेती में, उम्मीद की कश्ती खेती है
एक हाथ से देती है दुनिया, सौ हाथों से ले लेती है

ये खेल है कबसे जारी, बिछडे सभी बारी–बारी'

किसी के गुजर जाने से दुनिया रुकती नहीं। जीवनक्रम निरंतर कायम रहता है।

'बदल जाए अगर माली, चमन होता नहीं खाली

बहारें फिर भी आती हैं, बहारें फिर भी आएँगी'

कैफी जी बहुश्रुत और बहुपठित थे। एक गीत में उन्होंने 'भगवतगीता' के दर्शन का सहारा लिया है

'पाप क्या, पुण्य क्या, तू भुला दे

कर्म कर, फल की चिंता मिटा दे

ये परीक्षा न होगी दुबारा

ढूँढता है तू किसका सहारा'

इसी प्रकार जीवन की क्षणभंगुरता को एक गीत में अभिव्यक्त किया गया है

'सब ठाठ पडा रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा

धन तेरे काम न आएगा, जब लाद चलेगा बंजारा'

भक्ति भावना

कैफी जी धर्म से मुसलमान होने से अधिक इन्सान थे। वे इन्सान और इन्सानियत की तलाश में रहते थे। फिल्मों में किसी हिंदू घर में प्रार्थना के रूप में गीत लिखते समय उनकी कलम उतनी ही सहजता से प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है

'घनश्याम, घनश्याम, श्याम रे

बंसी की तान सुना, बने मेरा काम रे'

इस गीत में हिंदुओं के पुराणों के संदर्भ कैफी जी की समन्वयता की भावना को उजागर करते हैं।

स्त्री–मन की भाव विविधता

कैफीजी के फिल्मी गीतों में प्रसंगानुकूल अवसर पर फिल्म की नायिका के मन के विविध भावों का चित्रण मिलता है। नायिका के प्रेमिका, विरहिणी जैसे रूपों पर उनके कई गीत मिलते हैं। 'रोते–रोते गुज़र गई रात रे' यह 'बुजदिल' फिल्म के लिए लिखा हुआ उनका पहला गीत है। इस गीत में नायिका के विरह आकुल मन की व्यथा मिलती है। यहाँ कुछ गीत फिल्मों के नाम के साथ दिए गए हैं। नायिका की विरह भावना पर लिखे कुछ इस प्रकार हैं – 'जलता है बदन' (राजिया सुलतान), 'वक्त ने किया क्या हँसी सितम' (कागज के फूल), 'जरा सी आहट होती है' (हकीकत), 'दो दिल टूटे' (हीर राँझा)। प्रेम में आकंठ डूबी नायिका के लिए लिखे गीत इस प्रकार हैं – 'बहारों मेरा जीवन भी सँवारो' (आखिरी खत), 'धडकते दिल

की तमन्ना हो मेरा प्यार हो तुम' (शमा), 'धीरे धीरे मचल ये दिल-ए-बेकरार' (अनुपमा), 'मिलो ना तुम तो हम घबराए, मिलो तो आँख

चुराए' (हीर राँझा), 'चलते-चलते यूँ ही कोई मिल गया था' (पाकिजा) ये गीत साहित्यिकता से परिपूर्ण है और सफल भी हैं।

बालगीत तथा बाल जगत्

फिल्मों के प्रसंगों के अनुसार और तैयार की गई धुन पर गीत लिखना गीतकार की कसौटी होती है। कैफी जी ऐसी कसौटी पर सौ प्रतिशत खरे उतरते हैं। विविध प्रसंगों के विविध भावों में बच्चों के लिए लिखे उनके गीत भी ध्यान देने योग्य हैं। फिल्म 'एक के बाद एक' फिल्म के 'चली-चली ये फौज हमारी' बालगीत में कैफी आगे लिखते हैं

वर्दी पहनी चूहों ने
मेंढक बैंड बजाते हैं
तितली के रथ पर बैठे
लड़ने-भिड़ने जाते हैं

माँ छोटे बच्चों का सशक्त आधार होता है। माँ की ममता को और उसके प्रति आदरभाव व्यक्त करते हुए 'माँ का आँचल' फिल्म का एक इस प्रकार है

माँ है मोहब्बत का नाम
माँ को हजारों सलाम
कर दे फिदा जिंदगी
आए जो बच्चों के नाम

फिल्म 'आखिरी खत' में माँ अपने बच्चे को हिम्मत देती है इस भाव का गीत है - 'दूर जाता है मुसाफिर / रास्ते में कहीं थक न जाना.... मेरे चंदा, मेरे नन्हें।'

सौंदर्य-वर्णन

फिल्मों में नायिका के सौंदर्य वर्णन पर लिखे कई गीत मिलते हैं परंतु इसी भाव पर कैफी जी के लिखे गीतों का अंदाज़ अलग है। नायिका के नाजुक बदन का भी वर्णन फिल्म 'परवाना' के गीत में मिलता है

'सिमटी सी शरमाई सी, किस दुनिया से तुम आई हो
कैसे जहाँ में समाएगा, इतना हुस्न जो लाई हो'

कैफी जी के सौंदर्य – वर्णन में आँखों की सुंदरता का विशेष वर्णन मिलता है। फिल्म 'कोहरा' का गीत 'ये नयन डरे-डरे ये जाम भरे-भरे' लोकप्रिय है। फिल्म 'हिंदुस्तान की कसम' के गीत 'हर तरफ अब यही अफसाने हैं, हम तेरी आँख के दीवाने हैं' में आंखों का सुंदर वर्णन मिलता है

'कितनी सच्चाई है इन आँखों में
खोटे सिक्के भी खरे हो जाए
तू जरा प्यार से देखे जो उधर
सुखे जंगल भी हरे हो जाएँ'
सौंदर्य वर्णन में कैफी जी की कल्पना का अनोखा रंग मिलता है।

प्रेमगीत

कैफी जी के प्रेमगीत में प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्ष मिलते हैं। इन दोनों पक्षों पर गीत लिखने में कैफी जी माहीर नज़र आते हैं। प्रेम में प्रेम-आराधना का भी एक गीत मिलता है, जो लोकप्रिय है – 'माना हो तुम बेहद हसीं / ऐसे बुरे हम भी नहीं / देखो कभी तो प्यार से / डरते हो क्यों इकरार से।' (टूटे खिलौने) 'कोहरा' फिल्म का 'राह बनी खुद मंजिल / पीछे रह गई मुश्किल / साथ जो आए तुम' गीत भी लोकप्रिय है। संयोग पक्ष में 'हँसते जख्म' फिल्म का 'तुम जो मिल गए हो तो ये लगता है, कि जहाँ मिल गया।' गीत आज भी गाया, गुनधुनाया जाता है।

प्रेम में संयोग के साथ कभी-कभी वियोग भी होता है। ऐसे प्रसंगों पर कैफी जी के लिखे हुए गीत अनूठे हैं। 'ये दुनिया यह महफिल मेरे काम की नहीं' (हीर राँझा), 'मिले ना फूल, तो काँटों से दोस्ती करली' (अनोखी रात), 'तुम बिन जीवन / कैसा जीवन / फूल खिले तो दिल मुरझाए / आग लगे जब सावन बरसे।' जैसे गीतों के साथ फिल्म 'हँससे जख्म' का गीत कैफी जी की उच्चकोटि की प्रतिभा का परिचय देती है

'आज सोचा तो आँसू भर आए
मुद्दतें हो गई मुस्कुराए
दिल की नाजुक रगें टूटती हैं
याद इतना भी कोई न आए।'

कैफी जी के फिल्मों में उनके मूलतः कवि होने के प्रमाण कदम-कदम पर मिलते हैं।

प्रगतिशील चेतना

कैफी जी केवल प्रगतिशील चेतना के कवि नहीं थे तो सक्रिय प्रगतिशील थे। फिल्मी गीतों में उन्होंने यथावसर प्रगतिशील चेतना का परिचय दिया है। फिल्म 'घर का चिराग' का गीत इस रूप से ध्यातव्य है

'ऐ महलों में रहनेवालों, महलों से कभी निकलते हो

देखे हैं कभी उनके आँसू, ठुकरा के जिन्हें तुम चलते हो।'

'शायर-ए-कश्मीर महूजर' फिल्म के 'आज़ादी हमारे घर आई' गीत में कैफी जी की प्रगतिशील काव्य चेतना इस प्रकार व्यक्त हुई है – 'भूखों को बहलाएं कैसे / प्यासों पर छलकाए कैसे / जनता को समझाए कैसे / औरों की तिजोरी भर आई।' फिल्म 'संकल्प' में 'भीतर-भीतर खाए चलो, बाहर शोर मचाए चलो' गीत में शोषण के दुश्चक्र को अभिव्यक्ति मिली है।

देशभक्ति

कैफी जी को कुछ फिल्मों में देशभक्ति पर गीत लिखने का अवसर मिला। यहाँ भी कैफी जी की प्रतिभा ने अपना हुनर दिखाया। फिल्म 'असलियत' के गीत में अपने देश का वर्णन करते हुए कैफी जी ने लिखा है – 'झूमे बाली धान की / जीत हुई है किसान की / चाँद उगाए, तारे बिखेरे / ये धरती हिंदुस्तान की' हिंदुस्तान के लिए सभी संघर्षों से लड़ने का संकल्प का गीत 'हिंदुस्तान की कसम' फिल्म में मिलता है – 'हिंदुस्तान की कसम / हिंदुस्तान की कसम / न झुके सर वतन का, हर जवान की कसम।'

फिल्म 'हकीकत' इस संदर्भ में उल्लेख्य है। युद्ध पर बनी इस फिल्म में शहीद होनेवाले सैनिकों का संदेशपरक गीत आज भी स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस पर गूँजता है।

'कर चले हम फिदा जानो-तन साथियों
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों'

इस पूरे गीत में देशप्रेम की भावना ओतप्रोत भरी है, जो सुननेवालों की भुजाएँ फडकाती है।

'मेरी आवाज सुनो' – कलापक्ष

कैफी आज़मी के फिल्मी गीतों में जहाँ एकतरफ भावपक्ष बहुआयामी है वही दूसरी तरफ उनके गीतों में अभिव्यक्त कलापक्ष उनके सशक्त प्रतिभा का परिचय देता है। गीतकार को फिल्मी गीतों में कलापक्ष पर काम करने का अधिक अवसर नहीं मिलता क्योंकि वह गीत फिल्म की कहानी, प्रसंग और संगीतकार की बनाई धुन की पाबंदियों में जकड़ा हुआ होता है। चूँकि कैफी आज़मी एक श्रेष्ठ कवि थे, उन्होंने इन पाबंदियों के होने के बावजूद भाव तथा कला दोनों पक्षों से समृद्ध गीत लिखे हैं।

भाषा –

कैफीजी ने सहज, सरल, बोलचाल की भाषा में गीत लिखे हैं। वे उर्दू के श्रेष्ठ शायर थे इसलिए उनके गीतों में उर्दू शब्दों की संख्या अधिक है। इसलिए आम जनता को उन गीतों का अर्थ समझने में दिक्कत होती है जैसे 'शमा' फिल्म का गीत है

'शगुफ्तगी का लताफत का शाहकार हो तुम
फकत बहार नहीं, हासिले बहार हो तुम'

परंतु कैफीजी के सभी गीत ऐसे नहीं हैं। कहानी और प्रसंग के अनुरूप भी उन्होंने शुद्ध हिंदी में गीत लिखे हैं। फिल्म 'संकल्प' का एक गीत इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है

'तू ही सागर है, तू ही किनारा
ढूँढता है तू किसका सहारा'

कैफीजी के गीत भावों को प्रवाहमान बनाते हैं। उनके गीत फिल्म की कहानी को आगे ले जाती है। उनकी भाषा इस दृष्टि से कारगर है कि फिल्मों के लिए लिखने के बावजूद उनके गीत अल्पायु नहीं बल्कि वे कालजयी रचना की तरह अमर हैं। भाषा में उच्चकोटि की कल्पना उनके गीतों की सुषमा बढाते हैं। जैसे 'नौनिहाल' का गीत

'तुम्हारी ज़ुल्फ के साए में शाम कर लूँगा
सफर इक उम्र का पल में तमाम कर लूँगा'

पुराणकथाओं का प्रयोग –

कैफीजी को हिंदु पुराण कथाओं का भली भाँति ज्ञान था। उनके कुछ गीतों में पुराण कथाओं के संदर्भ मिलते हैं। हिंदु पुराण कथाओं से प्रभावित होंगे तभी उनके घर का नाम 'जानकी कुटिर' था। फिल्म 'अपना हाथ जगन्नाथ' के एक गीत में, प्रार्थना में वे लिखते हैं

'द्रौपदी को दिया सहारा
महाबली को तूने तारा
आ के अहिल्या को मुक्ति दिलाई
प्रल्हाद की जान तूने बचाई'

'हकीकत' फिल्म के लोकप्रिय 'कर चले हम फिदा जानो तन साथियों' गीत के आखरी अंतरे में रामायण के लक्ष्मणरेखा की कथा अपने आप उजागर होती है

'खींच दो अपने खूँ से ज़मी पर लकीर
इस तरफ आने पाए न रावन कोई
तोड दो हाथ अगर हाथ उठने लगे
छू न पाए सीता का दामन कोई
राम भी तुम, तुम्हीं लक्ष्मण साथियों'

फिल्मी गीतों में इन पुराणकथाओं का औचित्यपूर्ण प्रयोग कैफीजी को श्रेष्ठ गीतकार बनाता है।

अलंकार –

कैफीजी ने अलंकारों का प्रयोग निश्चित ही जान–बूझकर नहीं किया परंतु उनके गीत पढ़ने पर कुछ अलंकार मिलते हैं

✻ **उपमा अलंकार**

जहाँ एक उपमेय के लिए उपमान का प्रयोग होता है वहाँ उपमा अलंकार होता है। फिल्म 'लाला रूख' गीत की पंक्तियों में गेसू के लिए बदलियाँ और झुकी हुई निगाहों के लिए बिजनियों की उपमा दी गई है

'ये खुले–खुले–से गेसू, उठे जैसे बदलियाँ–सी
ये झुकी–झुकी निगाहें गिरे जैसे बिजलियाँ–सा'

✻ **रूपक अलंकार –**

जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप होता है वहाँ रूपक अलंकार होता है। फिल्म 'परवाना' के 'सिमटी–सी शरमाई–सी' गीत के पहले अंतरे में रूपक अलंकार देखने को मिलता है

'हीरा नज़र, चाँदी बदन, रेशमी मुखडा चमन
कंगार हैं सारे हँसी, बस एक तुम रखती हो धन'

✻ **संदेह अलंकार**

किसी वस्तु को देखकर जहाँ साम्य के कारण दूसरी वस्तु का संशय होता है, पर निश्चय नहीं होता वहाँ संदेह अलंकार होता है। फिल्म 'नकली नवाब' गीत की पहली पंक्ति में संदेह अलंकार मिलता है

'मस्त आंखें हैं कि छलके हुए पैमाने दो'

✻ **अतिशयोक्ति अलंकार –**

अब किसी बात का वर्णन बढ़ा–चढाकर किया जाता है, तब वह अतिशयोक्ति अलंकार कहा जाता है। फिल्म 'हिंदुस्तान की कसम' के गीत में आंखों के वर्णन में अतिशयोक्ति अलंकार मिलता है जहाँ कैफी जी लिखते हैं

'कितनी सच्चाई है इन आंखों में
खोटे सिक्के भी खरे हो जाएं
तू ज़रा प्यार से देखे जो उधर
सूखे जंगल भी हरे हो जाएं
बाग बन जाए जो वीराने हैं।'

इस पूरे गीत में अतिशयोक्ति देखी जा सकती हैं।

✼ **मानवीकरण अलंकार**

जहाँ अचेतन पर मानव सुलभ गुणों और क्रियाओं का आरोप किया जाता है, वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है। 'कागज के फूल' फिल्म के 'देखी जमाने की यारी' गीत के अंत में अमूर्त तमन्ना (इच्छा) को मूर्ख कहा गया है और कश्ती खेने की मानव क्रिया भी यहाँ द्रष्टव्य है

'नादान तमन्ना रेती में
उम्मीद की कश्ती खेतीर है।'

कैफी जी के गीतों में अनायास, सहज रूप से आए अलंकार गीतों की अर्थवत्ता को बढ़ाते हैं।

✼ **सांकेतिकता**

कैफीजी के गीतों में सांकेतिकता का गुण मिलता है। कवि / गीतकार अपनी बात को अभिधा के बजाय लक्षणा या व्यंजना में व्यक्त करता है तो गीत अधिक रसपूर्ण बन जाता है। फिल्म 'नौनिहाल' के एक ग़ज़ल में प्रेम की अभिव्यक्ति की सांकेतिकता सुंदर ढंग से रूपायित हुई है

'नज़र मिलाई तो पूछूंगा इश्क का अंजाम
नज़र झुकाई तो खाली सलाम कर लूंगा।'

कैफी जी की कवि प्रतिभा मुस्कुराते चेहरे के पीछे छिपे दुःख को सांकेतिकता से व्यक्त करते हैं। फिल्म 'अर्थ' के लोकप्रिय गीत की पहली ही पंक्ति है

'तुम इतना क्यों मुस्कुरा रहे हो
क्या गम है जिसको छुपा रहे हो।'

स्पष्ट है कि कैफीजी के गीत भाषा, पुराण कथा, अलंकार, सांकेतिकता जैसे गुणों से समृद्ध हुए हैं। भाषा का प्रसाद कहीं ओजपूर्ण रूप, अनायास अलंकारों की सज्जा, ग़ज़लों की मिठास, गीतों का सौंदर्य और गीतों में इन गुणों से साहित्यिकता को बनाए रखना यह कैफी के गीतों की कलात्मक विशेषताएं हैं। अभिव्यक्ति सौंदर्य कैफी जी के गीतकार व्यक्तित्त्व की पहचान को तीव्रता से रेखांकित करता है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न –

1) कैफी आज़मी का मूल नाम .... है।

क) अजहर ख) अख्तर ग) अतहर घ) मजहर

2) कैफी आज़मी की पत्नी का नाम .... है।

क) समीजा ख) सलीमा ग) शौकत घ) सूफिया

3) कैफी आज़मी की बेटी का नाम .... है।

क) शबाना ख) रूखसाना ग) आलिया घ) शहनाज

4) कर चले हम फिदा जानो .... साथियो।

क) मन ख) धन ग) तन घ) जन

5) कैफी आज़मी ने .... फिल्म के लिए अपना पहला गीत लिखा।

क) बुजदिल ख) संगदिल ग) कोहरा घ) बावर्ची

6) कैफी आज़मी के कुल .... कविता संकलन है।

क) 3 ख) 4 ग) 5 घ) 6

7) कैफी आज़मी के फिल्मी गीतों के संकलन का नाम .... है।

क) झंकार ख) आखिर-ए-शब ग) आवारा सज्दे घ) मेरी आवाज सुनो

8) .... कविता संग्रह के लिए कैफी आज़मी को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

क) झंकार ख) आबशार ग) आस घ) आवारा सज्दे

9) महाराष्ट्र सरकार ने कैफी आज़मी को .... पुरस्कार दिया।

क) संत तुकाराम ख) संत ज्ञानेश्वर ग) संत एकनाथ घ) संत नामदेव

10) कैफी आज़मी के घर का नाम .... है।

क) जानकी कुटिर ख) राधा कुंञ ग) कृष्णकुंज घ) मधुकुंज

11) कैफी आज़म ने .... फिल्मों के लिए गीत लिखे हैं।

क) 100 ख) 90 ग) 81 घ) 70

12) 'मेरी आवाज सुनो' संकलन में कुल .... गीत संकलित हैं।

क) 100 ख) 110 ग) 240 घ) 300

13) कैफी आज़मी .... भाषा के कवि हैं।

क) हिंदी ख) उर्दू ग) मराठी घ) गुजराती

14) .... फिल्म के गीत के लिए कैफी आज़मी को फिल्मफेयर अवार्ड मिला।

क) कोहरा ख) हकीकत

ग) हिंदुस्तान की कसम घ) सात हिंदुस्तानी

15) कैफी आज़मी को .... के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार मिला।

क) साहित्य रचना   ख) राष्ट्रीय एकता   ग) फिल्मी गीत   घ) सक्रिय प्रगतिशील

4.5 पारिभाषिक शब्दार्थ –

ख्वाब – सपना

याद – स्मृति

उल्फत – प्रेम

मुहब्बत – प्रेम

बेकरार – बेचैन

खुदा – ईश्वर

वक्त – समय

जुदा – अलग

फिक्र चिंता

पुरवइया – पूर्व दिशा से आती हवा

मैखाना – शराबखाना

सज्दा – प्रार्थना

दीदार – दर्शन

शगुफ्तगी प्रफुल्लता

खाबीदा – श्रेष्ठतम कृति

आशकार – प्रकट

तमन्ना – इच्छा

दर्द – दुःख

यास – उदासी

आरजू – आकांक्षा

जुल्फ – गेसू

शक्ल – चेहरा

दिल्लगी – मजाक

खत – पत्र

रुस्वा – बदनाम

अंजाम – परिणाम

जुबाँ – वाणी

शबनम – ओस के बिंदु

तनहाइ – अकेलापन

नज़दीक – निकट

अफनामा – कहानी

उम्रभर – जीवन भर

शहजादी – राजकुमारी

सितम – अत्याचार

दम–ब–दम – हर पल

उम्मीद – आशा

जहर – विष

तआर्रूफ – परिचय

गिरफ्तार – कैद

पयाम – संदेश

लताफत – कोमलता

जुस्तजू – आकांक्षा

अश्के–हसीं – सुंदर आँसु

चमन – उपवन

हसीन – सुंदर

संगदिल – पत्थर दिल

दस्तूर – पद्धति

करीब – निकट

जिस्म – शरीर

मजबूर – विवश

राजदार – भेद जाननेवाला

बरहम – नाराज

बंदगी – भक्ति

खुदकशी – आत्महत्या

बज़्म – महाफिल	मजार – कब्र
जनाजा – अंतयात्रा	सहरा – रेगिस्तान
दुश्मन – शत्रू	कूचा – गली
शबे–इंतजार – प्रतीक्षा की रात	किस्मत – नसीब
किस्मत – नसीब	मेहरबाँ – कृपा करनेवाला
इल्तिजा – बिनती	शमा – मोमबत्ती
कसम – शपथ	कुरबत – समीपता
फासला – दूरी	मसर्रत – खुशी
पल – क्षण	ऐतबार – विश्वास
लब – होंठ	तबस्सुम – हँसी
अरमान – इच्छा	नगमा – गीत
खता – गुनाह	हुनर – कला
तकलीफ – वेदना	

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर –

1) अतहर	2) शौकत	3) शवाना
4) तन	5) बुज़दिल	6) 3
7) मेरी आवाज सुनो	8) आवारा सज्दे	9) संत ज्ञानेश्वर
10) जानकी कुटिर	11) 81	12) 240
13) उर्दू	14) सात हिंदुस्तानी	15) राष्ट्रीय एकता

4.7 सारांश :

(1) कैफी आज़मी उर्दू के श्रेष्ठ कवियों में से एक है। आज भी प्रगतिशील शायर के रूप में उनका नाम बडे अदब के साथ लिया जाता है। वे बा–कायदा पार्टी के सदस्य थे और कम्युनिस्टों के लिए बनाए गए कम्यून में रहते थे। प्रगतिशील विचारों से ओतप्रोत उनकी शायरी के कारण उन्हें कवि के रूप में काफी लोकप्रियता मिली 'आवाज सज्दे' कविता–संकलन के लिए उन्हें 'साहित्य अकादमी का पुरस्कार' मिला था।

(2) पारिवारिक जिम्मेवारी के कारण कैफी जी हिंदी फिल्मी गीत लेखन की ओर मुड़े। उस वक्त मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी, शैलेंद्र जैसी हस्तियाँ फिल्मों के लिए गीत लेखन के कारण यश शिखरों पर थे। कैफी आज़मी में एक विशेषता यह थी कि गीतकार के साथ–साथ उन्होंने 'गर्म हवा' फिल्म की पटकथा लिखी थी और आगे 'हीर रांझा' फिल्म के संवाद भी लिखे थे। हिंदी फिल्म जगत् में 'हीर रांझा' एकमात्र

ऐसी फिल्म है जिसके सभी संवाद शायरी के रूप में थे। कैफी आज़मी ने मजरूह, साहिर शैलेन्द्र के अनुपात में कम गीत लिखे परंतु जितने गीत लिखे उससे वे प्रथम पांक्तेय गीतकार के रूप में लोकप्रिय हो गए। फिल्मों में गीतलेखन करते हुए भी उन्होंने अपने रचनाकार को जीवित रखा। फिल्मी गीतों में साहित्य को कायम रखा। उनके फिल्मी गीतों का संकलन 'मेरी आवाज़ सुनो' के गीतों में छिपी कविता ही है।

(3) इनके गीतों में कहीं ग़ज़ल की मिठास तो कहीं छंदबद्ध और सुसज्जित गीतों की विशिष्टताएँ जादू जगाती हैं। फिल्मों के लिए लिखते समय गीतकारों को समझौता करना पड़ता है। सीमाओं में बंधकर अपनी प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है। फिल्मी गीतों के सफर में कैफी जी ने सच्चे रचनाकार का परिचय दिया है। कैफीजी के गीतों में एक विशेष प्रकार का प्रवाह देखने को मिलता है। यह प्रवाह ही उनके गीतों की सफलता है। उनके गीतों की धारा सभी भाव स्थितियों को सराबोर करती हैं।

(4) कैफीजी ने विविध विषय, प्रसंग और मनोदशाओं के गीत लिखे। फिल्मों के लिए गीत लिखते समय गीतकार मुक्त नहीं होता। उसके सामने कहानी होती है, प्रसंग होता है और संगीतकार की बनाई हुई धुन होती है। फिल्मों गीत लिखना एक प्रकार से तलवार पर चलने जैसा है। कैफी जी ने आपने गीतों से जीवन-दर्शन को व्यक्त किया स्त्री मन को अभिव्यक्त किया, देशभक्ति के गीत लिखे, प्रेम और प्रार्थना के गीत लिखे, प्रसंगवश बालगीत लिखे, सौंदर्य वर्णन, मिलन - जुदाई के गीत लिखे, व्यक्तिगत दु:ख को वाणी दी, अपनी प्रगतिशील केंद्रीय चेतना को वाणी दी। कैफीजी अनेक भाव भावनाओं पर गीत लिखनेवाले सशक्त रचनाकार हैं।

(5) देशभक्ति पर लिखे कैफीजी के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। 'हकीकत' 'हिंदुस्तान की कसम' 'नौनिहाल' के गीत देशभक्ति से ओतप्रोत हैं। कैफीजी पंडित जवाहरलाल नेहरू से प्रेम था। वे नेहरू से प्रभावित थे। उन्होंने 'नेहरू' कविता लिखी जो फिल्म 'नौनिहाल' में 'मेरी आवाज सुनो, प्यार का राज सुनो' गीत बनकर साकार हुई। कैफी जी ने तुकबंदियों को कभी भी अपने पास आने नहीं दिया उन्होंने जो कुछ लिखा अपने दिल की गहराइयों से लिखा। एक तरफ उन्होंने युवाओं के उमंगों और इच्छाओं की धड़कनों को मूर्त रूप दिया वहीं जीवन के विभिन्न चित्रों को भी बड़े मन से गीतों में उतार दिया।

(6) कैफी आज़मी ने अपने गीतों में एक ओर कल्पना की उड़ान भरी तो दूसरी तरफ समाज की समसामायिकता को ध्यान में रखकर व्यंग्यात्मक तीखे गीत भी लिखे हैं। उनके गीत समय-समय पर याद किए जाते हैं। इन गीतों में सपने और सच्चाइयों की सीमाएँ आपस में मिलती हुई प्रतीत होती है। जो आनेवाले समय में भी उनकी विशेषता को जीवित रखेंगी। कैफी ने रोजमर्रा की भाषा में सहजता से दुर्बोधता को परे रखकर गीत लिखे तभी वे गीत आज भी गाए बडे चाव से गाए, गुनगुनाए, सुने जाते हैं।

(7) हिंदी के वरिष्ठ कवि शमशेर बहादुर सिंह ने 'आवारा सज्दे' की भूमिका में लिखा है, 'दिल को मसोसनेवाले उसके फिल्मी-गीत देश और विदेश के प्रेमी दिलों में बसे हुए हैं। विश्वास और आदर्श का परचम उठाए हुए, सौंदर्य की मोहिनी और आकर्षक जादू जगाए हुए ये प्रेम रस के छलकते गीत श्रेष्ठ और मार्मिक कविता भी हैं।

4.8 स्वाध्याय :

अ) ससंदर्भ व्याख्या –

1) 'जिंदा रहने के मौसम बहुत है मगर
जान देने की रूत रोज आती नहीं
हुस्न और इश्क दोनों को रूस्वा करे
वो जवानी जो खूँ में नहाती नहीं
आज धरती बनी है दुल्हन साथियों
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों

संदर्भ – प्रस्तुत गीत पंक्तियों कैफी आज़मी द्वारा लिखित 'मेरी आवाज सुनो' गीत संकलन से हैं। यह गीत फिल्म 'हकीकत' का है।

व्याख्या – कैफी आज़मी के 'कर चले हम फिदा जान ओ तन साथियों' गीत के अंतरे की पक्तियाँ है। देश के लिए शहीद होने जा रहे सैनिक अपने देशवासियों को संदेश देते हैं कि हमने अपनी जान और शरीर का देश के लिए बलिदान दे रहे हैं। अब हमारे गुजर जाने के बाद देश का शिर ऊँचा रखने की जिम्मेदारी देशवासियों पर हैं । जीवित रहकर मौज मनाने के दिन कई आते हैं। देश के लिए कुर्बानी देने का दिन रोज आता नहीं। प्रेम और यौवन तब और बदनाम होती अगर जवानी में खून नहीं बहता। यह धरती आज दुल्हन बनी है और तुम उसके लिए खून बहाओ।

विशेष : 1) यह गीत कैफी आज़मी द्वारा लिखित कई लोकप्रिय गीतों में से एक है।

2) इस गीत से देश के लिए समर्पित होने का भाव जगता है।

2) खींच दो अपने खूँ से जमीं पर लकीर
इसतरफ आने पाए न रावण कोई
तोड़ हो हाथ अगर हाथ उठने लगे
छू न पाए सीता का दामन कोई
राम भी तुम, तुम्ही लक्ष्मण साथियों (पृ. 88)

3) मेरी आवाज सुनो, प्यार का राज सुनो
मैंने इक फूल जो सीने पे सजा रखा था
उसके परदे में तुम्हें दिल से लगा रखा था
था जुदा सबसे मेरे इश्क का अंदाज़ सुनो (पृ. 121)

4) तुम इतना जो मुस्कुरा रहे हो
क्या गम है जिसको छिपा रहे हो
जिन जख्मों को वक्त भर चला है
क्यों तुम उन्हें छेडे जा रहे हो (पृ. 241)

5) तुम क्या जानो तुम क्या हो
एक सुरीला नग्मा हो
भीगी रातों में मस्ती
तपते दिन में माया हो (पृ. 180)

ब) दीर्घोत्तरी प्रश्न –

1) 'मेरी आवाज सुनो' संकलन की विशेषताओं को विशद कीजिए।

2) कैफी आज़मी के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को स्पष्ट कीजिए।

3) 'मेरी आवाज सुनो' में संकलित देशभक्ति पर लिखे गीतों के आशय को स्पष्ट कीजिए।

4) 'कैफी आज़मी स्त्री–मन की भावनाओं के अद्वितीय चितेरे थे'
'मेरी आवाज सुनो' के संदर्भ में विशद कीजिए।

5) 'मेरी आवाज सुनो' में संकलित गीतों के विविध विषयों को स्पष्ट कीजिए

6) 'मेरी आवाज सुनो' की समीक्षा कीजिए।

7) कैफी आज़मी की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

8) 'कैफी आज़मी के गीत श्रेष्ठ और मार्मिक कविता भी हैं' – इस कथन की समीक्षा कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य –

1) कैफी आज़मी के लिखे फिल्मी गीतों के फिल्मों को देखकर गीतकार की भूमिका लिखने की कोशिश कीजिए।

2) कैफी आज़मी के फिल्मी गीतों में योगदान के संदर्भ में समकालीन गीतकार से साक्षात्कार लेने की कोशिश कीजिए।

3) कैफी आज़मी के जीवन चरित्र और गीतों की विशेषताओं के सहारे दृश्य–श्रव्य प्रोग्राम बनाने का प्रयास कीजिए

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए –

हिंदी – 1) 'हिंदी फिल्मों के गीतकार' – अनिल भार्गव

2) 'अभिनव कदम – कैफी आज़मी विशेषांक', संपादक – जयप्रकाश धूमकेतु

3) 'साहित्य समाज और हिंदी सिनेमा' – डॉ. सुनील बापू बनसोडे

मराठी 1) 'गीतकार' – नंदिनी आत्मसिद्ध

2) 'कैफी आज़मी – जीवन आणि शायरी' – लक्ष्मीकांत देशमुख

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न–**

1. कैफी आजमी ....भाषा के श्रेष्ठ कवि है।

अ. मराठी, ब. हिंदी क. कन्नड ड. उर्दू

2. कैफी आजमी का जन्म ....गॉव में हुआ।

अ. होशियारपुर ब. अजवा क. संजयपुर ड. मिजवा

3. अतहर हुसैन रिजवी को ....नाम से जाना जाता है।

अ. भरत व्यास ब. हसरत जयपुरी क. कैफी आजमी ड. राजा अली खॉ

4. कैफी आजमी को .... पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अ. भारत विभूषण ब. पद्मविभूषण क.पद्मश्री ड. काव्यानंद

5. कैफी आजमी के कुल कितने ....कविता संकलन हैं।

अ. 4 ब. 2 क. 6 ड. 3

उत्तर –

1. ड 2. ड 3. क 4. क 5. ड

2. **उचित मिलान कीजिए।**

1. कैफी आजमी	अ. उर्दू
2. सात हिंदुस्थानी फिल्म पुरस्कार	ब. राष्ट्रीय एकता
3. कैफी आजमी निवास	क. फिल्म फेअर
4. कैफी आजमी राष्ट्रपति पुरस्कार	ड. जानकी कुटिर
5. कैफी आजमी भाषा	इ. संत ज्ञानेश्वर

सही उत्तर

1.-इ, 2.-क, 3.-ड, 4.-ब, 5.-अ.

3. **सही गलत पहचान करें**

1. कैफी आजमी कहते कि, कर चले हम फिदा जानो मन साथियों, कैफी आजमी की बेटी का नाम शशबाना रहा।
2. कैफी आजमी मदरसे में पढते थे, उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मनित किया गया है।
3. कैफी आजमी बचपन में विद्रोही रहे, वे बचपन में सुलतानुल मदरसे में पढते थे।
4. मुंबई विश्वविद्यालय ने कैफी आजमी को डॉक्टरेट उपााधि से सम्मनित किया, उन्हें महाराष्ट्र उर्दू अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।
5. कैफी आजमी की बेटी हिंदी फिल्म जगत् सुप्रसिध्द अभिनेत्री रही है, तो कैफी आजमी के बेटे बाबा आजमी एक सफल सिनेमोटोग्राफर है।

उत्तर–

1. पहला सही दूसरा गलत।
2. पहला सही दूसरा भी सही है।
3. पहला सही दूसरा भी सही है।
4. पहला सही दूसरा भी सही है।
5. पहला सही दूसरा भी सही है।

❑❑❑

इकाई 1
भारतीय साहित्य का सैद्धांतिक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 विषय विवरण

1.3.2 भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक समरसता

1.3.3 भारतीय साहित्य में जीवन मूल्य और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा

1.3.4 भारतीय साहित्य में आज के भारत का बिंब

1.3.5 भारतीय साहित्य : बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द/शब्दार्थ

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक समरसता से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य में जीवन मूल्य और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य में आज के भारत के बिंब से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य : बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना

भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति बुनियादी तौर पर वैदिक ही है। जैन, बौद्ध धर्म- जो - अवैदिक माने गये हैं वे भी औपनिषदिक विचारधारा से ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उन धर्मों में प्रतिपादित अहिंसा का सिद्धांत वैदिक आत्मवादी विचारधारा का सीधा और व्यावहारिक परिणाम ही है। युगानुरूप भारतीय विचारधारा में परिवर्तन होते गये हैं। नये प्रभावों को ग्रहण कर बुनियादी एकता एवं सातत्य का भाव विद्यमान किया जाता रहा है। भारतीय दार्शनिक विचारधारा की उन, मूलभूत विशेषताओं का आकलन यहाँ पर किया जा रहा है जिनसे हमारा अतीत निर्मित हुआ है, और जो हमारे वर्तमान व भविष्य को रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा ।

1.3 विषय विवेचन

भारतीय संस्कृति का अर्थ भारत नामक भूखण्ड से निवास करती आई मानव-जाति की उस संस्कृति से है जो बहुत-सी समानताओं के कारण एक सूत्र में बँधी हुई है। भारतीय संस्कृति की बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो संसार के दूसरे भागों में रहने वाले मानव समूहों से अलग एवं विशिष्ट है। भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसे सिद्धांतों और विचारों का प्राधान्य है जिनके फलस्वरूप एक विशेष प्रकार की जीवन व्यवस्था विकसित हुई है जिसे 'भारतीय जीवन-व्यवस्था' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। पिछले छः हजार वर्षो में भारतीय संस्कृति में उतार-चढ़ाव और कुछ ऊपरी परिवर्तनों के बावजूद बुनियादी एकता विद्यमान रही है। इसलिए यह सोचना गलत न होगा कि भारतीय संस्कृति की रूप-रेखा के मूल में ऐसी धारणाएँ हैं जिनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। भारतीय संस्कृति और दर्शन को अपनी समग्र विशेषताओं के साथ अभिव्यक्त करनेवाला साहित्य भारतीय साहित्य है।

1.3.1 विषय विवरण

इस इकाई में हम भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक समरसता, जीवन मूल्य और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा, भारतीय साहित्य में आज के भारत का बिंब, भारतीय साहित्य की बहुभाषिकता एवं बहु सांस्कृतिकता का विस्तार से अवलोकन करेंगे।

1.3.1 भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक समरसता

भारत वर्ष की अवधारणा

हिमालय और समुद्र के बीच के भूखंड का सर्वस्वीकृत नाम भारत वर्ष है। बौद्ध ग्रंथों में इस प्रदेश को जम्बूद्वीप कहा गया है। इस भूखण्ड को 'कुमारी द्वीप' भी कहा जाता है किन्तु यह नाम साहित्य तक ही सीमित रहा । भारत नाम का आधार मुख्यतः सांस्कृतिक और राजनैतिक है।

भरत मुनि की व्युत्पति का उल्लेख प्राचीन साहित्य में कुछ इस प्रकार मिलता है:-

1. पुराणों के अनुसार प्रतापी दुष्यन्त के पुत्र भरत ने इस भूखण्ड में चक्रवर्ती राज्य की स्थापना की।

2. भारत नाम की दूसरी व्युत्पति का आधार देश में बसने वाला जन है। आर्यों के एक अतिप्राचीन जन का नाम भरत था जो दिल्ली भाग में सबसे पहले– कुरूक्षेत्र के भू– ज्यों भरत जन का विस्तार होता गया– बसा। यह प्रदेश भरत जनपद कहलाया। ज्यों त्यों भरती प्रजा नामक संज्ञा के अर्थों का भी विस्तार हुआ। –त्यों

'भरत्येष प्रजाः सर्वास्ततो भरत उच्चते।'

इस भूखण्ड पर एक ओर निषाद संस्कृति थी, उराँव, के, शबर, जिसके अंतर्गत संस्कृतियाँ थीं। बाद मेंदूसरी ओर द्रविड और आर्य, नाग आदि अनेक जातियाँ थी। तीनों संस्कृतियों का संगम भी यहाँ प्रभूत मात्रा में हुआ।

आर्य संस्कृति का प्रतीक अग्नि था। इसी अग्नी को प्राचीन वैदिक साहित्य में 'भारत' कहा गया है –

'भारतो हविषो भर्ता अग्निः। प्राणी भूत्वा प्रजा धारयन् भारत इति वाजसनेयकम्।'

अर्थात – भारत कौन है हवि का भरण करने वाला अग्नि ही भारत है। अग्नि अध्यात्म रूप से प्राण बन कर प्रत्येक प्राणी के भीतर जीवन धारण करता हुआ भारत है। इस नामांकरण से भावना का औदात्य स्पष्ट होता है।

विभिन्न प्रान्तों में वेदियों में प्रज्वलित भारत अग्नि का प्रदेश से दूसरे प्रदेश में विचरण करती हुई इस देश में सर्वत्र घूम गई। सब प्रजाओं का समान रूप से पालन करने के कारण यह अग्नि भरत कहलाई और देश के चारों खूंटों में फैलने लगी,

''एवं त्वजनयद् धिष्ण्यान् वेदोक्तान् विविधान बहून् ।

विचरन् विविधान् देशान् भ्रममाणस्तु तत्र वै ।।''

मुसलमानों के आगमन के साथ ही इस भूखण्ड का नाम हिन्दुस्तान पड़ा जिसके पीछे 'हिन्दु' शब्द है । 'हिन्दु' संस्कृति के 'सिन्धु' की विकृति है। ईरानी सम्राट द्वारा छठी शती ईस्वी पूर्व में 'सिन्धु' नदी के आस-पास के प्रान्तों के लिए जो कि इस भूखण्ड के उत्तर पश्चिम में स्थित हैं 'हिन्दु' शब्द का प्रयोग किया। फारसी में यह शब्द प्रचलित हुआ और इसी के आधार पर यूनानियों ने इस देश को इंडिया कहा। इस प्रकार 'इंडिया' नाम प्रचलित हो गया।

भारतीय राष्ट्रीयता विषयक विविध आधुनिक विचार:

आधुनिक विश्व 'राष्ट्रों' में विभाजित है और आधुनिक भारत भी एक विशाल 'राष्ट्र' के रूप में स्थापित एवं परिणत हुआ है। 'राष्ट्र' क्या है? इस प्रश्न का एक विशिष्ट संदर्भ है क्योंकि तेजी से परिवर्तित हो रहे विश्व में 'राष्ट्र' की परिभाषाएँ अपर्याप्त गोचरित होने लगी हैं। धर्म संस्कृति आदि का कोई आधार आज पर्याप्त नहीं है। कोई मानक सूचक, भाषा, नहीं रहे।

भारत ने स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद अनेक चुनौतियों एवं बहुमुखी परिवर्तनों का सामना किया है। उपनिवेशवाद ने भारत के सहज विकास को अवरुद्ध किया। इस संबंध में एक प्रश्न अनिवार्य रूप से उठता है कि भारत के राष्ट्र निर्माण की चुनौती का चरित्र राजनैतिक है अथवा सांस्कृतिक आयामों से संबंधित है। विडम्बना यह है कि हमारे राष्ट्रीय नायकों ने भी राष्ट्रवाद और भारतीय की अवधारणा के लिए उस आधुनिकतावाद का सहारा लिया जो पंद्रहवीं सदी में 'रिनैसा' से शुरू हुआ। इतिहास तथा सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से यूरोप के पंडितों द्वारा 'रिनैसाँ' से आधुनिक युग का और फ्रांसीसी क्रांति से वर्तमान युग आरंभ माना जाता है। आज राष्ट्रीयता की कसौटियाँ निर्धारित करने के प्रश्न से जूडे चार पक्ष वाद-विवाद के केन्द्र में रहे हैं-

1. भारत सदियों से एक राष्ट्र रहा है।
2. भारत एक राजनीतिक इकाई कभी नहीं रहा।
3. भारतीय भविष्य का आदर्श यूरोप में।
4. सुदूर अतीत में आदर्शों की खोज।

'राष्ट्र' की परिकल्पना से भारतवर्ष कभी वंचित नहीं रहा। 'सत्य' तो यह है कि राष्ट्र शब्द भी हमें अपने वेद कालीन पूर्वजों से प्राप्त हुआ है और उक्त संज्ञा के साथ जो प्राकृतिक परिवेश और उसमें अंतर्निहित रागात्मक भावना है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में 'राष्ट्र' की परिकल्पना काफी विकसित दिखाई देती है। राष्ट्र - प्राप्ति की कामना शत्रुदमन तथा 'राष्ट्र' की समृद्धिवर्धन हेतु की गई प्रार्थनाएँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'जिस राष्ट्र में विद्वान सताए जाते हैं वह विपत्तिग्रस्त होकर वैसे ही नष्ट हो जाता हैं जैसे टूटी नौका जल में डूबकर नष्ट हो जाती है।'

पंचमवेद तथा 'राष्ट्रीय काव्य' की संज्ञा से अभिहित महाभारत में भी भारत को सबसे उत्तम व प्रिय घोषित किया गया है।

प्राचीन भारत को एक ही छत्र छाया के अधीन लाने के प्रयास हमें अश्वमेध यज्ञों के- रूप में मिलते हैं।

एक धारणा जो व्यापक स्तर पर अंग्रेजों द्वारा फैलाई गई थी और अंग्रेजी शिक्षा-वह है, प्राप्त भारतीयों द्वारा पुष्ट की गई। अंग्रेजों के आगमन और राज्य स्थापना से पूर्व भारत में 'राष्ट्रीयता' का कोई भाव नहीं था और इस अभाव को पाटकर इस देश को एकता के सूत्र में बाँधने का श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है।

वस्तुतः आधुनिक भारत के इतिहास में 'राष्ट्रीयता' के बोध में मूलतः यही विचार रहा है। सन् में अलाँन आक्टेवियन ह्यूम द्वारा घोषित तीन स्तरीय कार्यक्रम पर 1888 किंचित ध्यान दें तो अंग्रेजी नीति का

स्वार्थ स्पष्ट हो जाता है। ए ह्यूम ओ 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' के मूल संस्थापकों में प्रमुख थे जिन्होंने काँग्रेस के 'मूलभूत नियमों' (Fundamental Principles) की उद्घोषणा की थी –

''प्रथम भिन्न भिन्न एवं हाल तक विघटित उन तत्वों का एक– 'राष्ट्र' के अंतर्गत समीकरण जिनसे भारत का जनजीवन गठित आ है।''

''दूसरा इस प्रकार उभरे राष्ट्र का मानसिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्तरों, नैतिक पर क्रमशः शनैः शनैः पुनरुद्धार करना।''

''तीसरा इंग्लैंड और भारत के गठजोड़ के लिए समझौतों में एसे परिवर्तनों को करना जो इंग्लैड के लिए अन्यायपूर्ण अथवा क्षतिकारक न हों।''

पर इस देश की सबसे बड़ी विडम्बना यह रही कि आज हमारे देश में यही प्रचलित है कि –''अंग्रेजी शिक्षा के कारण ही यह कि आज हमारे देश आज़ाद हुआ है और अंग्रेजों ने ही भारत की एकता कायम की है। आधुनिक काल में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप उभरा और विकसित हुआ उसके तीन आधार है:–

क. पूरे देश में अंग्रेजी शासन की स्थापना

ख. समग्र भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेजी शासन से उत्पन्न यातना का समाज अनुभव तथा,

ग. स्वाधीनता व्यापी प्रसार। आन्दोलन और उसका देश–

आरम्भ में भारतीय प्रतिनिधियों कों स्वतंत्र भारत स्थापित करने की कोई जल्द बाजी– नहीं थी और ऐसे शासन प्रणाली की स्थापना की आवश्यकता भी वे महसूस नहीं करते थे जिनमें अंग्रेजों का कोई स्थान न हो। प्रायः यह अभिप्राय भी स्थिर होने लगा कि यदि अंग्रेज न आए होते तो हिन्दुस्तान टुकडों में ही बंटा होता। फिरोजशाह मेहता ने बंबई में संपन्न हुए काँग्रेस के पाँचवे अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि शिक्षा एवं विवेकदाता अंग्रेजों की मदद से ही चार साल पहले काँग्रेस की स्थापना हुई जिसमें राष्ट्रीय एकता की भावना को पुष्ट किया और अंग्रेजी शासन के इस महानतम परिणाम का स्वागत हमारी, राजभक्ति की निशानी के तौर पर करना चाहिए। मेहता जी के इन विचारों का करताल ध्वनियों द्वारा स्वागत किया गया था। चूँकि यह बात व्यापक रूप से प्रचलित हो गई थी भारत में 'राष्ट्रीयता' नामक कोई चीज ही नहीं है और वह टुकड़ों में बँटा गुलाम देश है। हमारे प्रतिनिधियों ने भारतीय एकता पर बल देना आरंभ किया और इसकी जिम्मेदारी भी अंग्रेज शासकों को ही सौंपी। दादाभाई नवरोजी ने सन् के 1893 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' के अधिवेशन में यह घोषणा की – 'चाहे मैं हिन्दु पारसी अथवा क्रिश्चियन या किसी मुसलमान, जाति का हूँ पर सबसे पहले मैं भारतीय हूँ।' और उन्होंने कहा कि सभी शिक्षित एवं देश के सहदय मित्र अपनी शक्ति की परिधि में एक 'समाज राष्ट्रीयता' की सशक्त एवं देश मैत्रीपूर्ण भावना जगने तथा एक दूसरे के भावों का उचित सम्मान करने को प्रयासरत हों । और इसकी जिम्मेदारी भी अंग्रेज सरकार को अपनी राजभक्ति के निरूपण स्वरूप सौंपी। आधुनिक मानदण्डों के अनुसार दादभाई नवरोजी शायद राष्ट्रवादी ही न माने जाएं क्योंकि उन्होंने कभी स्वतंत्रता की माँग नहीं की बल्कि अंग्रेजी शासन को भारत को सुधार के लिए

आवश्यक माना। जब इस प्रतिपादन से मोहभंग हुआ तो अंग्रेजों की मदद से 'सुराज' स्थापित करने के प्रयत्न रूक गए और 'स्वराज' का नारा बुलन्द हुआ। 'अनेकता में एकता' का सूत्र भी यही से एक मूल मंत्र के रूप में स्थापित हुआ।

भारतीय नेता प्रायः सभी धर्मों की अनेकता, जिनमें विभिन्न दलों के नेता भी सम्मिलित है, को राजनैतिक एकता में परिणत करने की संभावना को ही साकार करने में प्रयत्नरत रहे और इस अनेकता को अनजाने ही अधिक प्रमुखता प्राप्त होती रही। जहां स्वतंत्रता प्राप्त करने में इस नारे ने विशेष कार्य किया वहीं आजादी के बाद इसने अप्रत्यक्ष रूप से 'अलगाव' की भावना को ही उभारा। राष्ट्रीयता के इस मूलमंत्र ने हमारे अलग होने के प्रति हमें सचेत किया। यह हमें उन वक्तव्यों में स्पष्ट दिखाता है जो हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध लडने के लिए भारतीय प्रजा को एकजूट करने के लिए दिए थे। जैसा कि दादाभाई नवरोजी के कथन से स्पष्ट है जो पहले दिया जा चुका है। भारतीय एकता पर अपने वक्तव्य में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कहा कि, ''एकता की पवित्र परिकल्पना को सम्मान देना सीखों समान दुखों को पर्याप्त, एक दूसरे को भाई समझना एवं प्यार करना सीखों, कारण मानना सीखों और राष्ट्रों का महान देव दलित जनों के अधिकारों का संरक्षक तुम्हारी ओर करुणा दृष्टि सारिता करे और तुम्हारे देश में प्रकाशमान दिवस को उदित करने की दया करें।'' मदन मोहन मालवीय जी ने भी के अपनी अध्यक्षीय भाषण में कहा सन् 1909 ई. 'इससे क्या फर्क पड़ता है कि भारत की एक विशाल जनता में से कुछ हिन्दुओं को थोडा अधिक फायदा हो अथवा कुछ मुसलमानों की स्थिति कुछ हिन्दुओं को थोडा अधिक फायदेमन्द हो। राष्ट्र के उदात लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में ऐसे छोटे विषय दीर्घकालीन उद्देश्यों को हानि पहुँचाते हैं। ऐसा विचार भी कितना महान है जिसके अंतर्गत देशभक्ति के उच्च आदर्शों के लिए हिन्दू, पारसी एवं ईसाई कंधे मिलाकर सभी के हितार्थ आगे बढे। जब हम सब से परे, मुस्लिम केवल अपनी जाति एवं वर्ग को ही प्रमुखता देते हैं तो कितना पतन हो सकता है। मैं अपने सभी भाईयों कों निमंत्रण देता हूँ कि हम इस उदात लक्ष्य की ओर प्रतिस्पदित हों और चूकिं हम इस महान देश में रहने के कारण देश का निर्माण अलगाव के आधार पर नहीं कर सकते हमारा उत्थान या पतन एक साथ ही होगा।''

1.3.2 भारतीय साहित्य में जीवन मूल्य और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा :

साहित्य से तात्पर्य सन् 1947 के पहले तक भारतीय उपमहाद्वीप एवं तत्पश्चात् भारत गणराज्य में निर्मित वाचिक और लिखित साहित्य से है। विश्व का सबसे पुराना वाचिक साहित्य आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्त्रोत है।

भारतीय गणराज्य में 22 आधिकारिक मान्यता प्राप्त भाषाएँ है। वर्तमान समय में भारत में मुख्यतः दो साहित्यिक पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार। हिन्दी तथा कन्नड भाषाओं को पाँच-पाँच, उड़िया को चार; गुजराती, मराठी, तेलुगु और उर्दू को तीन-तीन, तथा असमिया, तमिल को दो-दों और संस्कृत को एक ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस भारतीय सहित्य की अमूल्य निधि है।

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है–उत्तर–पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू; पूर्व में उड़िया, बंगाल में असमिया; मध्य–पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। इनके अतिरिक्त कतिपय और भी भाषाएं हैं। जिनका साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं है–

जैसे कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, कोंकणी, तुलू आदि। इनमें से प्रत्येक का, विशेषतः पहली बारह भाषाओं में से प्रत्येक का, अपना साहित्य है जो प्राचीनता, वैविध्य, गुण और परिमाण–सभी की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के ही सम्पूर्ण वाङ्मय का संचयन किया जाये तो वह यूरोप के संकलित वाङ्मय से किसी भी दृष्टि से कम नहीं होगा। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृतों और अपभ्रंशों का समावेश कर लेने पर तो उसका अनन्त विस्तार कल्पना की सीमा को पार कर जाता है–ज्ञान का अपार भंडार, हिंद महासागर से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी व्यापक, हिमालय के शिखरों से भी ऊँचा और ब्रह्म की कल्पना से भी अधिक सूक्ष्म।

भारतीय साहित्य की मुलभूत एकता के आधार तत्व :

भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना स्वतन्त्र और प्रखर वैशिष्ट्य है जो अपने प्रदेश के व्यक्तित्व से मुद्रांकित है। पंजाबी और सिंधी, इधर हिन्दी और उर्दू की प्रदेश–सीमाएं कितनी मिली हुई हैं, किंतु उनके अपने–अपने साहित्य का वैशिष्ट्य कितना प्रखर है। इसी प्रकार गुजराती और मराठी का जन–जीवन परस्पर ओतप्रोत है, किन्तु क्या उनके बीच में किसी प्रकार की भ्रांति संभव है? दक्षिण की भाषाओं का उद्गम एक है : सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियां हैं, परन्तु क्या कन्नड़ और मलयालम या तमिल और तेलुगु के स्वारूप्य के विषय में शंका हो सकती है? यही बात बांग्ला, असमिया और उड़िया के विषय में सत्य है। बंगाल के गहरे प्रभाव को पचाकर असमिया और उड़िया अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये हुए हैं।

इन सभी साहित्यों में अपनी–अपनी विशिष्ट विभूतियां हैं। तमिल का संगम–साहित्य तेलगु के द्वि–अर्थी काव्य और उदाहरण तथा अवधान–साहित्य मलयालम के संदेश–काव्य एवं कीर–गीत (किलिप्पाट्टु) तथा मणिप्रवालम् शैली, मराठी के पोवाडे, गुजराती के आख्यान और फागु, बँगला का मंगल काव्य, असमिया के बरगीत और बुरंजी साहित्य, पंजाबी के रम्याख्यान तथा वीरगति, उर्दू की गजल और हिन्दी का रीतिकाव्य तथा छायावाद आदि अपने–अपने भाषा–साहित्य के वैशिष्ट्य के उज्ज्वल प्रमाण हैं।

फिर भी कदाचित् यह पार्थक्य आत्मा का नहीं है। जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचार–धाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है, इसी प्रकार इसी कारण से अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना–पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी सहज–संभव है। भारतीय साहित्य का प्राचुर्य और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी यह मौलिकता एकता और भी रमणीय है।

जन्मकाल :

दक्षिण में तमिल और उधर उर्दू को छोड़कर भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं का जन्मकाल प्रायः समान ही है। तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात कवि हैं नन्नय जिनका समय है ईसा की ग्यारहवीं सती। कन्नड का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है 'कविराजमार्ग', जिसके लेखक हैं राष्ट्रकूट-वंश के नरेश नृपतुंग (814-877 ई.) और मलयालम की सर्वप्रथम कृति हैं 'रामचरितम्' जिसके विषय में रचनाकाल और भाषा-स्वरूप आदि की अनेक समस्याएँ और जो अनुमानतः तेरहवीं शती की रचना है। गुजराती तथा मराठी का आविर्भाव-काल लगभग एक ही है। गुजराती का आदि-ग्रन्थ सन् 1185 ई. में रचित शालिभद्र सुरि का 'भारतेश्वरबाहुबलिरास' है। मराठी के आदिम साहित्य का आविर्भाव बारहवीं शती में हुआ था। यही बात पूर्व की भाषाओं में सत्य है। बँगला की चर्यागीतों की रचना शायद दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच किसी समय हुई होगी; असमिया साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण प्रायः तेरहवीं शताब्दी के अंत के हैं जिनमें सर्वश्रेष्ठ हैं हेम सरस्वती की रचनाएँ 'प्रह्लादचरित्र' तथा 'हरिगौरीसंवाद'। उड़िया भाषा में भी तेरहवीं शताब्दी में निश्चित रूप से व्यंग्यात्मक काव्य और लोकगीतों के दर्शन होने लगते हैं।

चौदहवीं शती में तो उड़िया के व्यास सारलादास का आविर्भाव हो ही जाता है। इसी प्रकार पंजाबी और हिन्दी में ग्यारहवीं शती से साहित्य उपलब्ध होने लगता है। केवल दो भाषाएँ ऐसी हैं जिनका जन्मकाल भिन्न है—तमिल, जो संस्कृत के समान प्राचीन है (यद्यपि तमिल-भाषी उसका उद्गम और भी पहले मानते हैं) और उर्दू, जिसका वास्तविक आरम्भ पंद्रहवीं शती से पूर्व नहीं माना जा सकता। हालाँकि कुछ विद्वान उर्दू का भी उद्भव 13-14 वीं शती के बाबा फ़रीद, अब्दुल्ला हमीद नागोरी तथा अमीर खुसरो की रचनाओं से मानने लगे हैं।

विकास के चरण:

जन्मकाल के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय साहित्यों के विकास के चरण भी प्रायः समान ही हैं। प्रायः सभी का आदिकाल पन्द्रहवीं शती तक चलता है। पूर्वमध्यकाल की समाप्ति मुगल-वैभव के अन्त अर्थात शती के मध्य में तथा सत्रहवीं शती के मध्य में तथा उत्तर मध्याकाल की अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के साथ होती है और तभी से आधुनिक युग का आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्यों का विकास-क्रम लगभग एक-सा ही है; सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त हैं। इस समानांतर विकास-क्रम का आधार अत्यंत स्पष्ट है और वह है भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विकास-क्रम।

समान राजनीतिक आधारभूमि:

बीच-बीच में व्यवधान होने पर भी भारतवर्ष में शताब्दियों तक समान राजनीतिक व्यवस्था रही है। मुगल-शासन में तो लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम में घनिष्ठ संपर्क बना रहा। मुगलों की सत्ता खंडित हो जाने के बाद भी यह संपर्क टूटा नहीं। मुगल-शासन के पहले भी राज्य-विस्तार

के प्रयत्न होते रहे थे। राजपूतों में कोई एक छत्र भारत-सम्राट तो नहीं हुआ, किंतु उनके राजवंश भारतवर्ष के अनेक भागों में शासन कर रहे थे। शासन भिन्न-भिन्न होने पर भी उनकी सामंतीय शासन-प्रणाली प्रायः एक-सी थी। इसी प्रकार मुसलमानों की शासन प्रणाली में भी स्पष्ट मूलभूत समानता थी। बाद में अँग्रेजों ने तो केन्द्रीय शासन-व्यवस्था कायम कर इस एकता को और भी दृढ़ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से भारत के विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य रहा है।

समान सांस्कृतिक आधारभूमि:

राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का साम्य और भी अधिक रहा है। पिछले सहस्राब्द में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन ऐसे हुए जिनका प्रभाव भारतव्यापी था। बौद्ध-धर्म के ह्रास के युग में उसकी कई शाखाओं और शैव-शाक्त धर्मों के संयोग से नाथ-संप्रदाय उठ खड़ा हुआ जो ईसा के द्वितीय सहस्राब्द के आरंभ में उत्तर में तिब्बत आदि तक, दक्षिण में पूर्वी घाट के प्रदेशों में, पश्चिम में महाराष्ट्र आदि में और पूर्व में प्रायःसर्वत्र फैला हुआ था। योग की प्रधानता होने पर भी इन साधुओं की साधना में, जिनमें नाथ, सिद्ध और शैव सभी थे, जीवन के विचार और भाव-पक्ष की उपेक्षा नहीं थी और इनमें से अनेक साधु आत्माभिव्यक्ति एवं सिद्धांत-प्रतिपादन दोनों के लिए कवि-कर्म में प्रवृत्त होते थे। भारतीय भाषाओं के विकास के प्रथम चरण में इन सम्प्रदायों का प्रभाव प्रायः विद्यमान था। इनके बाद इनके उत्तराधिकारी संत-सम्प्रदायों और नवागत मुसलमानों के सूफी-संत का प्रसार देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने लगा। संत-संप्रदाय वेदांत दर्शन से प्रभावित थे और निर्गुण भक्ति की साधना तथा प्रचार करते थे। सूफी धर्म में भी निराकार ब्रह्म की ही उपासना थी, किंतु उसका माध्यम था उत्कट प्रेमानुभूति।

सूफी-संतो का यद्यपि उत्तर-पश्चिम में अधिक प्रभुत्व था, फिर भी दक्षिण के बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों में भी इनके अनेक केंद्र थे और वहाँ भी अनेक प्रसिद्ध सूफी संत हुए। इनके पश्चात् वैष्णव आंदोलन का आरंभ हुआ जो समस्त देश में बड़े वेग से व्याप्त हो गया। राम और कृष्ण की भक्ति की अनेक मधुर पद्धतियों की देश-भर में प्रसार हुऐ और समस्त भारतवर्ष सगुण ईश्वर के लीला-गान से गुंजारित हो उठा। उधर मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव भी निरंतर बढ़ रहा था। ईरानी संस्कृति के अनेक आकर्षक तत्त्व-जैसे वैभव-विलास, अलंकरण सज्जा आदि भारतीय जीवन में बड़े वेग से घुल-मिल रहे थे और एक नयी दरबारी या नागर संस्कृति का आविर्भव हो रहा था। राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव के कारण यह संस्कृति शीघ्र ही अपना प्रसादमय प्रभाव खो बैठी और जीवन के उत्कर्ष एवं आनन्दमय पक्ष के स्थान पर रुग्ण विलासिता रह गयी। तभी पश्चिम के व्यापारियों का आगमन हुआ जो अपने साथ पाश्चात्य-शिक्षा का संस्कार लाये और जिनके पीछे-पीछे मसीही प्रचारकों के दल भारत में प्रवेश करने लगे। उन्नीसवीं शती में अंग्रेजी का प्रभुत्व सारे देश में स्थापित हो गया और शासक वर्ग सक्रिय रूप से योजना बनाकर अपनी शिक्षा, संस्कृति और उनके माध्यम से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अपने धर्म का प्रसार करने लगा। प्राच्य और पाश्चात्य के इस संपर्क और संघर्ष से आधुनिक भारत का जन्म हुआ।

समान साहित्यिक आधारभूमि:

भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं है, फिर भी उनका साहित्यिक आधारभूमि एक ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात्य साहित्य-अर्थात् कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, श्रीहर्ष, अमरूक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला। शास्त्र के अन्तर्गत उपनिषद्, षड्दर्शन, स्मृतियाँ आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक अमर ग्रन्थ-नाट्यशास्त्र, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि की विचार-विभूति का उपयोग भी सभी ने निरन्तर किया है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये अक्षय प्रेरणा-स्रोत हैं जो प्रायः सभी को समान रूप से प्रभावित करते रहे हैं। इनका प्रभाव निश्चय ही अत्यन्त समन्वयकारी रहा है और इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता स्वतः ही आ गई है।इस प्रकार समान राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आधारभूमि पर पल्लवित-पुष्पित भारतीय साहित्य में जन्मजात समानता एक सहज घटना है।

भारतीय साहित्य – एक विहंगम् दृष्टि :

सबसे पुराना जीवित साहित्य ऋग्वेद है जो संस्कृत भाषा में लिखा गया है। संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि अनेक भाषाओं से गुजरते हुए आज हम भारतीय साहित्य के आधुनिक युग तक पहुंचे हैं। भारत में ३० से भी ज्यादा मुख्य भाषाएँ हैं और १०० से भी अधिक क्षेत्रीय भाषाएँ है। लगभग हर भाषा में साहित्य का प्रचुर विकास हुआ है। भारतीय भाषाओं के साहित्य में लिखित और मौखिक दोनो ही महत्त्वपूर्ण हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में हिन्दू धार्मिक ग्रंथो की अहम भूमिका रही। वेदों के साथ-साथ रामायण और महाभारत जैसे महाग्रंथ प्राचीन भारत में रचे गए। अन्य प्राचीन ग्रंथो में वास्तु शास्त्र, कौटिल्य अर्थ-शास्त्र, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि प्रमुख है।

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका:

कोई मधुकोष काट लाया था,
मैंने निचोड़ लिया।
यो मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ
काव्य-तत्त्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?
चाहता हूँ आप मुझे
एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।
परप्रतिमा-अरे, वहतो
जैसी आप को रुचे आप स्वयं गढ़े।

उपर्युक्त पंक्तियाँ सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की नया कवि, आत्म-स्वीकार से उद्धृत हैं। अज्ञेय ने रचना सृजन के दौरान की मनोस्थिति को बहुत ही सुंदर तरीके से यहाँ अभिव्यक्त किया है। साहित्य का आविर्भाव भी इसी समाज से होता है जिसे रचनाकार अपने भावों के साथ मिलाकर उसे एक आकार

देता है। यही रचना समाज के नवनिर्माण में पथप्रदर्शक की भूमिका निभाने लगती है। अज्ञेय मानते हैं कि साहित्यकार होने के नाते अपने समाज के साथ उनका एक विशेष प्रकार का संबंध है- समाज से उनका आशय चाहे हिंदी भाषी समाज रहा हो जो कि उनका पहला पाठक होगा, चाहे भारतीय समाज जिसके काफी समय से संचित अनुभव को वे वाणी दे रहे होंगे, चाहे मानव समाज हो जो कि शब्द मात्र में अभिव्यक्त होने वाले मूल्यों की अंतिम कसौटी ही नहीं बल्कि उनका स्रोत भी है ।

हम पाते हैं कि साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

साहित्य में मूलत: तीन विशेषताएँ होती हैं जो इसके महत्त्व को रेखांकित करती हैं। उदाहरणस्वरूप साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालाँकि जहाँ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन वृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएँ कौन-सी है, और जहाँ इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परीक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है और उसके समाज दर्शन का लक्ष्य क्या है? हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभाव: साहित्यम्। यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र-वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाजदर्शन शूल-कंटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार

का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी-कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा, ''जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।''

प्रेमचंद का किसान-मज़दूर चित्रण उस पीड़ा व संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी अविकसित एवं शोषित वर्ग गुज़र रहा है। साहित्य में समाज की विविधता, जीवन-दृष्टि और लोककलाओं का संरक्षण होता है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामाजिक संस्कारों का परिष्कार होता है। रचनाएँ समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती हैं। यही दृष्टिकोण साहित्य को मनुष्य जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध करते हैं।

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती है कि-

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिये कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की।

आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने

में जुटा है। वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित हैं। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही हैं। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्त्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

1.3.4 भारतीय साहित्य में आज के भारत का बिंब :

विभिन्न भाषाओं में लिखी गई विधा या विभिन्न भाषामें लिखा गया भारतीय साहित्य भारतीय समाज के स्वरूप को प्रतिबिंबत करता है। भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संरचना एवंम् उनके प्रभाव का दस्तावेज है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में अनेक विषयों पर साहित्य लिखा गया है। महानगर हो, ग्राम हो, नारी, दलित, आदिवासी, धर्म विमर्श आदि अनेक ऋषिओं द्वारा भारतीयता का बिंब उभरता है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इंडियन इंग्लिश अर्थात भारतीय अंग्रेजी लेखन और प्रवासी भारतीय लेखन द्वारा भी भारत की छबी उभरती है।

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का देश है – उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू, पूर्व में उडिया, बंगाली और असमिया, मध्य-पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, कन्नड़, मलयालम और तेलुगु आदि हैं। इनके अतिरिक्त और भी भाषाएँ हैं जिनका साहित्य और भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं हैं। जैसे-कश्मीरी, डोगरी, सिन्धी, कोंकणी, तूरू आदि हैं। पंजाबी और सिन्धी, हिंदी और उर्दू की प्रदेश सीमाएं कितनी मिली जुली हुई हैं। इसी प्रकार मराठी और गुजराती का जन जीवन ओत प्रोत है। दक्षिण भाषाओं का उद्गम एक है: सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं। परन्तु क्या कन्नड़ या मलयालम या तमिल और तेलुगु स्वरुप के विषय में शंका हो सकती है! यही बात उडिया, बंगला और असमिया के विषय में सत्य है। बंगला के गहरे प्रभाब को पचाकर असमिया और ओडिया अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये हुए है।

दक्षिण में तमिल और उर्दू को छोड़ भारत की लगभग सभी भाषाओं का काल प्रायः समान है। प्रायः सभी भाषाओं का आदिकाल पंद्रहवीं सदी तक चलाया। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अधिकांश सीहित्यों का विकासक्रम लगभग एक सा है; सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त है।

भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं हैं, फिर भी उनका साहित्यिक लक्ष्य समान है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात साहित्य, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला। शास्त्र के अंतर्गत उपनिषद, षडदर्शन, स्मृतियां आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक ग्रन्थ-नाट्यशास्त्र, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि की विचार-विभूति का उपियोग भी सभी ने निरंतर किया है।

इन समान प्रवृत्तियों का संक्षेप में विश्लेषण करना समीचीन होगा।

सबसे पहली प्रवृति जो भारतीय वाड्मय में प्राय समान मिलती है, नाथ साहित्य है। दो चार को छोड़ सभी भाषाओं के प्रारंभिक साहित्य के विकास में नाथ पंथियों तथा शैवसाधुओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वभावतः नाथ साहित्य का सृजन दक्षिण में उत्तरी और पूर्वी भारत के अपेक्षा बहुत कम हुआ है मराठी और बंगाल में नाथ साहित्य की विशिष्ट धारा प्रवाहित हुई। मराठी में तो स्वयं गोरख नाथ की वाणी मिलती है। बंगाल वस्तुत: नाथ संप्रदाय का गढ़ था। गुण और परिणाम दोनों की ओर से बंगाल का नाथ साहित्य समृद्ध है। उसमें बौद्धों के सहजिया संप्रदाय का साहित्य और चर्या गीत आदि की धारा भी घुलमिल गयी है। बंगाल के बाद इस सम्प्रदाय का दूसरा विकास केंद्र था पंजाब ओडिशा और असाम में भी इस तरह के साहित्य लिखे गये हैं।

दूसरी आरंभिक प्रवृति चारण काव्य है। यह भी अधिकांश भाषाओं में प्रायः सामान है अपनी प्राचीनता के अनुरूप ही तमिल में चारण काव्य संगम काल के आरंभ से ही मिलता है। संगमकाल का प्रसिद्ध महाकाव्य 'सिलाप्पदिकारम' भी एक प्रकार का चारण काव्य है। तेलगु में 'पालनाटिवीर चरितम', मलयालम में 'पद्मय पटटकल', मराठी के मध्ययुगीन 'विराख्याना अथवा वीरगीत रूप पोवाडे' चारण काव्य, गुजराती साहित्य में श्रीधर चरित 'रणमल छंद' और पद्मनाभा का 'कन्हडदे', पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह का 'अमर काव्य', हिंदी में 'पृथ्वीराज रासो', 'आल्हाखंड', फिर भूषण, सूदन आदि की रचनायें चारण काव्य के अमूल्य उदाहरण हैं।

भारतीय काव्य की तीसरी प्रमुख प्रवृति है संत काव्य। इसकी परंपरा भी प्राय: सर्वत्र विद्यमान है तमिल के अठारह सिद्ध संत कवि थे जिन्होंने सरस वाणी में रहश्य वादी रचनाएँ की हैं। तेलुगु के वेमन, वीरब्रह्मम और कनड़ के सर्वज्ञ आदि इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं मराठी का संत काव्य तो अत्यंत प्रसिद्ध है ही। गुजरात में भी संत कवि प्रीतम दास की कविताओं में हैं। ओडिशा में महिमा धर्म के संत कवि भीम भोई की कविताओं में मिलती है।

अब प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा पर बात करे तो वह भी भारतीय भाषाओं में प्राय समान रूप से व्याप्त है। पंजाब और हिंदी में प्रेमाख्यान की परंपरा अत्यंत विस्तृत है।

भारतीय वाड्मय की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है वैष्णव काव्य जो उतना ही व्यापक भी है। तमिल में वैष्णव काव्य का संग्रह 'नालायिर प्रबंधम' के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन कन्नड़ सहित्य के इतिहास का तृतीय चरण वैष्णव काल के नाम से प्रसिद्ध है। मलयालम प्रमुख वैष्णव काव्य है एजुत्तच्चन की 'अध्यात्म रामायण'। वैष्णव काव्यधारा का सबसे अधिक गति गुजरती और पूर्वी भाषाओं–अर्थात बंगला, असमिया और ओडिया के साहित्य में देखने को मिलता है।

भारतेंदु और उनके मंडल के कवियों ने साहित्य का प्राचीन रूपों का नवीकरण और अनेक नवीन रूपों का सृजन कर नव जीवन की चेतना को अभिव्यक्त किया उसी समय पंजाब में गुरुमुख सिंह मुसाफिर, हिरासिंग दर्द आदि कवि राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य की रचना कर रहे थें। हिंदी में राष्ट्रीयता की भावना

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और 'नवीन' के काव्यों में प्रचुर परिमाण में मिलता है। आधुनिक साहित्य की और एक प्रमुख प्रवृत्ति है स्वछंदतावाद। इस धरा के प्रमुख कवि हैं- प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी आदि।

आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी स्वतंत्रता की प्राप्ति, जिसने सभी भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया। भारत ने सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त अपनी स्वतंत्रता को विश्वमुक्ति के रूप में ग्रहण किया है। भारत की सभी भाषाओं में इस अवसर पर मंगलगान लिखे गए जो सात्त्विक उल्लास और लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत है।

विगत शताब्दी, स्वतंत्रता से पूर्व सं 1947 तक आधुनिक साहित्य के सामान्यत: चार चरण हैं: 1- पुनर्जागरण, 2- जागरण सुधारकाल, 3- रोमानी सौंदर्य दृष्टि का उन्मेष तथा 4- साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय। तमिल के पुनर्जागरण के नेता थे रामलिंग स्वमिगल - इन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के पुनरुथान का प्रयत्न किया कवि सुब्रमन्य भारती ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रांति को अपने, काव्य में वाणी प्रदान की। तेलगु में पुनर्जागरण का नेतृत्व विरेशलिंगमने किया मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी नवजागरण का सुत्रपात हुआ। भारतीय भाषाओं का सबसे समृद्ध आधुनिक साहित्य है बंगाली साहित्य। उन्नीसवी सदी में राजा राममोहनराय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि की प्रेरणा से पूरे बंगाल साहित्यकारों में नवीन धारा प्रवाहित होने लगी। इस तरह ओडिया, असामी और अन्य भाषाओं में भी नवजागरण का प्रभाव दिखाई देता है।

अबतक भारतीय वाड्मय की केवल विषय वस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर संकेत किया है, किन्तु काव्य शैलियों और काव्य रूपों की समानता भी कम महत्वपूर्ण नहीं। भारत के प्रायः सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य शैलियां - महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परंपरा की भी अनेक शैलियाँ, जैसे चरित काव्य, प्रेमगाथा शैली, रस, पद शैली आदि समान रूप में मिलती हैं। अनेक वर्णिक छंदों के अतिरिक्त अनेक देसी छंद दोहा, चौपाई आदि भारतीय वाड्मय के लोकप्रिय छंद हैं। इधर - आधुनिक युग के पश्चिम के अनेक काव्य रूपों और छंदों का जैसे प्रगित काव्य और उसके अनेक भेदों, जैसे संबोधन गीत, शोक गीत, चतुर्दशपीका और मुक्त छंद, गद्य गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओं में हो चुका है।

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय साहित्य अनेक भाषाओं में रचित एक विचारधारा में प्रवाहित साहित्य हैं।

1.3.5 भारतीय साहित्य : बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता :

बहुभाषिकता की स्थिति भारतीय समाज का सहज लक्षण है। यहाँ मातृभाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं को सहज रूप में अपनाए जाने की प्रवृत्ति रही है क्योंकि व्यापक समुदाय से जुड़ाव, शिक्षा और व्यवसाय की जरूरतों के चलते भारतीयों को अपनी बोली, क्षेत्रीय भाषा, राजभाषा हिंदी और अंग्रेजी से जुड़ने की जरूरत होती है।

''संस्कृति'' संस्कार मूलक होती है! 'संस्कृति' वातावरण का मानव निर्मित भाग है! निर्माण की शक्ति मानव को प्रकृति की देन है-संस्कृति, किन्तु संस्कृति स्वयं मानव का स्वतंत्र अविष्कार है। संस्कृति की अपेक्षा समूह में अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित होती है समुह तथा उसकी संस्कृति शब्द के प्रयोग से साहित्य-जन, संगीत, नाटक, नित्य, चित्र, स्थापन आदि कलाओं का सामूहिक रूप से बोध होता है इस कला समूह में मनुष्य समाज की वे! गतिविधियाँ और क्रिया कलाप भलीभूत होते हैं जिनकी सार्थकता महज उनकी उपयोगिता में नहीं, वरन इस बात में भी है कि वे साथ ही साथ आनंद के श्रोत भी है।

संस्कृति बड़ा व्यापक शब्द है। परिस्थिति, वातावरण आदि अनेक कारणों से एक जाति से दूसरी जाति, एक देश से दूसरा देश, एक युग से दूसरा युग अलग पहचान बनाते है। सभी संस्कृतियों की कतिपय मूल और बुनयादी धारणाएँ होती है जो शाश्वत मूल्य कहलाते है। परन्तु संस्कृति निश्चित मात्रा नहीं हैं। वह बाह्य प्रभावों से बदलती भी रहती है। भारतीय संस्कृति, यूनानी संस्कृति, चीनी संस्कृति, मिस्र संस्कृति, प्राच्य संस्कृति, की मूल अवधारणाएँ हैं परन्तु आपसी प्रभाव भी हैं!

भारतीय सनातन संस्कृति :

संस्कृति का स्थूल इतिहास होता हैं और सूक्ष्म इतिहास तथा स्थूल इतिहास की प्रतिनिधि तो संस्कृति की विविध संस्थाएँ हैं। और सूक्ष्म इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं उसके संत, महात्मा और अन्य आदर्श चरित्र नायक जो उसके मानों मर्यादाओं-मूल्यों- के धनीभूत प्रतिफलन प्रतीत होते हैं और दूसरी ओर उसका साहित्य और कला जिसमें संस्कृति की साधना के इतिहास के विविध चरण देखें जा सकते हैं!

नूतत्वविज्ञान, समाजविज्ञान आदि में संस्कृति का प्रायः स्थूल इतिहास होता हैं। संस्कृति के आधार पर विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता हैं।

बहुत स्थूल रूप से भारत नामक भूखण्ड में निवास करने वाली मानव जाति की संस्कृति में समानता है। ''भारतीय जीवन व्यवस्था पिछले छः हजार वर्षों से उतार चढ़ाव और परिवर्तनों के बावजूद अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखा। यह सामासिक संस्कृति बनकर उभरी है। जिसमें इस्लामी, ईसाई और मार्क्सवादी एवं अस्तित्वाद जैसी विचार धाराओं को भी- भारतीय संस्कृति का स्वरूप विवादग्रस्त और विरोधभासी भी रही है। दृष्टिकोण के आधार पर इसमें दो धाराएँ है।

1. सांप्रदायिक दृष्टिकोण अन्यंत संकीर्ण है।
2. प्रगतिशील एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण व्यापक है!

भारतीय साहित्य के अंतर्गत भिन्न भाषा :

आज विश्व 'ग्लोबल विलेज़' में बदल चुका है। वैश्विकरण एवं बहुभाषिकता, विभिन्न देशों की संस्कृतियों, भाषाओं एवं भौगोलिक सीमाओं में परस्पर आदान-प्रदान के कारण उत्पन्न एवं समन्वित स्थिति एवं स्वरूप की ही देन है। काफ़ी हद तक यह स्थिति विभिन्न देशों के साहित्य के परस्पर अनुवाद के कारण ही संभव हो पाई है। इसलिए आज के इस साइबर युग में सृजनात्मक ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ साहित्य के अनुवाद का भी अत्यधिक महत्त्व है। इस आधार पर अगर वर्तमान युग को अनुवाद का युग कहें तो कोई

अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह हम सहज रूप से ही समझ सकते हैं कि अगर 'अनुवाद की कला' न होती तो विश्व साहित्य और विश्व-संस्कृति जैसी सभी अवधारणाएँ मात्र काल्पनिक ही रह जाती।

विश्व संस्कृति के विकास में अनुवाद का योगदान अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। धर्म एवं दर्शन, साहित्य, शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी, वाणिज्य एवं व्यवसाय, राजनीति एवं कूटनीति जैसे संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का अनुवाद से अभिन्न संबंध रहा है। संस्कृति की प्रगति भी अंशत: अनुवाद पर आश्रित है। अत: अनुवाद को हम एक ऐसे उपकरण के रूप में देख सकते हैं जो संस्कृति के भौतिक, भावनापरक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं को गतिशील बनाने में योगदान करती है। विश्व के विभिन्न भौगोलिक खंडों में संस्कृति का जो विकास हुआ है, वे एक दूसरे के पूरक हैं। विश्व संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया में विचारों के आदान-प्रदान का बड़ा हाथ रहा है। और वह आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाया है। उदाहरण के लिये बाइबिल तथा पाश्चात्य साहित्य का भारतीय भाषाओं में और भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों एवं भारतीय साहित्य का यूरोपीय भाषाओं में जो अनुवाद हुआ, उसने पूर्व एवं पश्चिम के की दूरी और पार्थक्य की पुरानी धारणा को तोड़ा वहीं हमें एक दूसरे की संस्कृति से परिचय करवाया तथा वही परिचय हमारी विकास यात्रा में सहायक सिद्ध हुई। अनुवाद भाषाओं और संस्कृतियों के बीच, बौद्धिक उपलब्धियों के बीच और विज्ञान और अध्यात्म के बीच संवाद का सेतु है। अनुवाद का अर्थ ही है मसेतु बन कर दो अनजान संस्कृतियों और भाषा समुदाय के बीच संवाद स्थापित करना और इसमें अनुवाद सदा ही सफल रहा है। इस पर संदेह नहीं किया जा सकता।

आज अनुवाद की प्रासंगिकता दिनों-दिन बढ़ रही है। अनुवादक पुन:सर्जक हो गया है। दोहरे जोखिम के इस कार्य की पूर्ति हेतु उसने तलवार की धार पर दौड़ने की कला सीखनी प्रारंभ कर दी है। वह दो संस्कृतियों, विचारधाराओं, चिंतन परंपराओं, भाषिक संस्कारों, रीति-रिवाजों, एवं अवधारणाओं के बीच सेतु निर्माण का कार्य करने लगा है। स्वत: सुखाय या जीवकोपार्जन हेतु अनुवाद कार्य के प्रति समर्पित होने वाला अनुवादक अब परकाया-प्रवेश की प्रक्रिया से गुज़रने लगा है। इस प्रक्रिया से गुज़रने का धैर्य और क्षमता किसी साधक के पास ही हो सकती है। अनुवाद करने की मूलभूत शर्त है। ईमानदारी और निष्ठा है। यदि अनुवादक को हम एक सेतु निर्माण करनेवाले के रूप में देखें तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूरी ईमानदारी से पुख्ता और चिरस्थायी सेतु का निर्माण करे।

वैज्ञानिक आविष्कारों एवं सूचना क्रांति, के इस दौर में ज्यों-ज्यों विश्व दृष्टि का निर्माण होने लगा है। मानवीय जीवन के सरोकार एक सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर विश्वव्यापी स्तर पर महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगे है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि संसार के विभिन्न वर्गों के समस्त लोग एक-दूसरे को जानने-पहचानने के लिए उत्सुक हों। इसके परिणामस्वरुप चिकित्सा, तकनीकी वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक आदान-प्रदान होने के कारण मानव के जीवन-मूल्यों एवं अंतर्राष्ट्रीय सोच के परस्पर संवाद से अजनबीपन का कोहरा छँटने लगा है। भौगोलिक सीमाओं के आर-पार एक परिचित एवं आत्मीय वातावरण बनने लगा है। एक देश अथवा संस्कृति की भाषा अपनी साहित्यिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को किसी

दूसरे देश, भाषा अथवा संस्कृति तक पहुँचने के लिए अनुवाद का ही सहारा लेते हैं। और एक नयी सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परंपरा चल पड़ी।

इतिहास गवाह है कि यदि तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान, कला तथा साहित्य की रक्षा अन्य भाषाओं के अनुवादकों ने न की होती तो उनकी गौरव-गाथाओं को कब का भुला दिया गया होता। सभ्यताओं के विनाश के साथ ही तक्षशिला, नालंदा, एथेंस, बग़दाद, फ्लोरेंस आदि स्थानों पर रचा गया महान साहित्य कब का नष्ट हो गया होता। साहित्य चाहे भारतीय हो अथवा विदेशी, लेखक और अनुवादक के बीच शताब्दी से एक ऐसा अटूट और अंतरंग रिश्ता चला आ रहा है कि जिसका लाभ हर युग और हर भाषा के पाठक ने उठाया है। इस दिशा में विश्व की सर्व प्रमुख भाषाओं में एक हमारी हिन्दी ने भी अपनी अहम भूमिका निभायी है।

यदि प्राचीन साहित्य के अनुवाद न किए गए होते तो आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि विदेशों में तो क्या शायद स्वयं अपने देश में भी इतने चिरंजीवी न होते। अनुवाद न होता तो अरस्तु, प्लेटो, सुकरात, दांते, वर्जिल, मोपांसा, टॉलस्टॉय, पूश्किन, गोर्की, उमर खैयाम, शेक्सपियर, शैली, बायरन, कीट्स, आदि महान लेखकों की विचार संपदा से सारा विश्व कैसे लाभान्वित होता? रवीन्द्रनाथ, बंकिम और शरत्चन्द्र केवल बंगाल तक ही सीमित रह जाते। तुलसी तथा प्रसाद के काव्य का रसास्वादन अन्य भाषाओं के पाठक कैसे कर पाते? चीन, जर्मनी, रूस, कोरिया, जापान आदि के लोक-कथाओं के साथ भारतीय लोक कथाएँ भी सामने आ नहीं पाती। पंचतंत्र, जातक कथाएँ, एवं हितोपदेश आदि की कथाएँ, जो बच्चों को रोचक ढंग से नैतिक आचरण की शिक्षा देती हैं, वे विनष्ट हो गई होतीं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दो भाषाओं के बीच की दूरी मिटाने में अनुवाद ने ही सर्वाधिक योगदान किया है। आज के युग में उन प्रमुख देशों में बहुभाषिकता की स्थिति देखने को मिलती है जहां कई जातियां और भाषाओं के बोलने वाले रहते आए हैं। किंतु किसी भी व्यक्ति के लिए सभी भाषाओं को जानना संभव नहीं है। और साहित्य के क्षेत्र में इसके बिना काम भी नहीं चलता, क्योंकि मानव एक-दूसरे पर निर्भर है। ऐसी स्थित में लोगों के भावों-विचारों को अभिव्यक्त करने का कार्य आसान काम नहीं है। इसलिए इस बहुभाषिकता के सम्मान एवं परस्पर संवाद के लिए अनुवाद कार्य की सहायता लेना ज़रूरी हो जाता है। विभिन्न संस्कृतियों एवं समाजों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को माध्यम बनाना हमारी विवशता है। सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में बदलती हुई परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई नई संभावनाओं ने इसके अनुवाद की उपादेयता को और अधिाक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। आज विभिन्न देशों की संस्कृतियों की विपुल संपदा हमारे सामने है और हम उनसे सांस्कृतिक आदान-प्रदान करते हुए उनकी सांस्कृतिक विरासत से भली-भाँति परिचित होना चाहते है। यह बात नि:संकोच कही जा सकती है कि किसी उत्कृष्ट कलेवर में, उसी प्रकार के वातावरण में, वैसी ही विशेषताओं सहित पढ़ सकना कई बार संभव नहीं हो पाता।

अनुवाद एक ऐसा सटीक माध्यम है जिसके द्वारा पाठक वांछित क्षेत्र में अपनी जिज्ञासा-पूर्ति कर सकता है। शताब्दियों से अनेक लेखक अनुवाद की इस उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका को निभाते चले आ रहे हैं। भारतेंदु, प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ, दिनकर, जैनेन्द्रकुमार, बच्चन, अमृतराय, अमृता प्रीतम, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, अज्ञेय, राजेन्द्र यादव एवं कमलेश्वर आदि ने विभिन्न भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पाठकों को उपलब्ध कराया है।

जिस तरह यूरोप के नवजागरण में ग्रीक एवं लैटिन के ग्रंथों के अनुवाद की बलवती भूमिका रही है आधुनिक भारत के सांस्कृतिक नवोत्थान में भी पश्चिमी साहित्य के अनुवादों का बड़ा हाथ रहा है। इन अनुवादों ने भारतीयों के दिल में एक नयी प्रेरणा भर दी थीं और अपनी प्राचीन संस्कृतियों को नयी दृष्टि से देखने के लिए उन्हें मजबूर किया था। भारतीय संस्कृति का मूल रूप यदि आज भी भारतीय जनता के जीवन में ज्यों का त्यों लिया जाता है तो उसका श्रेय रामायण, महाभारत, भागवत आदि के आधुनिक भारतीय भाषाओं में किये गये अनेक रूपांतरों को प्राप्त है। आज संप्रेषण के साधनों के आविष्कारों के कारण सारा विश्व इतना छोटा बन गया है कि एक देश के लोग दूसरे देश के जीवन और गतिविधियों के बारे में जानने के लिऐ बहुत ही उत्सुक रहते हैं। विश्व मैत्री एवं सहयोग के इस नये दौर में किसी भी प्रदेश की जनता को समझने के लिए उस देश या प्रदेश के साहित्य को समझना अत्यंत अनिवार्य हो गया है।

हमारे यहाँ साहित्यिक कृतियों को पारस्परिक अनुवाद के जरिए देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक पहुँचाने की लम्बी परंपरा रही है, यह सभी जानते हैं। यह एक स्वाभाविक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसके लिए न तो किसी संस्था की मध्यस्थता की ज़रूरत रहती है और न सरकारी अनुदान की। हमारी बहुभाषिक संस्कृति में राजाश्रय प्राप्त फ़ारसी अंग्रेज़ी के प्रवेश से बहुत पहले साहित्यिक आदान-प्रदान हमारी विरासत का अभिन्न हिस्सा था। उन्नीसवीं शताब्दी में जब उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी हुई तो अंग्रेज़ी से हिन्दी और भारतीय भाषाओं में अनुवाद इस जटिल आवाजाही में एक नए तत्त्व के रूप में शामिल हुआ लेकिन यहाँ मौजूद दूसरे तत्त्वों, मसलन मराठी, कन्नड या बांग्ला-हिंदी अनुवाद की अहमियत को वह कभी भी खत्म नहीं कर सकी। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने जोर पकड़ने के पहले से ही, अंग्रेजी भारत में केंद्रीय स्थान हासिल कर चुकी थी। दूसरी भारतीय भाषाएँ हिन्दी माध्यम के चलते एक दूसरे के समीप एक नए रूपाकार में सामने आई है। मसलन उपन्यास को ही लें, पिछले पन्द्रह-बीस सालों से भारतीय भाषाओं के उपन्यासों के अंग्रेज़ी अनुवादों ने अकल्पनीय गति पकड़ी है। देश के हर अंग्रेज़ी प्रकाशक के पास इस समय अनूदित उपन्यासों की एक लम्बी सूची है। अगर हाल के कुछ विदेशी भाषा से अनूदित कृतियों पर नजर डाले तों उनमें से प्रमुख हैं- अन्ना कारेनिना (लेव तोल्स्तोय, अनु. मदनलाल मधु), धीरे बहे दोन रे (मिखाइल शेलोखोव, अनु. गोपीकृष्ण मगोपेशफ), सुर्ख और स्याह (स्तांधल, अनु. नेमिचन्द्र जैन), कला के सामाजिक उद्गम (गिओर्गी प्लेखानोव, अनु. विश्वनाथ मिश्र), स्त्री अधिकारों का औचित्य (मेरी वोल्स्नक्राफ्ट, अनु. मीनाक्षी), मपुनरुथानफ (लेव तोल्स्तोय, अनु. भीष्म साहनी), जिन्दगी से प्यार और अन्य कहानियाँ (जैक लण्डन, अनु. सत्यम), 'फांसी के तख्ते से' (जूलियस फ्यूचिक, नेमिचन्द्र जैन और अमृतराय), रोमियो जूलियट और अंधेरा, आर यू आर, प्राग वर्ष, (निर्मल वर्मा) और मज़ाक (हरिमोहन शर्मा) आदि। आज

मौलिक साहित्य से अधिक विदेशी या अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुदित कृतियों के पाठक हैं। इस दिशा में राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संवाद प्रकाशन आदि मुख्य रूप से सामने आए हैं जो अनुदित साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित करते हैं, वहीं ग्रंथशिल्पी, आदि प्रकाशन आलोचनात्मक, एवं गैर-साहित्यिक पुस्तकों को प्रकाशित कर हिन्दी को समृद्ध कर रहे हैं।

पारस्परिक अनुवाद के इस क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के बीच काफ़ी असमानता पाई जाती है। हिन्दी और मलयालम इस मामले में सबसे आगे हैं। अन्य भारतीय भाषाओं से असाधारण औपन्यासिक कृतियों को अपनी भाषा में उपलब्ध कराने में कोई दूसरी भारतीय भाषा उनकी बराबरी नहीं कर सकती। अनेक बांग्ला कृतियों, विशेषकर उपन्यासों का हिन्दी समेत अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। विदेशी भाषाओं को लें तो सबसे अधिक अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, पोलिस आदि से अनुवाद हुए हैं लेकिन आंशिक रूप से हंगारी, रोमानी, चेक, जापानी, कोरियाई आदि से भी अनुवाद हुए हैं।

अनुवाद के शुरूआती दौर पर एक नजर डालें तो हम पाते हैं कि भारतेंदु तथा उस युग के अन्य लेखक अनुवाद-कार्य के महत्त्व को अच्छी तरह जानते थे। भारतेंदु ने स्वयं तो अंग्रेज़ी, संस्कृत और बांग्ला से अधिसंख्य अनुवाद किए ही, अपने समकालीन साहित्यकारों को भी इसके लिए पेरणा दी। इसी प्रेरणा के कारण भारतेंदु और भारतेंदु मंडल के अन्य लेखकों द्वारा संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेज़ी नाटकों और उपन्यासों के प्रचुर मात्रा में अनुवादों ने जिस परंपरा की शुरूआत की जिसकी परिणति यह हुई कि लम्बे समय तक हिंदी के अधिकांश रचनाकार अच्छे अनुवादक भी हुए।

भारतेंदु देश की उन्नति के लिए अन्य भाषाओं के ग्रंथों को हिन्दी में अनूदित करना आवश्यक समझते थे। उनका मानना था कि ऐसा करने से उन्हें विदेशियों की राजनीति समझ में आ जाएँगी। वे अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों को हिन्दी में अनूदित करने का आह्वान करते हुए कहते हैं-

अंगरेजी अरू फारसी अरबी संस्कृत ढेर।

खुल खजाने निहिं क्यों लूटत लावहु देश।।

सार निकाल के पुस्तक रचहु बनाई।

छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाई।।

इसी भावना से प्रेरित होकर भारतेंदु ने अंग्रेजी संस्कृत, बांग्ला, प्राकृत भाषाओं से हिंदी में अनेक अनुवाद किए। 1880 ई. में भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का दुर्लभ बंधु, बांग्ला से यतीन्द्रमोहन ठाकुर के नाटक का हिन्दी में 'विद्या सुन्दर', प्राकृत से राजशेखर के नाटक का हिन्दी में 'कर्पूर मंजरी', संस्कृत से दत्त एवं श्रीहर्ष के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इन अनुवादों से पता चलता है कि भारतेंदु का अनुवाद-संबंधी विशिष्ट दृष्टिकोण था। उनका कहना है कि 'पूर्व कवि के हृदय में प्रवेश किए बिना अनुवाद करना कवि की लोकांतर-स्थित आत्मा को कष्ट देना है। वे शब्दानुवाद के पक्ष में नहीं थे। क्योंकि ऐसा करने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। वे मूल रचना के भाव को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में सुरक्षित

रखने के पक्षधार थे और चाहते थे कि मूल कृति का अनुवाद इस प्रकार किया जाए कि लक्ष्य भाषा का पाठक उसे पढ़कर मौलिक रचना जैसा आनंद प्राप्त कर सके। ऐसा तभी संभव था जब अनुवादक उस पर अपने, देश, समाज और संस्कृति की छाप छोड़े। शायद इसी कारण उन्होंने शेक्सपियर के नाटक 'मर्चेन्ट आर्फ वेनिस' का हिन्दी अनुवाद करते हुए उसका भारतीयकरण कर दिया। स्पष्ट है कि वे अनूदित ग्रंथ को अपनी भाषा के पाठकों द्वारा सहजता से ग्रहण किए जाने के लिए मूल कृति के कथ्य का ही नहीं भाषा के मुहावरे का शाब्दिक अनुवाद करने की अपेक्षा अपनी भाषा में प्रचलित समतुल्य मुहावरों का समावेश करने के पक्ष में थे। उनकी अनुवाद की यह शैली आगे के अनुवादों में भी देखने को मिलता है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल में नई शिक्षा के प्रभाव के कारण लोगों की विचारधारा बदल चली थी। उनमें देशहित, समाज हित आदि की उमंग पैदा हो रही थी। देशकाल के अनुसार उसमें साहित्य निर्माण का अथक प्रयत्न होने लगा था। बंगाल में नए ढंग के ऐसे नाटकों और उपन्यासों की रचना का सूत्रपात हो चुका था जिनमें देश और समाज के प्रति उत्पन्न नए भावों का समावेश था। 1882 ई. में बंकिमचंद्र कृत दुर्गेश-नंदिनी के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् हिंदी में भी कई मौलिक और अनूदित उपन्यास प्रकाशित हुए। बांग्ला उपन्यासों के अनुवादकों ने भारतेंदु बंकिमचन्द्र कृत राजसिंह, राधाकृष्ण दास ने तारकचंद्र गांगुली कृत स्वर्गलता, बंकिमकृत प्रेमकहानी राधारानी (1883), रमेशचन्द्र दत्त कृत ऐतिहासिक उपन्यास बंग विजेता (1886), किशोरी लाल गोस्वामी की सामाजिक कहानी प्रेममयी (1889) और लावण्यमयी (1891) राधाचरण गोस्वामी श्रीमती सरनकुमारी घोषाल कृत ऐतिहासिक उपन्यास दीप निर्वाण और बिरजा, (1891), रामशंकर व्यास मधुमालती और मधुमती, (1886), विजयानंद त्रिपाठी ने भूदेव मुखोपाध्याय कृत सच्चा सपना (1890) राधिकानाथ बंद्योपाध्याय के सामाजिक उपन्यास स्वर्णबाई (1891) प्रतापनारायण मिश्र ने बंकिमचन्द्र कृत प्रेमकहानी 'युगलागुरीय' (1895) और कपालकुंडला कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

बंग्ला के इन उपन्यासों के अनुवाद ने जैसा कि डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''हिन्दी को एक ओर तो अतिप्राकृत, अतिरंजित, घटना बहुल अय्यारी उपन्यासों के मोहजाल से मुक्त किया और दूसरी ओर शुद्ध भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख किया। उनके अनुवादों ने भाषा को संस्कृत पदावली की मधुरता और गंभीरता की और कोमल भावनाओं की ओर प्रवृत्त किया और सुकुमार कल्पनाओं की रुचि उत्पन्न की। यद्यपि कुछ दिनों तक उसका अभिभूतकारी प्रभाव हिंदी पर छाया रहा, पर सब मिलाकर उसने हिंदी कविता और गद्य-भाषा को समृद्ध ही किया। उर्दू के अतिरंजित कथानकों और क़िस्सागोई परक साहित्य से कुछ देर तक के लिए छुटकारा मिलना हिंदी के विकास के लिए आवश्यक था। उर्दू मुहावरों की भाषा बन गई थी, उस समय उससे बँधे रहने पर हिंदी में उन्मुक्त कल्पना का अवकाश न मिलता, हमारा कथा-साहित्य मुहावरेबाज़ी और लतीफ़ेबाज़ी में देर तक अटका रहता।''

यूरोप के नवजागरण में ग्रीक एवं लैटिन के ग्रंथों के अनुवाद की बलवती भूमिका रही है। आधुनिक भारत के सांस्कृतिक नवोत्थान में भी पश्चिमी साहित्य के अनुवादों का बड़ा हाथ रहा है। इन अनुवादों ने भारतीयों के दिल में एक नयी प्रेरणा भर दी थी और अपनी प्राचीन संस्कृति को नयी दृष्टि से देखने के लिए उन्हें मजबूर किया था। भारतीय संस्कृति का मूल रूप यदि आज भी भारतीय जनता के जीवन में ज्यों का

त्यों लिया जाता है तो उसका श्रेय रामायण, महाभारत, भागवत आदि के आधुनिक भारतीय भाषाओं में किये गए अनेक रूपांतरों को प्राप्त है। आज संप्रेषण के साधनों के आविष्कारों के कारण विश्व इतना छोटा बन गया है कि एक प्रदेश के लोग दूसरे प्रदेश के जीवन और गतिविधियों के बारे में जानने के लिए बहुत ही उत्सुक रहते हैं। विश्व मैत्री एवं सहयोग के इस नये दौर में किसी भी प्रदेश की जनता को समझने के लिए उस प्रदेश के साहित्य को समझना अत्यंत अनिवार्य हो गया है।

लोगों में आज समकालीन साहित्य को पढ़ने की ललक बढ़ती जा रही है। इस कारण आज विश्व भर में साहित्यिक अनुवाद की बड़ी माँग है। भारत जैसे बहुभाषा भाषी देश में तो अनुवाद की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के साहित्य में निहित मूलभूत एकता के स्वरूप को निखारने के लिए अनुवाद ही एकमात्र अचूक साधन है। इस तरह अनुवाद द्वारा मानव की एकता को रोकनेवाली भौगोलिक और भाषाई दीवारों को ढहाकर विश्वमैत्री को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के युग में अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की मान्यता प्राप्त भाषाओं-अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी एव अरबी के अतिरिक्त हिंदी, स्पेनिश आदि भाषाओं का महत्त्व भी अनुवाद के क्षेत्र में निरंतर बढ़ रहा है। मारिशस, फ़ीजी, सूरीनाम आदि देशों की प्रमुख भाषा के रूप में और विभिन्न भारतीय भाषाओं को जोड़नेवाली भाषा के रूप में हिन्दी एक व्यापक एवं प्रभावी अनुवाद-माध्यम बनती जा रही है।

बीसवीं शताब्दी अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति की शताब्दी है और इस कारण इसे अनुवाद की शताब्दी भी कहा जा सकता है। संप्रेषण के नये माध्यमों के आविष्कारों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना को साकार बना लिया है। भारत जैसे बहुभाषाभाषी देश में परस्पर अनुवाद की तो आवश्यकता है ही, लेकिन विश्वभाषाओं से भी अनुवाद की अनिवार्यता है।

बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक समाज को जोड़ने का दायित्व हिंदी अनुवाद के माध्यम से एक हद तक पूरा हुआ है। आज अनुवाद की वजह से ही हम अपने ही देश की अन्य संस्कृति तथा आचार-व्यवहार, साहित्य से परिचित हैं। भारत बहुत पहले से ही इतना विशाल और बहुविध संस्कृतियों का देश रहा है कि अनुवाद के बिना यह जान पाना संभव नहीं हो पाता कि किस प्रदेश की क्या विशेषता है? अगर अनुवाद न होता तो हम आज तक कई मामलों में अनभिज्ञ बने रहते और समाज का इतना विकास न हुआ होता। चूंकि भारत की राजभाषा हिन्दी है इस कारण भी हिन्दी एक ऐसी भाषा के रूप में रही है जिसने बहु-संस्कृति और बहु-भाषिक समाज को एक सूत्र में बाँधे रखा है। अत: इस कथन से पूर्णत: सहमत हुआ जा सकता है कि हिन्दी अनुवाद ने बहु-भाषिक, बहु-जातीय और बहु-सांस्कृतिक समाज को जोड़ने का दायित्व पूरा किया है।'

1. वैदिक तांत्रिक, शैव, शक्त, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई जैसे संप्रदाय सांप्रदायिक दृष्टिकोण के समर्थक हैं जो अपने संप्रदाय से भिन्न सम्प्रदायों को प्रायः मौलिक धर्म का विकृत या बिगड़ा रूप समझते हैं!

2. प्रगतिशील एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण के समर्थक वैदिक परम्परा से संस्कृत जैन- साहित्य के साथ बौद्ध, सूफी साहित्य तथा संतो के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन, हाशिए की अशिक्षित जनता का अलिखित विश्वास और आचार विचारों के परीक्षण और भाषा के - साथ पुरातत्व-के साथ संबंधी ऐतिहासिक तथा प्रगतिहासिक साक्ष्यों के सांस्कृतिक मूल्यों एवं जीवन के आदर्शों का समर्थन करते हैं!

जिस रूप में भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न आज हमारे सम्मुख हैं, उससे यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप की पहचान स्थापित की जाए ।

बहुत स्थूल रूप में भारतीय संस्कृति का अर्थ भारत नामक भूखण्ड से निवास करती आयी मानव-जाति की उस संस्कृति से है जो बहुत-सी समानताओं के कारण एक सूत्र में बँधी हुई है। भारतीय संस्कृति की बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो संसार के दूसरे भागों में रहने वाले मानव समूहों से अलग एवं विशिष्ट हैं। भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसे सिद्धांतों और विचारों का प्रधान्य है जिनके फलस्वरूप एक विशेष प्रकार की जीवन व्यवस्था विकसित हुई है जिसे ''भारतीय जीवन-व्यवस्था'' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। पिछले छः हजार वर्षो में भारतीय संस्कृति में उतार-चढ़ाव और कुछ ऊपरी परिवर्तनों के बावजूद बुनियादी एकता विद्यमान रही है। इसलिए यह सोचना गलत न होगा कि भारतीय संस्कृति की रूप-रेखा के मूल में ऐसी धारणाएँ हैं जिनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

पर यह भी सत्य है कि भारतीय संस्कृति में परिवर्तन की प्रक्रिया भी आरंभ से जारी रही है। समय समय पर उसने ऐतिहासिक कारणों से बाहरी प्रभावों को भी स्वीकारा है और- उन्हें आत्मसात् भी किया है। इसीलिए उसे प्रायः एक सामासिक संस्कृति की संज्ञा प्रदान की जाती रही है।

भारतीय संस्कृति स्वभावतः सदा से प्रगतिशील रही है। इसमें अपने जीवन की जो अबाध धारा बह रही है उसके द्वारा ही भविष्य के देशीय या अन्तराष्ट्रीय मानवता के हित अपनी अनन्त के आन्दोलनों का स्वागत करते हुएप्राचीन परम्परा की रक्षा करते हुए आगे बढ़ती जाएगी। ऐसी भारतीय संस्कृति में ही हमारी आस्था है। संसकृति के आधार पर विभिन्न धर्मो संप्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता है। संस्कृति का स्वरूप, विवादग्रस्त बना गया है। इस विषय में देश के विचारकों की प्रायः परस्पर विरूद्ध या विभिन्न दृष्टियाँ दिखाई देती हैं।

साम्प्रदायिक दृष्टकोण:

भारतीय संस्कृति के विषय में अत्यंत संकीर्ण दृष्टि उन लोगों की है जो परम्परागत अपने अपने धर्म या सम्प्रदाय को ही ''भारतीय संस्कृति'' समझते हैं। लगभग दो ढाई सहस्र- वर्षों से इन्हीं संप्रदायवादियों का बोलबाला भारत में रहा है।

सहस्रों वर्ष गुजर जाने पर भी भारतवर्ष की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में इन संप्रदायवादियों का काफी हाथ रहा है।

अपने शिव आदि के, अपने संप्रदाय तथा परंपरा को ही सृष्टि के प्रारम्भ से ब्रह्मा- द्वारा प्रायः प्रवर्तित कहने वाले तथा अपने भिन्न संप्रदायों को प्रायः अपने से हीन कहने वाले इन लोगों के मत में तो, ''विशुद्ध'' भारतीय संस्कृति का आधार उनके ही संप्रदाय के प्रारंभिक रूप में ढूँढना चाहिए। वैदिक, बौद्ध जैसे संप्रदाय प्रायः, जैन, शाक्त, शैव, तांत्रि, इसी कोटि में आ जाते हैं। इस दृष्टकोण के समर्थक अपने अपने संप्रदाय से अंतरभावी या- भिन्न संप्रदायों को प्रायः अपने मौलिक धर्म का विकृत या बिगडा हुआ रूप ही समझते हैं।

संस्कति एवं दर्शन का सीधा और प्रत्यक्ष संबंध होता है। संस्कृत विचारधारा मनुष्य की वृति है और कुछ है वह उसकी विश्वदृष्टि और दर्शन का परिणाम होता है। भारतीय संस्कृति के संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि यहाँ दर्शन और धर्म अभिन्न रहे हैं। प्रत्येक दार्शनिक यहाँ पर धार्मिक नेता रहा है और प्रत्येक धार्मिक नेता एक विशिष्ट दार्शनिक विचारधार का प्रवर्तक - उन्नायक या समर्थक था।

भारतीय दर्शनों की सामान्य विशेषताएँ:

भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों को साधारणतया आस्तिक और नास्तक वर्गों में रखा गया है । वेद को प्रमाणिक मानने वाले दर्शन को ''आस्तिक'' तथा वेद को अप्रमाणिक मानने वाले दर्शन को ''नास्तिक'' कहा जाता है। आस्तिक दर्शन छः हैः (3) वैशेषिक (2) न्याय (1) वेदांत । (6) मीमांसा और (5) योग (4) सांख्य

नास्तिक दर्शनों के अंतर्गत जैन दर्शनों का समावेश (3) बौद्ध और (2) चार्वाक (1) किया जाता है। इन दर्शनों में आपसी विभिन्नता होते हुए भी क क्रम है। इनकी साम्य विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं-

दुःखमय संसार :

प्रायः सभी दर्शनों में संसार को दुःखमय माना गया है। रोग, शंकर, वैशेषिक, न्याय योग को बुद्ध द्वारा प्रथम आर्यसत्य बताया गया और उससे सांख्यः जैन आदि सभी दर्शन सहम, रामानुजत हैं। परन्तु ये निराशावादी कतई नहीं हैं क्योंकि ये दर्शन ''कम से पलायन'' का उपदेश नहीं देते बल्कि कर्म को ही आशा का आधार मानते हैं। विमुखता का उपदेश किसी भी दर्शन में नहीं मिलता। भारतीय दर्शन उस अध्यात्म का कर्म समर्थन करता है जिससे मोक्ष प्राप्त हो । मोक्ष एक ऐसी अवस्था है जहाँ दुखों का पूर्णतया अभव है जो पूर्ण आनन्दमय अवस्था है। इसे प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने, 'अष्टांगिक मार्ग' का प्रतिपादन किया है (1) सम्यक् वाक् (2) सम्यक् संकल्प (3) सम्यकृ दृष्टि (4) - सम्यक् व् (5) सम्यक् आजीविका (6) सम्यक् कर्मान्तयायाम (7) सम्यक् स्मृति और (8) सम्यक् समाधि मीमांसा के अनुसार मानव ''कर्म'' के द्वारा मोक्षवस्था को अपना सकता है। अर्थात कर्म उन्मुख जीवन का ही उपदेश मिलता है।

संक्षेप में भारतीय दर्शन में निराशावाद केवल आरम्भ है अन्त नहीं दर्शन का आरंभ, दुःख से होता है। दुःख से छुटकारा पाने का उचित मार्गदर्शन ही भारतीय दर्शन है।

आत्मा की सत्ता:

चार्वक को छोड़कर यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक आत्मा की सत्ता में विश्वास करता है। शंकर ने आत्मा को 'सच्चिदानन्दन' सत) + चित् + आनंद कहा है। आत्मा न ज्ञाता है और न (ज्ञान का विषय है। जहाँ तक आत्मा की संख्या का सम्बध है शंकर को छोड़कर सभी, वैज्ञानिक दो प्रकार की आत्माओं को मानते हैं। दार्शनिकों ने आत्मा को अनेक माना है।

कर्म सिद्धांत:

भारतीय दर्शन का यह सिद्धांत सर्वाधिक भ्रमपूर्ण विषयों को जन्म देता रहा है। प्रायः भारत के दर्शन को भाग्यवादी कहा जाता है परन्तु चार्वक को छोड़कर भारत के सभी दर्शन चाहे वे आस्तक हों अथवा नास्तक कर्म के नियम को मान्यता प्रदान करते हैं। कर्म सिद्धांत में विश्वास करना भारतीय विचारधारा के अध्यात्मवाद का सबूत है। कर्म सिद्धांत का अर्थ है जैसे ''हम बोते हैं वैस ही हम काटते हैं।'' इस नियम के अनुकुल शुभ कर्मों का फल शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। इसके अनुसार ''कृत प्रणाश'' अर्थात किए हुए फल नष्ट नहीं होता है तथा ''अकृतम्युपगम्'' अर्थात् बिना किए हुए करमों के फल भी नहीं प्राप्त होते हैं। सुख और दुःख क्रमशः शुभ और अशुभ कर्मों के अनिवार्य फल माने गये हैं। ..इस प्रकार कर्म सिद्धात, ''कारण नियम'' है जो नैतिकता के क्षेत्र में निहित व्यवस्था की व्याख्या ''कारण-नियम'' करता है उसी प्रकार उसी प्रकार नैतिक क्षेत्र में काम करता है नैतिक क्षेत्र में निहित व्यवस्था की व्याख्या कर्म सिद्धांत करता है। अतीत वर्तमान और कार्य श्रृंखला में बांधा गया है। भविष्य जीवनों को कारण प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वंय होता है। कर्म - सिद्धान्त सर्वप्रथम बीज के रूप में ''वेद दर्शन'' में सन्निहित मिलता है। वैदिक काल के ऋषियों में नैतिक व्यवस्था के प्रति श्रद्धा की भावना थी। वे नैतिक व्यवस्था को ''ऋत्'' कहते थे जिसका अर्थ होता है ''जगत की व्यवस्था''। ''जगत की व्यवस्था'' के अन्दर नैतिक व्यवस्था भी समाविष्ट थी। यह ऋत का विचार उपनिषद् दर्शन में कर्मवाद का रूप ले लेता है। विश्व की समस्त वस्तुएँ यहाँ तक इस नियम से प्रभावित होती हैं। कर्म सिद्धांत को ठीक प्रकार से न समझने के कारण कई बार समाज में संवेदनशून्यता का जन्म होता है। किसी असहाय या पीड़ित की सेवा सहायता इसलिए नहीं- की जाती है कि उसका वर्तमान उसके पूर्ववर्ती कर्मों का फल माना जाता है। परन्तु यह पलायन है। ऐसी अवधारणा ही भाग्यवाद को जन्म देती हैं।

परन्तु जहाँ तक वर्तमान जीवन का सम्बध है वहाँ कर्म सिद्धांत भाग्यवाद को प्रश्रय - दे सकता है क्योंकि वर्तमान अतीत का फल है। परन्तु भविष्य जीवन वर्तमान शुभ कर्मों के आधार पर ही निर्मित होता है।

कर्म सिद्धांत के अनुसार मानव के शुभ या अशुभ सभी कर्मों पर निर्णय दिया जाता है। अशुभ कर्मों का अनिवार्य अशुभ परिणाम मानव को बुरे कर्मों से दूर रखता है मानव का अपने कर्मों के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानना, अन्तःकरण अशुभ कर्म का विरोध करता है सिखाता है। यह मानव में आशा का संचार करता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है।

पुनर्जन्म:

चार्वाक् को छोड़कर सभी दार्शनिक वैदिक तथा अवैदिक पुनर्जन्म अथवा जन्मान्तरवाद में विश्वास करते हैं। पुनर्जन्म का विचार कर्मवाद के सिद्धांत तथा आत्मा की अमरता से ही प्रस्फुटित होता है। आत्मा नित्य एवं अविनाशी होने के कारण एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है । मृत्यु का अर्थ, शरीर की मृत्यु के पश्चात्, शरीर का अन्त है, आत्मा का नहीं। इस प्रकार शरीर के विनाश के बाद आत्मा का दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। चार्वक आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करता है। उसके अनुसार शरीर क्योंकि दोनों एक दूसरे के अभिन्, मृत्यु के पश्चात् आत्मा का भी नाश हो जाता हैं। इसलिए वह पुनर्जन्म के विचार में आस्था नहीं रखता ।

वैदिक काल का पुनर्जन्म - विचार उपनिषद में पूर्ण रूप से विकसित हुआ है। उपनिषद में पुनर्जन्म की व्याख्य उपमानों के आधार पर की गई है। इनमें से निम्नलिखित उपमां का उल्लेख करना आवश्यक है। अन्न की तरह मानव का नाश होता है और अन्न की तरह उनका पुनः पुनर्जन्म भी होता है।

गीता में कहा गया है कि - ''जिस प्रकार मानव की आत्मा भिन्न भिन्न अवस्थाओं- वृद्धावस्था से गुजरती है उसी प्रकार यह एक शरीर से दूसरे, युवावस्था, जैसे शैशवावस्था, से शरीर में प्रवेश करती है।'' जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र के जीर्ण हो जाने पर नवीन वस्त्र शरीर को धारण करता है उसी प्रकार आत्मा जर्जर एवं वृद्ध शरीर को छोडकर नवीन शरीर धारण करती है।''

पुनर्जन्म की आलोचना यह कहकर की जाती है कि यह अवैज्ञानिक है। इस सिद्धांत का व्यावहारिक पहलू यह है कि यह मानव को कुकर्म करने से रोकता है क्योंकि मानव के अच्छे कर्म ही अगले जन्म में उसे शुभ फल देंगे। इस रूप में यह आशा का संचार करता है।

व्यवहारिक पक्ष:

भारत में दर्शन का जीवन से गहरा सम्बध रखता है। दर्शन का उद्देश्य सिर्फ मानसिक कौतुहल की निवृति नहीं है बल्कि जीवन, की समस्याओं को सुलझाना है। इस प्रकार भारत में दर्शन को जीवन का अभिन्न अंग कहा गया है। जीवन से अलग दर्शन की कल्पना भी यहाँ सम्भव नहीं माना गया है। प्रो हरियान्ना ने ठीक ही कहा है कि ''दर्शन सिर्फ सोचने की पद्धति न होकर जीवन पद्धति है।'' चार्ल्स मूर और डॉ राधाकृष्ण ने भी प्रो. हरियान्ना के विचार की पुष्टि इन शब्दों नें की है ''भारत में दर्शन जीवन के लिए है।''

दर्शन को जीवन का अंग कहने का कारण यह है कि यहाँ दर्शन का विकास विश्व के दुःखों को दूर करने के उद्देश्य से हुआ है। जीवन के दुखों के समाधान के लिए दर्शन को अपनाया है।

व्यवहारिक पक्ष की प्रधानता के कारण प्रत्येक दार्शनिक अपने दर्शन के आरंभ में यह बतला देता है कि उसके दर्शन से पुरुषार्थ चार प्रकार के हैं-

(1) धर्म (2) अर्थ (3) मोक्ष (4) काम

इन चारों में भी चरम पुरुषार्थ मोक्ष ही माना गया है। चार्वाक को छोड़कर सभी दर्शनों में मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। भौतिकवादी दर्शन होने के कारण चार्वाक दर्शन में अर्थ और काम को ही पुरुषार्थ माना जाता है।

सभी दर्शनों में मोक्ष की धारणा में सभी दर्शन की आस्था है। भारतीय दर्शन में मोक्ष की अत्याधिक प्रधानता के कारण इसे मोक्ष दर्शन भी कहा जाता है।

मोक्ष का अर्थ दुःख विनाश होता है। सभी दर्शन में मोक्ष का यह सामान्य विचार माना गया है। यहाँ के दार्शनिक मोक्ष के लिए सिर्फ स्वरूप की ही चर्चा नहीं करते बल्कि मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

भारतीय दर्शन न तो नीति शास्त्र है और न ही ''धर्म'' अपितु जीवन पद्धति है।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1. प्रत्येक दार्शनिक अपने दर्शन के आरंभ में यह बता देता है कि उसके दर्शन में पुरुषार्थ के .... प्रकार हैं।

   अ) चार   ब) सात   क) आठ   ड) तीन

2. ''भारत में दर्शन जीवन के लिए है'' .... का कथन है।

   अ) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी   ब) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

   क) मिश्र बंधू   ड) डॉ. राधाकृष्णन

3. भारतीय दर्शन का ....यह सिद्धांत सर्वाधिक भ्रमपूर्ण विषयों को जन्म देता रहा है।

   अ) धार्मिकता का सिद्धांत   ब) राजनिती का सिद्धांत

   क) कर्म सिद्धांत   ड) राष्ट्रीयता का सिद्धांत

4. भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों को साधारणतः ....वर्गों में रखा गया है।

   अ) सात   ब) दो   क) तीन   ड) आठ

5. भारतीय संस्कृति के विषय में अत्यंत संकीर्ण दृष्टि उन लोगों की है जो परम्परागत अपने अपने धर्म या सम्प्रदाय को ही .... समझते हैं।

   अ) वैदिक संस्कृति   ब) पुरातन संस्कृति   क) क्षेत्रीय संस्कृति   ड) भारतीय संस्कृति

6. भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति बुनियादी तौर पर .... ही है।

   अ) मौर्य   ब) आर्य   क) हडप्पन   ड) वैदिक

7. बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक समाज को जोड़ने का दायित्त्व हिंदी .... के माध्यम से एक हद तक पूरा हुआ है।

अ) अनुवाद ब) अन्वेषण क) अनुसंधान ड) आलोचना

8. प्रसिद्ध रचनाकार .... द्वारा रचित रामचरितमानस भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है।

अ) नामदेव ब) कबीरदास

क) गोस्वामी तुलसीदास ड) सूरदास

9. भारतीय साहित्य दर्शन के अनुसार ....का अर्थ दुःख का विनाश होता है।

अ) बोधी ब) नरक क) स्वर्ग ड) मोक्ष

10. भारतीय साहित्य अनेक भाषाओं में रचित .... विचारधारा में प्रवाहित साहित्य हैं।

अ) दो से अधिक ब) एक क) अनेक ड) दो

1.5 पारिभाषिक शब्द / शव्दार्थ

प्रगतिशील – विकासशील

मोक्ष – मुक्ति

अनुगूँज – उपदेशात्मक वाणी

दर्शन – तत्त्वज्ञान

बहुधर्मी – विभिन्न धर्म

बहुजातीय – विभिन्न जाति

बहुभाषी – विभिन्न भाषा

ओतप्रोत – प्रचुर मात्रा में

आस्तिक – ईश्वर के सत्ता में विश्वास करनेवाला

नास्तक – ईश्वर को न माननेवाला

1.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

1. अ) चार 2. ड) डॉ. राधाकृष्णन 3. क) कर्म सिद्धांत

4. ब) दो 5. ड) भारतीय संस्कृति 6. ड) वैदिक

7. अ) अनुवाद 8. क) गोस्वामी तुलसीदास 9. ड) मोक्ष

10. ब) एक

1.7 सारांश

1. इस इकाई में भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक समरसता का परिचय प्राप्त किया।
2. भारतीय साहित्य में जीवनमूल्य और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त किया।
3. भारतीय साहित्य में वर्तमान भारत का बिंब प्रतिबिंब किस प्रकार है उसका व्यापक परिचय प्राप्त किया।
4. भारतीय साहित्य में बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता का व्यापक अध्ययन किया।
5. साहित्य इस एकता के प्रतिबिंबन का प्रमुख आधार रहा है।
6. अखंड भारतीय साहित्य समान साहित्यिक प्रवृतियों से युक्त है, इसका व्यापक ज्ञान प्राप्त हुआ।
7. दर्शन को जीवन का अंग कहने का कारण यह है कि यहाँ दर्शन का विकास विश्व के दुःखों को दूर करने के उद्देश्य से हुआ है। जीवन के दुखों के समाधान के लिए दर्शन को अपनाया है। अतः दर्शन 'साधना' है जबकि साध्य है दुःखों से निवृति।
8. कर्म सिद्धांत के अनुसार मानव के शुभ या अशुभ सभी कर्मों पर निर्णय दिया जाता है। अशुभ कर्मों का अनिवार्य अशुभ परिणाम मानव को बुरे कर्मों से दूर रखता है। मानव का अपने कर्मों के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानना, अन्तःकरण अशुभ कर्म का विरोध करता है, सिखाता है। यह मानव में आशा का संचार करता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है।
9. भारतीय दर्शन में निराशावाद केवल आरम्भ है अन्त नहीं दर्शन का आरंभ, दुःख से होता है। दुःख से छुटकारा पाने का उचित मार्गदर्शन ही भारतीय दर्शन है।
10. भारतीय संस्कृति में परिवर्तन की प्रक्रिया भी आरंभ से जारी रही है। समय समय पर उसने ऐतिहासिक कारणों से बाहरी प्रभावों को भी स्वीकारा है और उन्हें आत्मसात् भी किया है। इसीलिए उसे प्रायः एक सामासिक संस्कृति की संज्ञा प्रदान की जाती रही है।

1.8 स्वाध्याय

1) भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक समरसता का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
2) भारतीय साहित्य में जीवनमूल्य और वसुधैव कुटूंबकम की अवधारणा का विवेचन कीजिए।
3) भारतीय साहित्य में आज के भारत का बिंब स्पष्ट कीजिए।
4) भारतीय साहित्य की बहुभाषिकता और बहु सांस्कृतिकता का विवेचन कीजिए।
5) भारतीय साहित्य की दार्शनिकता और राष्ट्रीयता को स्पष्ट कीजिए।
6) भारतीय साहित्य के प्रगतिशील और समन्वयात्मक दृष्टिकोन का विवेचन - विश्लेषण कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1. अन्य भारतीय भाषा और हिंदी साहित्य लघु शोध परियोजना कीजिए।
2. अन्य भारतीय भाषा से हिंदी में आये शब्दों का स्वरूप गत और अर्थगत अध्ययन कीजिए।
3. मराठी से हिंदी में अनूदित उपन्यास साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

* डॉ. नगेंद्र, भारतीय साहित्य, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
* डॉ. रामछबीला त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
* रणसुभे, सूर्यनारायण, 2009, अनुवाद का समाजशास्त्र, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन।
* गोस्वामी, कृष्ण कुमार, 2008, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न**

   1. डॉ.राधाकृष्णन के अनुसार भारत में दर्शन ...... के लिए है।

      अ. पृथ्वी　　ब. जीवन　　क. स्वर्ग　　ड. आकाश

   2. भारतीय विचारधारा तथा संस्कृति की बुनियाद..... पर आश्रित है।

      अ. वैदिक　　ब. श्रामणेर　　क. अवैदिक　　ड. नाथपंथी

   3. भारत में बहुभाषिकता को एकसूत्र में बांधने का कार्य....... ने किया हैं।

      अ. राजनीति　　ब. विकासात्मकता　　क. अनुवाद　　ड. विवेचन.

   4. गोस्वामी तुलसीदास ने .... के माध्यम से भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि प्रदान की है।

      अ. रामायण　　ब. कंबरामायण　　क. रामचरितमानस　　ड. महाभारत

   5. भारतीय साहित्य दर्शन के अनुसार....... का अर्थ दुख का विनाश है।

      अ. स्वर्ग　　ब. नरक　　क. मोक्ष　　ड. बोधि

   उत्तर –

   1. ब　　2. अ　　3. क　　4. क　　5. क

2. **उचित मिलान कीजिए।**

   1. मोक्ष　　अ. चार
   2. भारतीय संस्कृति　　ब. वसुधैव कुटूंबकम

3. बहुभाषिकता — क. अनुवाद

4. जीवनमूल्य — ड. वैदिक

5. पुरुषार्थ प्रकार — इ. मुक्ति

उत्तर सही मिलान

1.–इ, 2.–वैदिक, 3.–क, 4.–ब, 5.–अ.

3. **सही गलत का निर्णय करे।**

1. वैदिक का पुनर्जन्म पर विश्वास करता है, जबकि चार्वाक पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करतें।
2. पुरुषार्थ के प्रकार 10 माने जाते हैं, जबकि मोक्ष की अवधारणा सभी दर्शनों में हैं।
3. बहुसांस्कृतिकता को अनुवाद बलशाली बनाता है, जिससे बहुभाषी भारत एकसूत्र में बांधा गया है।
4. भारतीय विचारधारा और संस्कृति वैदिकता पर आश्रित है, तो भारतीय दर्शन कर्मसिध्दांत को महत्त्व देता है।
5. चार पुरुषार्थो में मोक्ष श्रेष्ठ माना है, जबकि चार्वाक इसे अस्वीकृत करते हैं।

उत्तर सही गलत

1. प्रथम सही और दूसरा गलत।
2. प्रथम सही और दूसरा भी सही है।
3. प्रथम सही और दूसरा भी सही है।
4. प्रथम सही और दूसरा भी सही है।
5. प्रथम सही और दूसरा भी सही है।

❑❑❑

इकाई 2

मास्टर साब (उपन्यास) – महाश्वेता देवी (बंगाली)

अनु. रणजित साह

अनुक्रम –

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय–विवेचन

2.3.1 महाश्वेता देवी जी का जीवन परिचय, व्यक्तित्व और कृतित्त्व

2.3.2 'मास्टर साब' का परिचय

2.3.3 'मास्टर साब' का कथानक

2.3.4 'मास्टर साब' के प्रमुख पात्र

2.3.5 'मास्टर साब' में चित्रित समस्याएँ

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

1. महाश्वेता देवी जी के रचना संसार से परिचित होंगे।
2. महाश्वेता देवी जी के जीवन परिचय से परिचित होंगे।
3. 'मास्टर साब' उपन्यास की केंद्रिय संकल्पना एवं उददेश्य से परिचित होंगे।
4. मास्टर साब उपन्यास के माध्यम से समाज व्यवस्था की विसंगतियों को समझ सकेंगे।
5. मास्टर साब उपन्यास से हरिजन एवं गरीब किसान वर्ग का शोषण किस तरह होता है इससे परिचित होंगे।
6. प्रस्तुत उपन्यास से समाज की यथार्थता को समझने में मद्द होगी।

2.2 प्रस्तावना –

महाश्वेता देवी एक बांग्ला साहित्यकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता है। लेखिका ने अपनी लेखनी से भारत के विभिन्न आदिवासी समाज भारत के अलग–अलग राज्यों में बसे विभिन्न आदिवासी, इनमें हरेक प्रदेश को आदिवासी संस्कृति झलकती है, इन्होंने शोषित और संघर्षरत समुदाय को अपने सृजन का केंद्रबिंदु बनाया है।

महाश्वेता देवी जी का 'मास्टर साब' उपन्यास 1979 में प्रकाशित हुआ है। 'मास्टर साब' महाश्वेता देवी जी का एक जीवनीपरक मार्मिक उपन्यास है। हरिजन लडकियों पर होनेवाले शोषण और उत्पीडन के खिलाफ निरंतर संघर्ष करनेवाले गरीब एवं समर्पित स्कूल मास्टर की आत्मीय व्यथा को चित्रित किया है। महाश्वेता जी ने सरलता और सहजता से सामाजिक जीवन की विद्रुपता और विसंगतियों को रेखांकित किया है।

2.3.1 महाश्वेता देवी का जीवन परिचय –

2.3.1.1 जन्म –

बांग्ला की प्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी देश की उन गिनी–चुनी लेखिकाओं में से हैं, जिनका लेखन सीधा उनके अपने जीवन से निकला है। महाश्वेता देवी का जन्म 14 जनवरी सन् 1920 में ढाका (लक सुसंस्कृत परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम श्री मनीष घटक तथा माता का नाम श्रीमती धारित्री देवी था। श्री मनीष घटक एक कवि, बहुत अच्छे गद्य लेखक थे इनकी माता धारित्री देवी लेखिका और अनुवादक के साथ–साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी थीं। आठ महाश्वेता देवी के पश्चात उन्होंने और संतानों को जन्म दिया।

जिनके नाम है- शाश्वती,अनीश, आलोकितेश्वर, अपाला, शमीश, मैत्रेय, सोम और सारी। बहु सन्तानों में पालित होने के उपरान्त भी लेखिका को माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी आदि का प्रेम

मिला। बड़ी लड़की होने के कारण इन्होंने अपने छोटे भाई बहनों की देखभाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किन्तु माता-पिता द्वारा एक के बाद एक संतान को जन्म देने के कारण इनके मन में गुप्त रूप से वेदना का संचार भी हो रहा था।

2.3.1.2 शिक्षा–

महाश्वेता का शैक्षिक जीवन ढाका जिले के इडेन मांटेसरी स्कूल से शुरू हुआ। इसके बाद उनके पिता का तबादला मयमनसिंह, जलपाईगुडी, दिनाजपुर और फरीद्पुर जिले में क्रम से हुआ। 1936 ई.में उनकी बदली मेंदनीपुर में हुई। उस वक्त महाश्वेता को मेंदनीपुर मिशन स्कूल में भर्ती किया गया। इस मेंदनीपुर शहर में बिताए गए समय को ही उन्होंने अपने जीवन के सुख और आनंदमय समय के रूप में अंकित किया है। 1936 में उन्हें रविन्द्रनाथ के 'शांति निकेतन स्कूल' में पढ़ने के लिए भेजा गया। यही शांतिनिकेतन आज विश्वविख्यात है। उस वक्त रविन्द्रनाथ और उनके शिक्षा के आदर्श रूप के अनुगामी एकदम निस्वार्थ शिक्षित मनुष्यों के आत्मत्याग के बल पर ही शांतिनिकेतन का गठन हो रहा था। वहाँ महाश्वेता को पाँचवीं कक्षा में भर्ती कराया गया। उसी समय उसके छोटे मामा शंख चौधरी अपनी कॉलेज की पढ़ाई खत्म करके शांतिनिकेतन के कला भवन में एवं छोटी मौसी स्वप्नमयी स्कॉलरशीप पाकर समीत मदन में दाखिल हुए। महाश्वेता को शांतिनिकेतन के अपार प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच स्वाधीनता और मुक्ति के उल्लास के साथ बड़े होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सन 1938 के अंत में माँ की बीमारी और परिवार की आर्थिक स्थिति बिगडने के कारण इन्हें शांतिनिकेतन से वापस बुलाकर 1939 में कलकत्ता में वेलतल्ला बालिका विद्यालय में भर्ती करवाया। इसी स्कूल से इन्होंने 1942 में मैट्रिक पास लिया। इसके बाद 1944 में आशुतोष कॉलेज से इन्टरमीडिएट 1945-46 में शांतिनिकेतन से अंग्रेजी भाषा में बी.ए. और फिर कोलकत्ता विश्वविद्यालय में सन १९४६ में अंग्रेजी साहित्य में मास्टर की उपाधि के हेतु दाखिला लिया किन्तु हिन्दु-मुस्लिम दंगों एवं लूट-पाट के चलते विश्वविद्यालय बंद हो गया जिस कारण उनकी शिक्षा में बाधा उपस्थित हो गई। शिक्षा के प्रति इनकी रूचि ने हार नहीं मानने दी। विवाह के पश्चात पारिवारिक दायित्व के चलते चाहे इनकी शिक्षा में कुछ वर्षों का अंतराल आ गया लेकिन फिर भी इन्होंने 1983 में कोलकाता विश्वविद्यालय से प्राईवेट परीक्षार्थी के रूप में एम.ए. अंग्रेजी की उपाधि प्राप्त की।

2.3.1.3 विवाह –

महाश्वेता देवी से बिजोन भट्टाचार्य जो इण्डियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन के संस्थापक सदस्य, नाटककार, कहानीकार, कलाकार थे, 10 फरवरी 1947 में परिणय सूत्र में बंधे। 28 जून सन् 1948 में इनके यहाँ एक पुत्र नवारुण ने जन्म लिया। नवारुण भी एक प्रसिद्ध कवि, अभिनेता तथा निर्देशक है। 1962 में महाश्वेता जी का बिजोन भट्टाचार्य से विवाह विच्छेद हुआ। इनका दूसरा विवाह बांग्ला लेखक असित गुप्त से हुआ था। कहा जाता है कि 1953-54 में 'झाँसी की रानी' के लिए इतिहास अध्ययन के दौरान

इनका असित गुप्त के साथ घनिष्ठ संबंध रहा था किन्तु यह विवाह भी सफल नहीं रहा और 1976 में असित से भी उनका विवाह विच्छेद हो गया।

2.3.1.4 नौकरी –

आरंभ में इन्होंने अपने जीवन में बहुत दुख झेले तथा कठिन परिश्रम भी किया आरम्भिक समय में 1948 से 1949 तक लड़कियों के स्कूल में पढाने का काम किया तथा 1949-50 में उपलेखाकार डाक विभाग में अपर डिवीजन क्लर्क का कार्य किया। परन्तु कम्युनिस्ट पार्टी की सक्रिय कार्यकर्ता होने के कारण जीविका के लिए की गई नौकरियों से हाथ धोना पड़ा। 1950 से 1963 तक के समय में इन्होंने कई कार्य किए, जैसे–सूखे रंग वाले पाउडर बेचना, दस से पन्द्रह हजार बन्दरों की अमेरिका में पूर्ति करना तथा व्यक्तिगत रूप से बच्चों को पढ़ाना। इन्होंने 1957 में एक वर्ष के लिए हाई स्कूल में पढ़ाया। इसी समय इन्होंने सचित्र भारत में लेखन कार्य किया। 1984 में ये विजयगढ़ ज्योतिष राय कॉलेज में अंग्रेजी प्रवक्ता के रूप में जुड़ी तथा 1982 में वे ग्रामीण पत्रकार के रुप में बंग्ला पत्रिका 'युगान्तर' से जुडी। तत्पश्चात इन्होंने 1984 में लेखन पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कॉलेज से इस्तीफा दे दिया।

2.3.1.5 मृत्यु–

महाश्वेता देवी जी का 28 जुलाई 2016 में कोलकत्ता में देहावसान हुआ।

2.3.2 कृतित्व :

मातृभाषा बंगाली में महाश्वेता देवी जी की रचनात्मक लेखन के रूप में जो लेखन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसमें उनकी पहचान बंगला साहित्यकार के रूप में उभरी। महाश्वेता देवी के कथा साहित्य का विषय शोषित वर्ग पर आधारित है। उनकी रचनाएँ गरीबी उन्मूलन जीवन के गिरते हुए स्तर, पर्यावरण, श्रमिकों पर अत्याचार व उनका शोषण, भूमिहीन लघु कृषक, बटाईदार और बंधुआ मजदूर आदि तथा बंगाल और बिहार की खानों में कार्यरत जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले समूह को उन्होंने साहित्य का विषय बनाया।

2.3.2.1 उपन्यास

1) झाँसी की रानी 2) नटी, 3) अमृत संचय, 4) आधार मानिक,

5) हजार चौरासी की माँ. 6) जंगल के दावेदार, 7) चोटिमुण्डा और उसका तीर

8) ग्राम बांग्ला (दो खंड), 9) अक्लांत कौरव, 10) अग्निगर्भ, 11) नील छवि,

12) मास्टर साब, 13) स्त्री पर्व, 14) शालगिरह की पुकार, 15) सागोयाना,

16) सामने देखो, 17) तारों तले अंधेरा, 18) जमुना के तीर 19) श्रृंखलित,

20) भ्रू 21) दुष्कर 22) एक और विभाजन,

23) गोह, 24) हीरो: एक ब्लू प्रिंट. 25) लालगढ़ की माँ.

26) मर्डडर की माँ 27) मीलू के लिए. 28) रजिस्टर्ड न. 1038, 29) रिपोर्टर,

30) उम्र कैद 31) वांटेड 32) धानी की बाली पर ओस,

33) छह नम्बर जेठू, 34) आई.पी.सी. 375

2.3.2.2 **कहानी :**

1) आदिवासी कथा
2) ईंट के उपर ईंट
3) कृष्णद्वादशी
4) धहराती घटाएँ

2.3.2.3 **फिल्म :**

1) 'संघर्ष' 1968,
2) 'रुदाली' 1993
3) 'हजार चौरासी की माँ' :1998
4) माटी भाई: 2006

महाश्वेता देवी की आदि कृतियों पर फिल्मों का निर्माण हुआ।

2.3.3 पुरस्कार एवं सम्मान :

1. साहित्य अकादमी पुरस्कार 1979 में (जंगल के दावेदार के लिए)
2. भारत सरकार द्वारा 1986 में पदमश्री से सम्मानित किया गया।
3. 1997 में ज्ञानपीठ पुरस्कार ('हजार चौरासी की माँ' के लिए)
4. 1997 में मैगसेसे पुरस्कार
5. 1998 में विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन द्वारा देशिकोत्तम पुरस्कार प्रदान
6. 2006 में उन्हें पद्मविभूषण से सम्मानित किया गया।
7. 2009 में मेंन बुकर इंटरनेशनल प्राइज के लिए उनका नाम भी चयनित किया गया था।
8. 2010 में उन्हें यशवन्त राथ चवण राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
9. 2011 में उन्हें बंग भूषण (परियम बंगाल, राज्य सरकार द्वारा) से सम्मानित किया गया।

2.3.4 'मास्टर साब' का परिचय :

शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ निरंतर संघर्ष करने वाले गरीब और समर्पित स्कूल मास्टर की कथा के जरिए साठ:सत्तर के दशक में अपने नक्सल आंदोलन के वैचारिक सरोकारों और लोगों में आती प्रतिरोध की चेतना को लेखिका ने 'मास्टर साब' उपन्यास में दर्शाया है। यह एक जीवनीपरक, विचारोतेजक और मार्मिक उपन्यास है। मास्टर साब शोषण और दोहन के विरुद्ध चेतना जगा रहे थे। वे अपने ही लोगों के हाथों मारे जाते हैं। मास्टर साब अब इतिहास हो गए हैं। महाश्वेता अनवरत उन्हें खोजती रहती है। जिनका कोई नाम नहीं है पर वो अन्याय व शोषण के विरुद्ध जेहाद छेड़ देते हैं।

'मास्टर साब' का खेत मजदूरों का शोषण, जमीन बटाईदारी का शोषण, हरिजनों पर अत्याचार, नक्सलवादी आंदोलन, समकालीन समाज और परिवेश की विसंगतियों का शोषण के विरूद्ध तीव्र और सार्थक विद्रोह है।

प्रस्तुत उपन्यास में शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ निरंतर संघर्ष करने वाले गरीब एवं समर्पित स्कूल मास्टर की आत्मीय व्यथा:कथा तो है ही, उनके बहाने महाश्वेता जी ने साठ सत्तर के दशक में उपजे नक्सलवादी आंदोलन की गतिविधियों और उसके वैचारिक सरोकारों को भी पूरे साहस के साथ प्रस्तुत किया है। दरअसल मास्टर साब की कहानी को कहने की कोशिश में महाश्वेता देवी ने समकालीन समाज और परिवेश की विसंगतियों के बीच एक साधारण चरित्र के जुझारू संकल्प की अपनी असाधारण लेखनी से प्रखर अभिव्यक्ति दी है।

2.3.5 'मास्टर साब' उपन्यास का कथानक :

मास्टर साब महाश्वेता देवी जी का एक जीवनीपरक मार्मिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में जमींदार और साहूकारों द्वार हरिजन एवं गरिबों पर होनेवाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख पात्र जगदीश महतो है। प्रस्तुत उपन्यास में बिहार के आरा जिले के हरिजन आदिवासी लोगों पर किये गये अनन्वित अत्याचार का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास की कथा के केंद्र में एकौरि गाँव है। एकौरि गाँव में मास्टर का जन्म हुआ। बाजार में कभी वो अपने पिता के साथ सब्जी खरीदते वक्त नथुनी सिंह सामने आ जाता तो वह डर कर कहते, मालिक मैं दो चार सब्जियाँ खरीद रहा हूं। ऐसी कायरता एवं विवशता नथुनी सिंह को बहुत सुहानी थी।

जग्गू जब तिसरी कक्षा में पढता था उसकी लिखावट बहुत अच्छी थी। इसलिए स्कूल के मास्टर ने भारत हमारा देश है, भारत के सारे लोक एक समान है यह कागज पर लिखकर लाने के लिए कहा। जग्गू के पिता उससे पूछते हैं, सारे लोक समान है क्या यह बात सच है? तब जग्गू उसका जवाब देते हुए कहता है मास्टर साब कभी झूठ नहीं बोलते। जग्गू के पिता जग्गू को कहते हैं ऐसी बाते मत करना वरना मालिक लोक नाराज हो जायेंगे। जग्गू गर्व से कहता है, मास्टर जी ने बताया है सभी इन्सान एक समान है सभी मनुष्य एक जैसे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में जमींदारों द्वारा हरिजन स्त्रिया और लडकियों पर किये गये शोषण का चित्रण किया है। जमींदार हरिजन वर्ग की किसी भी स्त्री एवं लडकी को उसके पति एवं पिता के सामने से उठाकर ले जाते हैं और हरिजन पुरुष केवल हाथ धरे बैठ जाते थे।

जग्गू अपनी पढाई पुरी करने के बाद आरा के एक गाँव के स्कूल में शिक्षक हो गया। एक दिन जग्गू अपने स्कूल के मास्टर से मिलने जाता है और उनसे पूछता है आपने हमें पढाया था हम सब भारतवासी है हम सब एक समान है, मास्टरजी इसका जवाब देते हुए कहते हैं, यहां संविधान में लिखा है। तब जग्गू संविधान की बात है, लेकिन हम सब समान एक समान कहा है? मास्टरजी हमारे इलाके में लडकियों की सरेआम इज्जत लुटी जा रही है। सभी जगह गरीबों पर अत्याचार हो हे हैं मास्टर इसका जवाब देते हुए कहते हैं यही तो गरीब और हरिजन होने का अभिशाप है जग्गू।

मास्टरजी से मिलकर जब जग्गू अपने घर लौट रहा था तब उसकी मुलाकात रामेश्वर से होती है रामेश्वर फौजी जवान मजबूत कद काठी और खूबसूरत चेहरेवाला। लेकिन वह डाकू बन गया है। वो सरेआम बंदूक लेकर घुमता था। जग्गू उसे पूछता है तुम एकदम खुलेआम घूम रहे हो, रामेश्वर कहता है औरतों की इज्जत बचाने जाता हूं, तो पुलिस दबोच लेती है, लेकिन बंदूक लेकर घुमो तो कुछ नहीं कहती। जग्गू रामेश्वर से कहता है लोगों को अपने मन में साहस जूठाना होगा, सबको एक साथ खडा होना होगा, विरोध जाताना होगा, तभी अत्याचार बंद हो जायेगा।

मास्टर जग्गू एकौरि गाँव के चुनाव में रामनरेश के प्रचार के लिए भाषण देते हैं। रामनरेश के विरोधी राजदेव जो जमींदार नथुनीसिंह के पक्ष थे। मास्टर जग्गू के भाषण और प्रभाव को देखकर वो सुन्न हो जाते हैं। रामनरेश का प्रचार करने के कारण मास्टर पर नथुनी सिंह नाराज हो गया था और यह बात रामनरेश को मालूम थी। इसलिए वो मास्टर साब से कहता है तुमसे नथुनी सिंह नाराज है और अगर तुम वोट के मामले में उचलकूद मचाओगे तो वो तुम्हें खत्म कर देगा। इसलिए तुम पूरी तरह चौकस रहना। मास्टर जग्गू रामनरेश के प्रचार में एक गाँव से दुसरे गाँव में सभा ले रहे थे। इससे नथुनी सिंह जल भूनकर खाक हो रहा था। नथुनी सिंह से शिवपूजन के पीठ पर हाथ रखकर कहता है, जग्गू महतो को खत्म करना होगा। चुनाव सभाओं में खुले तौर पर सारी बाते बडे विस्तार से लोगों को बताता है। यह सुनकर शिवपूजन वहा से मास्टर साब की खबर लेने के लिए रवाना हुआ।

शिवपूजन जग्गू मास्टर को मारने के लिए जा रहा था तब वहा उसकी भेंट रामेश्वर से होती है। रामेश्वर शिवपूजन की करतुते जानता था। इसलिए शिवपूजन को मारकर वहा से भगाता है। रामेश्वर ये सारी घटना मास्टर साब को सुनाता है और उनसे कहता है लोग हमेंशा आपके साथ रहेंगे और कल से मै आपका बॉडीगार्ड बनूंगा।

रामनरेश मास्टर साब का बढता प्रभाव देखकर नथुनी सिंह फर्जी वोट डालने की तैयारी करता है। नथुनी सिंह के लोग एक एक बूथ पर जमा होने लगे। लोगों को बंदूक दिखाकर वहां से हटा दिया और फर्जी वोट डालने लगे। ये बात जब मास्टर जग्गू को पता चली वो बूथ पर पहुंचे। जग्गू मास्टर के चिल्लाते ही

उसके ऊपर नथुनी सिंह के आदमियों ने लाठियों की बौछार कर दी। मास्टर जग्गू को मारते हुए देखकर सारी जनता चित्कार कर नथुनी सिंह के आदमियों की धुनाई की। मास्टर जग्गू इस हमले से बच गये लेकिन पाँच महिने तक बेहोश रहे। पाँच महिने के बाद जब उन्हें होश आया तब उनका पहला सवाल था चुनाव में क्या हुआ? चुनाव में रामनरेश जीत गया था। मास्टर साब को और रामनरेश को लोगों ने फूलों के हार पहनाकर अपने गाँव लेकर गये।

वर्ष 1967 में रामरेश चुनाव में खडा हुआ था। 1969 के अंत से हरिजन किशोरियों की इज्जत लूटने या हमले की वारदातें कम हो गयी थी। मास्टर साब ने लोगों को समझा दिया था कि खेत मजदूर और गरीब किसानों को चुनाव में खडा करना और उन्हें जिताना होगा, भले वो हरिजन हो या दूसरी जाति के।

मास्टर साब अब खेत मजदूर के आंदोलन को अब तेज करना चाहते थे। मजदूरों को अब मजदुरी मिले, इसीलिए अब वे आंदोलन चलाना चाहते थे, अगर मजदूरी नही मिलेगी तो मजबूरों को हडताल करनी होगी। जग्गू की सारी बातों पर नथुनी सिंह की नजरे थी। वो शिवपूजन को कहता है इनको जादा ही जोश आया है, इनका अब हौसला तोडना होगा, चाहे जैसे भी हो। वह गोपाल गुमाश्ता के ऊपर यह जिम्मेदारी सौपता है। गोपाल गुमाश्ता मिठी मिठी बाते करके मजदूरों की हडताल खत्म करने के लिए प्रवृत्त करता है और उन्हें काम पर लगाता है। जब यह बात मास्टर जग्गू को पता चलती है तब उन्हें बहुत बुरा लगता है।

मास्टर साब ने हरिजनों की समस्या को दूर करने के लिए 'हरिजनिस्तान' नाम का पत्रक निकाला लेकिन इस पत्र के केवल दो ही अंक प्रकाशित हुए और बाद में बंद हो गया। लोगों ने सारे शहर में एक अनोखा जुलूस निकलते देखा। अंत्यज एवं दलितों के हाथ में जलती मशाले थी। सबके आगे चल रहे थे मास्टर साब। जुलूस में शामिल लोग नारे लगा रहे थे हरिजनस्तान ले के रहेंगे। मशाल जुलूस निकालने के बावजूद भी आशा के अनुरूप कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। इससे मास्टर साब एक बार फिर नाराज हो गये।

मास्टर साब अपने गाँव लौटे और रामेश्वर को ढुंढने लगे। रामेश्वर मिलते ही उन्होंने कहा तुम डकैती छोड दो, अकेले बंदूक लादे तुम क्या कर लोगे, तुम्हारी इस आजादी का न तो कोई मतलब और न मकसद। तुम्हें यही लगता है तुम आजाद हो लेकिन तुम्हारा समाज जकडा है वो आजाद नहीं है। और बंदूक का जुगाड करो और बंदूके साथ लेकर हम अपमान का बदला लेना चाहते हैं और उसमें रामेश्वर का साथ मांगते हैं। अन्य लोगों को भी आंदोलन में जोडना चाहते हैं।

मास्टर साब लोगों को साक्षर बनाने के लिए क्लास शुरू करते हैं। वहा लोगों को बताते हैं बटोरा गाँव है जहा भूमीहीन, किसान, मजूर आदिवासी लोगों ने सिर्फ जमीन के लिए नहीं बल्कि जमीन के साथ साथ राजनीतिक भागीदारी पाने के लिए लडाई शुरू की थी और फिर लडाई हत्यारबंद लडाई हो गई। मास्टर साब हर गाँव जाकर लोगों को अत्याचार के विरोध में जागृत करते हैं। मास्टर साब लोहा और करन को साथ लेकर एक के बाद एक तमाम गाँव के चक्कर लगाते रहे।

मास्टर जग्गू द्वारा चला गये आंदोलन से अब औरें भी अपनी इज्जत बचाने के लिए लडती है, यह सुनकर मास्टर साब खुश होते हैं। इनके कारण हरिजनों के मन में विश्वास पैदा हुआ था। हरिजन किशोरियां और महिलाओं की इज्जत पर अब कोई हाथ डालने का या उनपर हमला करने का साहस नहीं जुटा पाया।

मास्टर साब स्कूल में अपना काम पुरा करके 1969 में अपने गाँव लौट रहे थे तब उन्होंने देखा की उनकी वजह से हरिजनों के मन में विश्वास पैदा हुआ है और महिलाओं पर होनेवाले अत्याचार बंद हो गये हैं। मोतीराम जो एकौरि गाँव का सरपंच है वो मास्टर साब से गोपाल गुमाश्ता द्वारा किये गये धोखे के बारे में सुनाता है। हडताल तोडने के लिए गोपाल गुमाश्ताने जो खैरात बांटी थी उसे लोगों को कर्जे में डाल दिया था और कर्जे बढते बढते बहुत ज्यादा हो गये थे। इसको लेकर रामेश्वर और शिवपूजन में झगडा हुआ। इस झगडे को मिटाने के लिए नथुनी सिंह ने पुलिस बुलाई। पुलिस द्वारा लोगों के उपर लाठी चार्ज हुआ। जिसमें शिवपूजन जख्मी हुआ। अपने लोगों को छुडाने के लिए नथुनी सिंह ने बहुत पैसे खर्च किए और अपने लोगों को बाहर निकाला। गाँव के लोगों को पता चला गाँव में मास्टर साब आये हैं तब उन्हें मिलने के लिए लोगों की भीड उमड पडी थी।

मास्टर साब गाँव गाँव में आत्मरक्षा वाहिनी का निर्माण करके लोगों को बंदूक चलाना सिखाना चाहते थे। मास्टर साब, रामेश्वर, आनंद और कई दुसरे लोग गाँवों का दौरा करके लोगों को बंदूक चलाना सिखाते थे। एकौरि गाँव के छोटे किसानों ने खेत मजदूरों ने चंदा इकट्ठा किया था। मोतीराम ने अपनी बहू के चांदी के झुमके लाकर दिए। ये सारे पैसे करने मास्टर साब की घरवाली को दिये जिससें अजय लौहार से बंदुके बनाकर लायी गई।

मास्टर साब 1970 तक पूर्वी भोजपुर के एक एक गाँव घुमते रहे। गाँव में स्थानीय समस्याएँ थी साथ ही स्त्रियों की इज्जत अब्रू बचाने का भी सवाल था। वो लोगों से कहते थे महथिन देई साधारण और गरीब लोगों की वीर नायिका है। उसकी बात हमेंशा याद रखो और अपना मान सन्मान, अपनी बिरादरी और बस्ती की इज्जत अब्रू बचाने के लिए कमर कसकर खडे हो जाओ। मास्टर साब को उनके चेहरे से कोई नहीं पहचानता था लेकिन उनके नाम से और काम से सभी लोग परिचित थे।

मास्टर साब कब गाँव आये? कब गये? इसका पता तक नहीं चलता था। इस कारण शिवपूजन का हौसला बढता गया, वह लोगों को कर्जा चुकाने के लिए तगादा भिजवता था, नथुनी सिंह के ग्रह शांति के लिए पूजा करवाई लेकिन गाँव का कोई भी व्यक्ति भेट देने और प्रसाद लेने के लिए नहीं गया था। जमींदार के घर उत्सव होने पर लोक चंदा देते हैं लेकिन किसी ने चंदा नहीं दिया था। सरपंच मोतीराम को नथुनी सिंह ने इसके बारे में पूछा तो उसने कहा, हमने तैय किया है कि हवेली में होने वाले तमाशों से उनका कोई लेना देना नहीं था। मोतीराम को एक दिन नथुनी सिंह के आदमियों के द्वारा नथुनी सिंह के सामने लाया गया और चेतावनी देकर छोड दिया। अगर किसी ने कर्जा चुकाने से मना किया तो उसका अंजाम बहुत बुरा होगा, ऐसी कडवी बाते उसे सुनाई थी।

एक दिन शिवपूजन कराले के यहां शराब पी रहा था और नशे में धूत हो था। किसने उसे बाहर बुलाया। मालिक बुला रहे हैं यह सूनकर वो मालिक को मिलने के लिए निकल पडा लेकिन बहुत देर तक वापस नहीं आया। दुसरे दिन नहर के किनारे शिवपूजन की लाश पडी मिली। नथुनी सिंह चाहता था कि जमींदार, जोतदार और साहूकार को छोडकर हर एक को कैद कर लिया जाए। लेकिन पुलिस इन्स्पेक्टर उनकी बात सुनकर छोड देते है।

नथुनी सिंह के घर में काम करने वाली चमारन दौडती हुई मास्टर साब के घर आती है। उन्हें बताती है कि भाग जाओ मास्टर साब। तुमको और रामेश्वर को खूनी करार दिया है। तुम्हें पकडने के लिए पुलिस भी आई होगी। यह सुनकर मास्टर साब अपने साथ रिवाल्वर और रामेश्वर बंदूक लेकर निकल जाते हैं। मास्टर साब अपने आदमियों को बंदूक और रिवाल्वर छुपाने के लिए कहकर वहां से जाते हैं। जब पुलिस आकर तलाशी लेती है, उन्होंने रामेश्वर और मास्टर साब पर इल्जाम लगाया है। लेकिन बस्ती के हजारों लोग कसम खाकर कहने लगे की शिवपूजन को हम सभी ने मारा है।

साहार थाने के अंतर्गत आनेवाले एक एक गाँव नक्षली गतिविधियों से साहूकार एवं महाजनों को सताने लगे थे। गाँव के लोगों के मन में मुक्ति एवं उल्हास की चेतना जगने लगी थी। पिछले हजार, सालो में एक बार भी जमींदार इतने आतंकित नहीं हुए थे। जमींदार एवं साहूकारों के मन में डर समा गया था। दूसरे खेमों में भी मास्टर साब का नाम फैल गया था। हरपुरा के जमींदार मलखान सिंह और उसके दोस्तों को मार दिया गया। हरपुरा पुलिस चौकी को हैरानी में डाल दिया। मलखान की हत्या से सारे जमींदार बुरी तरह सहम गये थे। इस हत्या से मास्टर साब के ऊपर खून के इल्जाम बढते जा रहे थे।

नंदू भगत को मारने के बाद मास्टर साब दिलीप को मिले। दिलीप मास्टर साब को बताता है, भोजपुर तो अब जल रहा है पहले शांति थी लेकिन अब इत्मीमान और चैन नहीं था। अब अशांति फैल रही है और अब तुम्हें आराम मिल रहा है। मास्टर साब इसका जवाब देते हुए कहते हैं कि खुशी इस बात की है कि कुछ करधर के जाऊँगा। हरिजनिस्तान नहीं बन पाया लेकिन हरिजन लोगों के बीच चेतना को जगा पाया। अब कोई जमींदार हरिजन युवती पर टूट नहीं पडेगा। मास्टर साब को पकडने के लिए बख्शीश की घोषणा की गई थी। बख्शीश की बात सुनकर कुछ मुस्टंडों में जोश आया था।

मास्टर साब रामेश्वर को लेकर बिहिया में बैठ जाते हैं। वहाँ से मास्टर साब रामेश्वर को चंदेरा गाँव जाने के लिए कहते हैं। लेकिन मास्टर साब को अकेले छोडकर जाने से रामेश्वर मना करता है। अपना काम आगे बढाने के लिए रामेश्वर को मास्टर साब जाने के लिए तैयार करते हैं और मास्टर साब महथिन देई के मंदिर में शांत बैठ जाते हैं। मास्टर साब बिहिया बाजार की एक दुकान पर चाय पी रहे थे। उन्हें देखकर लोग जोर से चिल्लाते है डाकू है! डाकू है! मास्टर साब ने चाय का कुल्लड फेंक दिया और भागने लगे। भीड उनका पीछा करती रही और लोगों ने उन्हें पकड लिया। वो बतानेवाले थे कि वो मास्टर साब है। लेकिन बोल नहीं पाये। उनके सिर पर एक जोरदार लाठी पडी। उसके बाद उनके उपर लाठियों की बारिश होती रही। इसमें उनकी मौत हो गई।

मुसहर लोगों को बाद में पता चला जिसकी मौत हुई है वो मास्टर साब है। तब वो सभी रोने लगे। उन्होंने मुस्टंडों को लाश के पास आने नहीं दिया। मास्टर साब की मौत का पता चलने के बाद आस पास के दस गाँवों में तीन दिन तक लोगों ने खाना नहीं खाया था और न उन्होंने बख्शीश भी ली थी।

जिनके; लिए मास्टर साब जिंदगी भर जमींदारों एवं साहूकारों से संघर्ष करते रहे उन्होंने ही मास्टर साब की हत्या कर दी थी।

2.3.6 मास्टर साब उपन्यास के प्रमुख पात्र :

पात्र एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से मास्टर साब सशक्त उपन्यास है। उपन्यास में चरित्र चित्रण, संवाद योजना, देशकाल वातावरण, भाषा शैली आदि महत्त्वपूर्ण तत्त्व माने जाते हैं। मास्टर साब उपन्यास में प्रमुख पात्र है मास्टर साब और रामेश्वर। सहायक पात्रों में नथुनी सिंह, शिवपूजन, रामनरेश, मास्टर की पत्नी, मोतीराम, रघू हरिजन आदि है।

2.3.6.1 मास्टर साब :

मास्टर साब उपन्यास का प्रमुख पात्र मास्टर साब है। मास्टर साब का नाम जगदीश महतो है। जो एकौरि गाँव का रहिवासी है तथा आरा गाँव में अध्यापन का कार्य करता है। अध्यापन कार्य करते हुए वे समाज की ओर भी ध्यान देते हैं। गाँव में जमींदारों द्वारा हो रहे अमानवीय अत्याचार देखकर उसका खून खौलता है। इसलिए वे गरीब एवं हरिजन वर्ग में चेतना जागृत करने का काम करते हैं।

मास्टर साब समानता के प्रेमी है। वो समाज में समानता चाहते हैं। मास्टर साब जब अपने गुरू को मिलने जाते हैं समाज की वास्तविकता को उनके सामने प्रस्तुत करते हैं, वे कहते हैं, आपने मुझसे कई–कई बार लिखवाया है। दूसरे छात्रों के द्वारा भी इन बातों को कई:कई बार लिखवाया है। लेकिन आए दिन मैं यह देख रहा हूँ कि इन बातों का कोई मतलब नहीं रह गया है। बल्कि ये बातें मुझे झूठी और बेमानी लगने लगी हैं।'

''कौन:सी बातें ?''

''यही, हम सब भारतवासी हैं हम सब एक समान हैं।''

''यह सब संविधान में लिखा है जग्गू।''

''यह संविधान की बात है। लेकिन हम सब समान एक समान कहाँ हैं मास्टरजी? आपको पता नहीं है कि हमारे इलाके में क्या कुछ हो रहा है। हमारे घरों की लड़कियों की इज्जत सरेआम लूटी जाती है। निम्न मानी जानेवाली जातियों के औरतों की इज्जत सरेआम लूटी जाती है। तो फिर समाज में समानता कहाँ हैं? ऐसा सवाल वे अपने गुरु से पूछते हैं।

मास्टर साब सामान्य लोगों में साहस बढाना चाहते हैं। मास्टर साब एकता में भरोसा रखनेवाले व्यक्ति है। वो हमेशा कहते थे कि जब लोग एक साथ खडे हो जायेंगे तभी उनके ऊपर होनेवाले अन्याय खत्म होंगे।

वे रामेश्वर से कहते हैं, इसमें पुलिस तुम्हारी मदद नहीं करेगी। वह तुम्हें बंदूक से डराएगी। लेकिन लोगों को अपने मन में साहस जुटाना होगा, सबको एक साथ खड़ा होना होगा, विरोध करना होगा तभी अत्याचार बंद होगा।''

मास्टर साब सच, गरीब और हरिजनों का साथ देनवाले व्यक्ति हैं। उसके लिए वे कोई भी किमत चुकाने के लिए तैयार हैं। रामनरेश जब जमींदारों के खिलाफ चुनाव में खडा होता है तब मास्टर साब उसका साथ देते हैं। वो रामनरेश के प्रचार के लिए गाँव गाँव घुमते हैं। रामनरेश का साथ देने से नथुनी सिंह नाराज हो जाता है, वो चुनाव के दिन मास्टर साब को पिटता है जिससे मास्टर साब लग भग पाँच महिनों तक बेहोश रहते हैं। लेकिन जब उन्हें होश आता है, उनका पहला सवाल था, चुनाव में क्या हुआ?

मास्टर साब एक निडर व्यक्ति है। चुनाव के दौरान मास्टर साब के साथ मारपीठ होती है। जमींदारों को लगता है मारपीट होने की वजह से मास्टर साब डर के कारण सामान्य लोगों के आंदोलन में हिस्सा नहीं लेंगे। लेकिन मास्टर साब हरिजन एवं गरिबों के लिए अपनी जान तक दांव पर लगाते हैं। आंदोलनों में मास्टर साब सबसे आगे रहते हैं। वो कहते हैं, उनके हाथों से पिटा जरूर हूँ लेकिन उनसे मुझे डर नहीं है। डरने से काम नहीं चलेगा। डरने से और डरते रहने से सिर्फ डर ही पैदा होता है।'' इसलिए मास्टर साब अपने मन से डर को निकालकर लोगों की सहायता के लिए हमेंशा तैयार रहते हैं।

मास्टर साब की एक प्रमुख विशेषता यह है, उनका संगठन कौशल है। वो किसान एवं हरिजनों का संगठन करते हैं। वे जमींदार एवं साहूकारों द्वारा होनेवाले अन्याय को दूर करने के लिए संगठन को आवश्यक मानते हैं। हर किसी पर होनेवाले अत्याचार के खिलाफ विरोध करने के लिए चेतीत करते हैं। वे रामेश्वर से कहते हैं, हाँ, रामेश्वर! बंदूक को थामो, इसकी नली से निशाना साधो। यह बंदूक अगर मेरे हाथ में हो और इसकी नली नथुनी सिंह के सीने पर तो कैसा लगेगा?

''बहुत ही सुन्दर।''

''और ढेर सारी बंदूकें ऐसे ही ढेरों नथुनी सिंह के सीने पर?''

''क्या कहना और भी सुन्दर!''

''लेकिन यह सब एक ही दिन में नहीं हो जाएगा।

मास्टर साब नथुनी सिंह के अत्याचारों में खिलाफ रामेश्वर को चेतीत करते हैं। परिस्थिति में परिवर्तन करने के लिए मास्टर साब सब गरीब एवं हरिजन तबके को एक साथ लाना चाहते हैं।

मास्टर साब के विद्रोह के कारण हरिजन एवं स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार लगभग कम हो गये थे। मास्टर साब के नाम से जमींदार और साहूकार डरने लगे थे। विद्रोही मास्टर साब समाज व्यवस्था में बदलाव के लिए प्रयास करते हैं। हरिजन वर्ग में अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ ड़टकर खडे होने की चेतना निर्माण करते हैं। जमींदारों और साहूकारों के मन में डर समा गया था। दूसरे खेमों में भी मास्टर साब का नाम फैल गया था।

''यह मास्टर साब कौन है?''

''एक आदमी है भाई!''

''क्या वह नक्सल है?''

''वह जो भी हों, उसके आंदोलन करने के बाद हरिजनों के ऊपर ढाया जाने वाला जुल्म बहुत कम हो गया है।''

''स्त्रियों पर अत्याचार कम हो गया है। उनकी इज्जत पर अब कोई हमला नहीं करता। औरतें भी जागरूक हो गई हैं।''

मास्टर साब ने जमींदार एवं साहूकारों के अन्याय के विरोध में विद्रोह किया जिसके कारण हरिजन एवं गरीब वर्ग के लोग अपने ऊपर होनेवाले अन्याय की विरोध में लड़ने लगे।

'मास्टर साब' उपन्यास का प्रमुख पात्र मास्टर साब विद्रोही, समाज हितैषी, संगठन करनेवाला, अत्याचार के विरोध में लडनेवाला तथा मानवातावादी मूल्य को माननेवाला है।

2.3.6.2 रामेश्वर :

'मास्टर साब' उपन्यास का दुसरा महत्वपूर्ण पात्र रामेश्वर है। यह मास्टर साब का मित्र है। रामेश्वर फौजी जवान और मजबूत कद काठी का व्यक्ति है। रामेश्वर हमेंशा बंदूक अपने साथ लेकर घुमता है। मास्टर साब कहते हैं, तुम खुले आम बंदूक लेकर कैसे घुमते हो? रामेश्वर इसका जवाब देते हुए कहता है, औरतों की इज्जत बचाने जाता हूँ तो पुलिस दबोच लेती है। लेकिन बंदूक लेकर घूमों तो कुछ नहीं कहती। इसलिए रामेश्वर हमेंशा अपने साथ बंदूक लेकर घुमता है। वो जमींदारों से नहीं डरता है उनके साथ मुकाबला करने के लिए हमेशा तैयार रहता है।

रामेश्वर मास्टर साब का एक सच्चा दोस्त है। हर स्थिति और हर हाल में मास्टर साब का साथ देता है और कहता है, तुम अब जाओ और याद रखो वक्त बे वक्त रामेश्वर अहिर तुम्हारे साथ है। मास्टर साब हरिजन वर्ग के हकों के लिए लड़ रहे थे इसलिए जमींदार वर्ग उनसे नफरत करने लगा था वे कभी भी मास्टर साब को मारने की कोशिश कर सकते थे। यह बात रामेश्वर को पता चलने के बाद वो मास्टर साब के साथ हमेंशा बंदूक लेकर रहना चाहता है। इसके लिए वो डकैती को छोड देता है। मास्टर साब से कहता है, मैं डकैती छोडकर हमेंशा तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम्हारा बॉडीगार्ड बनकर। अपनी जान से ज्यादा अहमियत वो मास्टर साब की जान को देता है। रामेश्वर हमेंशा मास्टर साब को सुरक्षित रखना चाहता है। वह एक दोस्त होने का फर्ज अच्छी तरह निभाता है।

रामेश्वर आपने अधिकारों की लडाई लडनेवाला पात्र है। वो कहता है, पार्टी चाहे जो भी कहे, कहती रहे। तब तक हर एक जगह हवा बदल चुकी थी। इधर अपना अधिकार जताने का बडा अच्छा मौका आ

गया था। इस सुनहरे मौके को कैसे छोडा जा सकता था। रामेश्वर हर हाल में अपने अधिकारों की लडाई लड़ने में सबसे आगे रहता है।

रामेश्वर 'मास्टर साब' उपन्यास का महत्त्वपूर्ण पात्र है। वो दिल का साफ व्यक्ति है। फौज से अपनी सेवा पूरी करके गाँव आया है। वह गाँव में हो रहे अन्याय को रोकने के लिए मास्टर साब का साथ देता है। मास्टर साब का बॉडीगार्ड बनकर उनकी रक्षा करता है।

2.3.6.3 नथुनी सिंह :

मास्तर साब उपन्यास में नथुनी सिंह जमींदारो का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र है। जो हरिजन एवं गरीब वर्ग का हमेशा शोषण करता है। वे किसी भी हालत में गरीबों पर अपनी हुकूमत चलाना चाहते हैं। कोई व्यक्ति अगर नथुनी सिंह के खिलाफ बात करता है तो वो अपने मुस्टंडे भेजकर उन्हें चेतावनी देते हैं तथा धुलाई करते हैं। नथुनी सिंह के दहशत के कारण सभी लोग उसकी बात को मानते हैं।

रामनरेश जब चुनाव में खडा हुआ था तब नथुनी सिंह ने उनके खिलाफ राजदेव को खडा किया था! मास्टर साब रामनरेश का प्रचार करते थे इसलिए लोगों में मास्टर साब का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। इसलिए नथुनी सिंह शिवपूजन के हाथों मास्टर साब को मारने का प्रयास करते हैं। लेकिन उसमें वे कामयाब नहीं होते। चुनाव के दिन नथुनी सिंह अपने आदमियों के दुवारा वोटरों को डरा धमकाकर बुथ पर काबू पाना चाहते हैं। लेकिन मास्टर साब को यह बात पता चलने के बाद वे वहाँ आते हैं। नथुनी सिंह के आदमी मास्टर साब को पीटते हैं यह देखकर वहाँ के सारे लोक इकट्ठा होकर नथुनी सिंह के आदमियों की धुलाई करते हैं, नथुनी सिंह वहाँ से भाग जाता है। नथुनी सिंह लोगों पर अपनी हुकुमत चलाने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है।

जब मास्टर साब किसान एवं हरिजनों के मजदूरी के हक लिए उनकी हडताल करवाते है तब नथुनी सिंह गोपाल गुमाश्ता की मदद से किसानों एवं हरिजनों को अनेक प्रलोभन दिखाकर उनकी हडताल को तोडते हैं। हडताल तोडने के लिए दिए हुए पैसे बाद में किसानों के कर्जे में डाल दिए जाते हैं। बाद में वो यह पैसे कर्जे के रुप में बढ़ते ही जाते। नथुनी सिंह किसी भी तरह लोगों के मन से मास्टर साब के प्रभाव से दूर रखना चाहते हैं। इसलिए लोगों को अनेक प्रलोभन देकर अपने वश में करना चाहते हैं। किसी भी रुप में हरिजनों का शोषण करना चाहते हैं।

नथुनी सिंह का मास्टर साब पर विशेष क्रोध था। जब शिवपूजन की हत्या हो जाती है तब नथुनी सिंह पुलिस को मास्टर साब और रामेश्वर को गिरफ्तार करने के लिए कहता है। उसके साथ गाँव के साहूकार और जोतदारों को छोडकर सबको कैद करने के लिए कहता है। लेकिन पुलिस इसकी बात को अनसुना करती है। इससे पता चलता है नथुनी सिंह किसी भी हालत में मास्टर साब को लोगों से दूर करना चाहते थे। मास्टर साब के कारण लोगों में उसकी हुकुमत नहीं चलती थी। नथुनी सिंह समाज के शोषण करनेवाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है।

प्रस्तुत उपन्यास में मास्टर साब और रामेश्वर प्रमुख पात्र है। सहायक पात्रों के रुप में नथुनी सिंह, शिवपूजन, रामनरेश, राजदेव, रघू हरिजन, दिलीप, लोहा, करन तथा मास्टर की पत्नी आदि है।

2.3.7 'मास्टर साब' उपन्यास में समस्याएँ :

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण जनजीवन, दलित पीडित समाज का जनजीवन एवं वहाँ की पीड़ाओं को मुखर किया है। इस संबंध में महाश्वेता देवी जी ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में और अनेक विषयों के रूप में मनुष्य को ही साहित्य के माध्यम से समाज के सम्मुख उपस्थित किया है। आदिम काल से ही मनुष्य समस्याओं से लड़कर अपने अस्तित्व को बचाता आया है। दलितों को अपने जीवन में ऐसी कई समस्याओं से जूझना पड़ा है। परंतु आज भी एक के बाद एक समस्याएँ उलझती जा रही हैं। दलितों को अपनी जीविका के लिए अनेक उलझनों, जटिलताओं से जूझना पड़ता है जिसके कारण कुछ समस्याओं से वे थोड़ी सी निजात पा चुके हैं, तथा कुछ समस्याएँ इस प्रकार की है कि ज्यों की त्यों बनी है। महाश्वेता देवी जी ने मास्टर साब उपन्यास में दलित एवं आदिवासी वर्ग की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया है।

2.3.7.1 शोषण की समस्या :

समाज पर दृष्टि डालने पर दिखाई देता है कि उच्च वर्ग का व्यक्ति अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए समाज के निम्न वर्ग का शोषण करता आ रहा है। शोषण का यह सिलसिला सदियों से प्रचलित है। सदियों से चली आयी समस्याएँ एवं व्यवस्था के कारण दलितों का शोषण भारी मात्रा में होता आ रहा है। सवर्ण समाज दलितों के शोषण के लिए अनेक हथकंडे अपनाता है। पुलिस एवं राजनीतिक नेता आदि का आधार लेकर शोषण के नित्य नए रास्ते अपनाकर दलितों का खून चूसने का प्रयास करते हैं। अंधविश्वास एवं अशिक्षा में फँसे हुए दलितों का शोषण सेठ, साहुकार, जमींदार, पुलिस, धार्मिक संस्था एवं सरकारी अधिकारी कर रहे हैं। दलितों के शोषण के संबंध में डॉ. नग्मा जावेद का कहना है, दलित वर्ग समाज का यह वर्ग है जिसने हमेंशा शोषण को सहा है। सवर्ण समाज की जूतियाँ खाई है, उनका मल:मूत्र बटोरा है, उनकी सेवा टहल की है और बदले में उसे दो जून की रोटी भी नसीब नहीं हुई है, उस वर्ग के बच्चों ने दूध पीकर खिलौनों से खेलकर बचपन नहीं गुजारा। बल्कि बची:खुची बासी रोटी, सूखी रोटी पानी के साथ हलक में उतारी है। जिंदगी की मूलभूत आवश्यकताओं में बंचित इस वर्ग ने सदियों से जीवन जिया नहीं बल्कि ढोया है।

2.3.7.1.1 जमींदारों द्वारा शोषण :

परंपरा से भारत के जमींदारों के पास हजारों एकड जमीन उपलब्ध है, इस के बलबूते पर वे रईस बने हैं। उनकी खेती में काम करनेवाले दलित मजदूर ही हैं। इसमें दलित मजदूरों से बेगार लेना गलत एवं दकियानूसी परंपरा भी भारत में प्रचलित हुई है। जमींदार दलित मजदूरों का शोषण विभिन्न तरीकों से करते हुए दिखाई देते हैं।

''अनपढ़ और गवार किसान उस पर अँगूठे लगा देते हैं और कर्ज के जाल में फँसते चले जाते हैं। हमें सौगात या खैरात में मिले तीन सेर धान और एक रुपया कर्जे के तौर पर खाते में डाल दिया गया है। और वह कर्जा भी बढ़ते-बढ़ते पिछले कई महीनों में बहुत ज्यादा हो गया है।''

''खेत:मजूरी देते समय मालिक लोग उस कर्जे की रकम काट लेना चाहते थे। और इसको लेकर बड़ा हाय:हंगामा हुआ था उस दिन। तब शिवपूजन अपने संगी:साथियों के साथ आ टपका था और उनको खूब डराया धमकाया।''

दलित एवं आदिवासी वर्ग की अशिक्षा का फायदा उठाकर जमींदार एवं साहूकार कोरे कागज पर अगूँठा लगा लेते हैं। इसके कारण वो अपने कर्जे से अंजान ही रहते हैं। जैसे जैसे समय गुजरता है वैसे ही कर्ज बढता जाता है। बाद में उन्हें डराकर धमकाकर कर्जा चुकाने के लिए कहा जाता है। अगर वो कर्जा चुकाने में नाकामयाब होते हैं तो उनकी जमीन एवं घर पर कब्जा किया जाता है। उसके खाते में कई ब्लॉकों के ऐसे कई सूदखोर अब भी चढ़े हैं। उसकी कृपा से या सूद की वजह से हममें से कई चमारों का अपना घर छोड़ना पड़ा। और जो रह गए हैं उनकी जमीन भी बंधक पड़ी है। अवध नारायण दुगना और तिगुना ब्याज पर कर्जा देता था। उसका ब्याज और कर्जा न चुकाने पर कई चमारों को अपना घर और खेत छोडना पडा था। अधिक सूद पर हरिजनों को कर्जा देकर उन्हें किसी भी प्रकार से घर एवं खेतों से बेदखल किया जाता था।

नंदू भगत ने गंगू अहीर के घर पर अपने दो लठैतों को भेजा। वे वापस नहीं लौटे। बात क्या हुई? आखिर माजरा क्या है? नंदू भगत अपने साथ दो लोगों को लेकर चल पड़ा। इन दोनों के हाथों में पीतलजड़ी पुलठियाँ थीं। इन पुलठियों की चोट बड़ी मीठी लगेगी इन स्सालों को। बेगार काम कराते वक्त जब ये मजूर लोग उल्टा सीधा बहाना बनाते हैं तो इनकी पीठ पर बजने वाली ये पुलंठियाँ अपना खास असर डालती है। तभी के स्साले सीधे होते हैं और काम पर आते हैं। स्साले दोगले क्या मुसीबत है।''

जमींदार के खेतों में अगर कोई हरिजन काम करने से मना करता है तो उसे घर से उठाकर लाया जाता है और बिना बेगारी के उससे काम करवाया जाता है। नंदु भगत भी गंगू अहिर के घर आये हुए मेंहमानों को भी काम करने के लिए लाना चाहता है। बहुत देर तक वो काम पर नहीं आये इसलिए अपने उन्हें मुस्टंडों को उठाकर लाने के लिए भेजता है।

महाश्वेता देवी जी ने जमींदार एवं साहूकार वर्ग यथास्थितिवादी मनोवृत्ति को प्रस्तुत किया है। जो किसान एवं दलित मजदूर वर्ग का शोषण करने में ही अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

2.3.7.2 भ्रष्टाचार की समस्या :

अपने देश में भ्रष्टाचार बहुत गहराई तक फैला है। सरकारी, राजनीतिक नेता, धर्म के साथ जुड़े व्यक्ति तक के हाथ भ्रष्टाचार में रंगे हुए हैं। मेंहनत किए बिना पैसा कमाना, कम से कम समय में धनवान बनना, अवैध काम करके पैसा कमाना आदि के कारण भ्रष्टाचार एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है। अपना विकास

करने के लिए स्वार्थी प्रवृत्ति अपनाकर भ्रष्टाचार करने की परंपरा प्रचलित हो गई है। सरकारी दफ्तर, पुलिस, जमींदार, सेठ, साहुकार, पंडित तथा राजनीतिक नेता को आदि सभी अपनी ओर से भ्रष्टाचार को और अधिक व्यापक स्तर पर फैलाने की कोशिश कर रहे हैं। भ्रष्टाचार आज शिष्टाचार बन गया है और इसी कारण दलितों के विकास के मार्ग में विभिन्न बाधाएं आ रही है। उनकी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। महाश्वेता देवी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में विभिन्न प्रकार से सरकारी हथकंड़े आजमाकर किस प्रकार से हरिजन एवं खेत मजदुरों के कामों में रुकावटें लायी जाती है इसे प्रस्तुत किया है।

अरे! 'कोई कुछ सुनता ही नहीं था' मास्टरजी बोले, ''देवी राय ने दरोगा जी को खरीद लिया। उसने धोबियों को डरा:धमकाकर खामोश कर दिया। केस खारिज हो गया। यह बताना चाहते हैं कि रक्षक ही जब भक्षक बन जाते हैं, तब सुरक्षा व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह खडा रहता है। दलितों पर झूठ:मूठ के इल्जाम लगाकर सवर्ण ठाकुर उन्हें पीटते हैं। अगर उसकी रपट लिखवाने थाने जाते है तो वो दरोगा को ही पैसे देकर खरीदते हैं। इस कारण वो दरोगा डरा-धमकाकर केस खारिज कर देता है। यहाँ पुलिस की शोषक प्रवृत्ति के दर्शन होते है।

पुलिस जमींदारों से रिश्वत लेकर उनके ऊपर कोई भी केस दर्ज नहीं करते थे। जमींदारों के खिलाफ अगर कोई आवाज उठाता है तो उसे ही झुठे केस में फंसाते है। प्रस्तुत उपन्यास में जमींदारों के कहने पर गंगु अहिर को उसके ही पिता के खून करने के जुर्म में गिरफ्तार करती है। महाश्वेता देवी जी ने हरिजन एवं सामान्य किसानों पर पुलिस किस प्रकार ज्यादती करती है तथा उन्हें झुठे केस में किस प्रकार से फंसाया जाता है, इसका यथार्थ चित्रण किया है।

2.3.7.3 स्त्री जीवन की समस्या:

आज शहरी और ग्रामीण दोनो भागों में स्त्रियों के शोषण की समस्या दिखाई देती है। उच्चवर्ग की विलासिता, कामुकता, भोगवादी दृष्टि, सामाजिक परिस्थिति, नारी की वेबसी, लाचारी आदि यौन शोषण के कारण है। डॉ. बलवंत साधु जाधव कहते हैं: 'भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था में शक्ति और धन के आधार सवर्णों को इज्जत, सम्मान, प्रतिष्ठा के अधिकारी बताया है। गावों में तो दलित युवतियाँ इनके पंजे में फंसकर विलास की सामग्री बनती है।'' आज सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिवर्तन के कारण विकास हो रहा है। प्रेम का संबंध सीधे वासना से जुड़ गया है। प्रेम और वासना जीवन का तत्व है, अन्तप्रवृत्ति है, इसे घृणित किया जा रहा है। परंतु आज विकृत मनोवृत्ति के कारण नारी को अवैध यौन संबंधों का प्रयोग करके भ्रष्ट और शोषित किया जा रहा है। महाश्वेता देवी जी ने अपने उपन्यास 'मास्टर साब' में यौन शोषण के कारण दलित समाज किस तरह पीसा जा रहा है, इस पर प्रकाश डाला है।

अचानक भगत लाल की लाल आँखों में खूनी डोरे उत्तर आए। मारे गुल्मे के उसने दाँत पीसते हुए कहा, 'जिस दिन मेंरी घरवाली को देखकर उनकी नीयत डोली थी, उसी दिन मैंने उस हरामजादे का मन:ही: मन दस बार खून कर दिया था। लेकिन आज जब वह मेंरे घर जबरदस्ती घुस गया, तब मैं उसका कुछ भी

बिगाड़ नहीं पाया। वे स्साले क्या हम मर्दों को जानवर समझते हैं कि मरद के पास सोई औरत को दबोच लेते हैं। मैं अपने ही घर में रह नहीं पाया। बच्चे वहीं पड़े हैं।'

भगत लाल की पत्नी को देखकर लछमन सिंह की लार टपकाने लगती है। एक दिन भगत लाल के घर में घूसकर उसके सामने ही उसके पत्नी की इज्जत लूटता है। भगत लाल कुछ भी न कर सका। वो लाचार की तरह खडा रहा था। अकेली स्त्री को हमेशा से एक भक्ष्य के रुप में देखा जाता है। सरयू विधवा होने के बाद वो अपने मायके चली गयी। अपने ससूर के घर पर नहीं रह सकी। मायके आने के बाद तीन दिनों में ही लछमन सिंह के भाई ने उसकी इज्जत लूट ली थी। गरीब और असहाय व्यक्ति अपने ऊपर होनेवाले अत्याचार को केवल सहन करता है।

जमींदार वर्ग दलित एवं गरीब वर्ग को अपनी जागीर मानता है। जमींदार दिन हो या रात दलितों की बस्ती में घुस जाते हैं और औरतों की इज्जत लुटते हैं। और उनके पति बीमारी या नींद का बहाना करके पड़े रहते हैं। तथा खेती में मजदुरी करनेवाली औरतों की दिन दहाडे इज्जत लुटते हैं। दलित एवं गरीब के घर की औरत को वो अपनी ही संपत्ती मानकर उनकी इज्जत को लुटता है बाकी परिवार के सदस्य विवशता के कारण केवल देखते रहते हैं।

महाश्वेता देवी जी ने 'मास्टर साब' उपन्यास में जमींदार किस प्रकार से हरिजन लडकियों और स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाते हैं। इसका यथार्थ चित्रण किया है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. महाश्वेता देवी जी का जन्म .... में हुआ।

   अ) ढाका   ब) लाहौर   क) दिल्ली   ड) कोलकत्ता

2. महाश्वेता देवी जी के माता का नाम... था।

   अ) निर्मला   ब) अंजली   क) धारित्री   ड) कौशल्या

3. मास्टर साब उपन्यास का प्रमुख पात्र... है।

   अ) शिवपूजन   ब) जगदीश महतो   क) दिलीप   ड) रामनरेश

4. मास्टर साब ने .... पत्रिका शुरु की थी।

   अ) दलित मित्र   ब) दलित उत्थान   क) हरिजनिस्तान   ड) हरिजन मित्र

5. मास्टर साब ..... गांव के स्कूल में अध्यापक थे।

   अ) आरा   ब) एकौरि   क) विहिया   ड) हरपुरा

6. मास्टर साब उपन्यास का प्रकाशन सन् ... ई. में हुआ।

   अ) 1969   ब) 1979   क) 1989   ड) 1975

7. महाश्वेता देवी जी को सन् ..... ई. में पद्मविभुषण से सम्मानित किया गया।

अ) 2000 ब) 2003 क) 2006 ड) 2008

8. मास्टर साब गांव गांव में ......बनाना चाहते थे।

अ) आत्मरक्षा वाहिनी ब) स्कूल क) संगठन ड) सुरक्षा दल

9. मास्टर साब का जन्म.... गांव में हुआ।

अ) आरा ब) एकौरि क) हरपुरा ड) विहिया

10. मास्टर साब चुनाव में..... का प्रचार करते हैं।

अ) रामनरेश ब) रामेश्वर क) शिवपूजन ड) नथुनी सिंह

11. हरिजनिस्तान के कुल .... अंक प्रकाशित हुए।

अ) 2 ब) 4 क) 6 ड) 12

12. किसान एवं मजदुरों की हडताल.... ने तोडी।

अ) शिवपूजन ब) मलखान सिंह क) अवध नारायण ड) गोपाल गुमाश्ता

13. चुनाव में रामनरेश के खिलाफ .... खडा हुआ था।

अ) शिवपूजन ब) अवध नारायण क) नथुनी सिंह ड) राजदेव

14. महाश्वेता जी को ..... रचना के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था।

अ) मास्टर साब ब) 1084 वें की माँ क) जंगल के दावेदार ड) झांशी की रानी

15. डाकू बनने से पहले रामेश्वर ..... में काम करता था।

अ) फौज ब) मिल क) खेत ड) शहर

2.5 पारिभाषिक शब्द/शब्दार्थ

1. अंचल- देश या प्रांत का एक भाग, क्षेत्र
2. उर्वर - उपजाऊ, जिसमें बहुत विचार निकले
3. फींचना - पछाडना
4. नालिश - फ़रियाद, अभियोग
5. अलख - जो देख न जा सके, अलक्ष्य
6. फिकरा - चिंतित, फिक्र करनेवाला
7. कचोट - टीस, रह रहकर होनेवाली वेदना
8. मीयाद- नियत किया हुआ समय
9. सरगना - सरदार, मुखिया
10. बुड़बक- बेवकूफ

11. उजबक – मूर्ख, बेवकूफ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. अ) ढाका	2. क) धारित्री	3. ब) जगदीश महतो	4. क) हरिजनिस्तान
5. अ) आरा	6. ब) 1979	7. क) 2006	8. अ) आत्मरक्षा वाहिनी
9. ब) एकौरि	10. अ) रामनरेश	11. अ) 2	12. ड) गोपाल गुमाश्ता
13. ड) राजदेव	14. ब) 1084 वें की माँ		15. अ) फौज

2.7 सारांश :

1. ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित बांग्ला की यशस्वी साहित्यकार महाश्वेता देवी के लिए शब्द और कर्म अलग-अलग नहीं हैं।
2. महाश्वेता देवी का कर्म और उनकी सारी चिंताएँ जहाँ शोषित एवं वंचित लोगों के लिए हैं।
3. वहीं उनके समग्र सृजन के केंद्र में भी शोषण के विरुद्ध तीव्र और सार्थक विद्रोह है। कहना न होगा कि उसका साक्षी उनका 'मास्टर साब' उपन्यास है।
4. महाश्वेता देवी जी ने अपने साहित्य में हमेशा शोषित एवं संघर्षरत समुदाय को केंद्र में रखा है।
5. 'मास्टर साब' एक जीवनी परक विचारोत्तेजक और मार्मिक उपन्यास है।
6. प्रस्तुत उपन्यास में शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ निरंतर संघर्ष करने वाले गरीब एवं समर्पित स्कूल मास्टर की आत्मीय व्यथा-कथा हैं।
7. प्रस्तुत उपन्यास के बहाने महाश्वेता देवी ने साठ-सत्तर के दशक में उपजे नक्सलवादी आंदोलन की गतिविधियों और उसके वैचारिक सरोकारों को भी पूरे साहस के साथ प्रस्तुत किया है।
8. दरअसल मास्टर साब की कहानी को कहने की कोशिश में महाश्वेता देवी ने समकालीन समाज और परिवेश की विसंगतियों के बीच एक साधारण चरित्र के जुझारू संकल्प को अपनी असाधारण लेखनी से प्रखर अभिव्यक्ति दी है।
9. प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने हरिजन एवं आदिवासी वर्ग के दुख और पीडा को वाणी दी है।
10. मास्टर साब उपन्यास हरिजन, किसान और मजदूर एवं स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार के विरोध में किया गया विद्रोह है।

2.8 स्वाध्याय –

2.8.1 संसदर्भ के उदाहरण –

1. ''लंबा-चौड़ा जवान और बेधड़क इंसान।''

   ''मैंने उसका नाम सुना है।''

   ''गाँव के लोग गए थे नालिश करने के लिए। लेकिन दारोगा ने उसकी रपट नहीं लिखी। उन्हें थाने से भगा दिया।''

   ''यही तो अभिशाप है जग्गू !''

   ''किस बात का अभिशाप ?''

   ''गरीब, दीन-हीन और हरिजन होने का अभिशाप।''

2. रुपये नहीं राजदेवजी आप जिनके दलाल हैं, ''उन जमींदारों को एकौरि गाँव के लोगों के सामने कबूल करना होगा कि कभी किसी हरिजन लड़की को हाथ तक नहीं लगाएँगे। सभी खेत मजदूर को सरकारी दर पर मजदूरी देंगे। नीची जात के चलते उन पर कोई जुल्म नहीं ढाएँगे तो मैं इस चुनाव से अपने आपको अलग, निरपेक्ष कर लूँगा।''

   ''तुम, तुम यह क्या कह रहे हो ?''

   ''तो फिर जाइए उनकी दलाली खाते रहिए। भले ही वे आपकी बहन या बहू को उठाकर ले जाएँ तो भी आप उनकी दलाली से बाज नहीं आएँगे यह मैं जानता हूँ।''

3. क्यों, सरकारी मजदूरी दो वरना हमें काम नहीं करना। हम सब हड़ताल करेंगे।''

   ''हड़ताल!''

   ''हाँ, हड़ताल?''

   ''और हम सब जो गाहे-बगाहे कर्ज लेते रहते हैं?''

   ''उसका सूद भी तो चुकाते हैं।''

   ''हाँ, लेकिन सूद काटकर ही तो वे कर्ज देते हैं।''

   ''इसलिए जल्दी से एक सभा बुलाओ। मैं तुम लोगों के साथ हूँ। उनके हाथों मैं पिटा जरूर हूँ लेकिन उनसे मुझे डर नहीं है। डरने से काम नहीं चलेगा। डरने से और डरते रहने से सिर्फ डर ही पैदा होता है।''

4. अरे पगली, तू जरा बाहर निकलकर घूम-फिर तो आ। इस साहार ब्लॉक मैं तेरे घरवाले का चेहरा भले ही कोई नहीं पहचानता। लेकिन मास्टर साब का नाम सुनकर सब सिर झुका देते हैं। वे नथुनी को जिंदा छोड़ देंगे?

''वह सब मैं घर में बैठे-बैठे सुनती और जानती हूँ?''

''तो फिर !

''तुम तो इतने ज्ञानी-मानी हो, इतने लोगों के नेता भी हो गए हो लेकिन अब भी वैसे ही भोले बने हुए हो। भगवान् न करे, अगर कुछ हो हवा जाए तो क्या साहार ब्लॉक या इस गाँव के लोग तुम्हारी जिंदगी लौटा पाएँगे।''

''मुझे कुछ नहीं होगा।''

2.8.2 दीर्घोत्तरी प्रश्न –

1. महाश्वेता देवी जी के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. 'मास्टर साब' उपन्यास के प्रमुख पात्रों का परिचय अपने शब्दों में दीजिए।
3. 'मास्टर साब' उपन्यास की कथावस्तु स्पष्ट कीजिए।
4. 'मास्टर साब' उपन्यास में चित्रित समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य –

1. 'मास्टर साब' उपन्यास की तुलना किसी मराठी उपन्यास से कीजिए।
2. महाश्वेता देवी और केशव मेश्राम के कहानियों की तुलना कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. जंगल के दावेदार – महाश्वते देवी
2. 1084 वें की माँ – महाश्वते देवी
3. एक और विभाजन – महाश्वते देवी
4. ईट के उपर ईट – महाश्वते देवी
5. संघर्ष – महाश्वते देवी

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मास्टरसाब का प्रकाशन सन्............ ई. में हुआ है।

   अ. 1975 ब. 1976 क. 1979 ड. 1980

2. मास्टरसाब गाँव-गाँव में ....बनाना चाहते थे।

अ. आत्मरक्षावाहिनी　　　　ब. स्कूल

क. सुरक्षा दल　　　　ड. कॉलेज

3. किसान तथा मजदूरों की हडताल .... ने तोडी।

अ. शिवपूजन　　ब. मलखानसिंह　　क. गोपाल गुमास्ता　　ड. अवध

4. डाकू बनने से पूर्व रामेश्वर..... काम करता था।

अ. फौज.　　ब. खेत　　क. मिल　　ड. शहर

5. महाश्वेतादेवी का जन्म..........में हुआ।

अ. ढाका　　ब. लाहोर　　क. दिल्ली　　ड. कोलकाता

उत्तर –

1. क　　2. अ　　3. क　　4. अ　　5. अ

2. **उचित मिलान**

1. महाश्वेतादेवी जन्म	अ. हरिजन लडकी लैंगिक शोषण
2. मास्टर साब का जन्म	ब. राजदेव
3. मास्टर साब पत्रिका नाम	क. हरिजनिस्तान
4. रमेश का चुनावी प्रतिस्पर्धी	ड. एकौरि
5. मास्टर साब जमींदार	इ. धारित्रीदेवी

उत्तर सही मिलान

1–इ,　　2–ड,　　3–क,　　4–ब,　　5–अ

3. **सही गलत का निर्णय करें**

1. मास्टर साब महादेवी वर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है, जबकि, मास्टर साब का प्रमुख पात्र जगदीश महतों है।
2. मास्टर साब उपन्यास में जमींदार दलित स्त्रियों को केंद्र में रखा है, जबकि, मास्टर साब के जमींदार गाँव की दलित स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाते हैं।
3. नथुनी सिंह जमींदारों का प्रतिनिधित्त्व करता है, जबकि नथुनीसिंह का मास्टर साब पर काफी प्रेम था।
4. रामेश्वर मास्टरसाब का दुश्मन है, मास्टर साब का नाम जगदीबाबू है।
5. मास्टरसाब एक जीवनीपरक मार्मिक उपन्यास है, उसमें जमींदारोंद्वारा हरिजन स्त्रियों पर किएजाने वाले अत्याचार की दास्तान हैं।

उत्तर सही गलत

1. पहला गलत तो दूसरा सही।
2. पहला सही दूसरा गलत है।
3. पहला सही, तो दूसरा गलत है।
4. पहला गलता तो दूसरा भी गलत है।
5. पहला सही और दूसरा भी सही है।

❑❑❑

इकाई 3
अधूरे मनुष्य (कहानी संग्रह) – डी. जयकान्तन (तमिल)
अनु. डॉ. के. ए. जमुना

अनुक्रम –

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय–विवेचन

3.3.1 डी. जयकान्तन : जीवन परिचय, व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

3.3.2 'अधूरे मनुष्य' का वस्तु विवेचन

3.3.3 भावपक्ष एवं कलापक्ष के आधार पर 'अधूरे मनुष्य' का अध्ययन

3.3.4 'अधूरे मनुष्य' की समसामयिकता

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द एवं शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. तमिल कथाकार डी जयकांतन के व्यक्तित्त्व से परिचित हो जाएंगे।
2. तमिल कहानीकार डी जयकांतन के कृतित्त्व एवं साहित्यिक योगदान से परिचित हो सकेंगे।
3. तमिल कहानीकार डी जयकांतन जी का डॉ. के. आर. जमुना द्वारा हिंदी में अनूदित कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' से पाठक अवगत हो जाएंगे।
4. डी जयकांतन के कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' के भावपक्ष एवं कलापक्ष को समझ सकेंगे।
5. डी जयकांतन का कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' की विषयवस्तु से परिचित हो सकेंगे।
6. डी जयकांतन जी का कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' की समसामयिकता से परिचित होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

'भारतीय साहित्य' की संकल्पना का विस्तार काफी बड़ी है। भारत विभिन्न प्रकार की भाषा और बोलियां को बोलनेवाला देश है। जब हम 'भारतीय साहित्य' की बात करते हैं तब सभी भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य को 'भारतीय साहित्य' की कोटि में रखा जा जाता है। परिणाम स्वरुप हिंदी, मराठी, तमिल, कन्नड़, मलयालम, बंगाली, भोजपुरी, गुजराती, उर्दू, बिहार आदि भाषाओं के साहित्य को 'भारतीय साहित्य' की परिधि में लिया जाता है। अतः 'भारतीय साहित्य' का अध्ययन करते समय इन भारतीय भाषाओं के साहित्य को पढ़ना महत्वपूर्ण बन जाता है। स्नातकोत्तर की पढ़ाई की दृष्टि से 'भारतीय साहित्य' के सैद्धांतिक विवेचन का अध्ययन करने के साथ-साथ हमें पाठ्यक्रम में निर्धारित किए गए तमिल भाषा में लिखित कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' का अध्ययन करना है। यह निर्धारित किया गया साहित्य 'भारतीय साहित्य' के परिप्रेक्ष्य में आता है। प्रस्तुति इकाई में हम भारतीय साहित्य की संकल्पना की दृष्टि से तमिल कहानीकार डी जयकांतन जी के कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' का अध्ययन करनेवाले हैं। इस इकाई में डी जयकांतन जी का जीवन परिचय, उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की विषयवस्तु, 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की समसामयिकता, 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह का भावपक्ष और कलापक्ष आदि का समग्र अध्ययन किया जानेवाला है।

3.3 विषय विवेचन :

3.3.1 डी जयकांतन का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

डी जयकांतन जी आधुनिक तमिल कथाकार के रूप में अग्रगन्य है। तमिल भाषा के साहित्य को समृद्ध करने में डी जयकांतन जी का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी जीवनीपरक नोट्स तथा अनुवाद आदि क्षेत्र में उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्र्योत्तर काल में प्रमुख कथाकार एवं साहित्य जगत में आज डी जयकांतन को तमिल में 'मोंपासा' कहा जाता है। उन्हें 'जेके' इस उपनाम से भी जाना जाता है। अतः उनकी कृतियों का अध्ययन करने से पहले हमें उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत होना जरूरी है। क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपनी अनुभूति और स्वयं को अलग कर किसी भी रचना का निर्माण नहीं कर सकता। इसलिए किसी भी रचनाकार की साहित्यिक रचना का अध्ययन करते समय हमें रचनाकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से उजागर होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

डी जयकांतन जी आधुनिक तमिल साहित्य जगत के महत्वपूर्ण कथाकार हैं। जिनका परिचय निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

जन्म :

डी जयकांतन जी का जन्म 2 मई 1934 में कुंड्डालोर नामक परिवार में तमिलनाडु स्थित कडलूर में हुआ। जो चेन्नई में आता है। वह एक किसान परिवार से हैं।

परिवार एवं शिक्षा–दीक्षा :

डी जयकांतन जी की स्कूली शिक्षा मात्र पांचवी कक्षा ही रही है। बारह साल की उम्र में ही वह घर से भाग कर अपने चाचा के पास चले गए। क्योंकि उनकी बचपन से राजनीति में दिलचस्पी थी । उनके चाचा राजनीति में सक्रिय थे, इसलिए पांचवी कक्षा से ही उन्होंने स्कूली शिक्षा को अलविदा कहा। ताकि वह राजनीति में सक्रियता से भाग ले सके, पाठशाला या स्कूली शिक्षा उनके राजनीतिक सक्रियता में कोई बाधा न पहुंचाए। वह अपनी स्कूली शिक्षा को छोड़कर मद्रास में 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' के प्रिंटिंग प्रेस में एक कंपोजिटर के रूप में कार्य किया। यह पार्टी उनका घर और विद्यालय दोनों बनी। कंपोजिटर का काम करते समय वह अन्य काम भी सीख गए। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त अन्य शिक्षा भी कई मार्गो से हासिल की। उन्हें विद्वान बी.सी. लिंगम जैसे विद्वानों के कारण बेहतर शिक्षा प्राप्त हो सकी। डिस्कवरी ऑफ इंडिया पढ़कर डी जयकांत ने अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने खुद माना है कि नेहरू ही मेरे अंग्रेजी और इतिहास के शिक्षक रहे हैं। उनका परिवार सामान्य किसान परिवार था। उनके परिवार में मां, चाचा, पत्नी और दो बेटियां और एक बेटा है।

साहित्यिक प्रेरणा :

डी जयकांतन जी ने मद्रास में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होने पर वहां कंपोजिटर का काम शुरू किया। साथ ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की पत्रिका 'जनशक्ति' में काम करने लगे। वही से उन्हें लेखन में रुचि उत्पन्न हुई। वहीं उन्हें विश्व साहित्य, संस्कृति, राजनीति, अर्थशास्त्र और पत्रकारिता से संबंधित पुस्तक पढ़ने का मौका मिला और पार्टी के नेताओं के प्रोत्साहन पर उन्होंने लिखना शुरू किया, इस प्रकार वे लिखते ही गए। उनके साहित्यिक जीवन की मूल शुरुआत यहीं से होती है।

मृत्यु :

तमिल साहित्य के महत्वपूर्ण कथाकार डी जयकांतन जी की मृत्यु 8 अप्रैल, 2015 को मद्रास में हुई। तब वे 81 वर्ष के थे।

अतः कह सकते हैं कि डी जयकांतन जी का जीवन अनेक संघर्षों से भरा हुआ है। उन्हें अपने जीवन संघर्ष के चलते अपने जीवन में सफलता प्राप्त हुई। अतः वे एक राजनीति से संबंधित निडर लेखक रहे। जिससे उनका व्यक्तित्व असाधारण बन पड़ा है।

डी जयकांतन जी का कृतित्व :

डी जयकांतन जी प्रसिद्ध तमिल कथाकार हैं। भारतीय साहित्य में 'ज्ञानपीठ' जैसे साहित्य का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त करनेवाले एक महान भारतीय साहित्यकार हैं। लगभग जीवन के 50 वर्ष साहित्यिक लेखन में कार्यरत रहे। निश्चित रूप से भारतीय साहित्यकारों के महान रचनाकारों में से वे एक श्रेष्ठ रचनात्मक बुद्धिजीवी है। वह एक कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, पत्रकार, निर्देशक, आलोचक एवं एक अनुवादक भी है। अतः उनके साहित्यिक कृतित्व को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

कहानी साहित्य :

डी जयकांतन जी प्रसिद्ध कथाकार है। जिन्होंने तमिल भाषा में लगभग 200 कहानियों का सृजन किया है। सामाजिक यथार्थ से प्रेरित उनकी कहानियों में भारतीय समाज बाल विधवा, विधवा पुनर्विवाह, नारी पीड़ा और नारी मुक्ति, निम्न वर्ग का जीवन संघर्ष, सामाजिक समस्याएं, पारिवारिक समस्याएं, मानवीय व्यवहारों की सूक्ष्म जटिलताएं आदि उनके कहानियों के विषय रहे। जिसे भारतीय समाज का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में युगसंधि, अधूरे मनुष्य, उदयमन, ओरू पिडि चोरु, इतइप्पउम, कुरूप्पम, देवन वरुवारा, मालै मायक्कन, चुमैतांगि, उण्मै चुडुम, पुदिय वार्पुकल, सुयद रिशनम, इरंद कालगढळ, गुरुपीडम, जयकांतन शिरूकदैगळ ओर चक्रम निर्पदिल्लै, सुयदरिशनम आदि कहानी संग्रह का निर्माण किया है। इन कहानी संग्रहों की भाषा सहज, सरल, प्रभावपूर्ण है। भावपक्ष भी अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। अतः तमिल कहानी साहित्य को समृद्ध करने में डी जयकांतन जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

उपन्यास साहित्य :

डी जयकांतन एक कहानीकार होने के साथ-साथ एक उपन्यासकार भी हैं। जिन्होंने भारतीय उपन्यास साहित्य को समृद्ध बनाया है। उन्होंने सामाजिक जीवन जीते समय आए हुए अनुभव और अपनी प्रतिभाओं के बल पर कहानी लेखन के बाद उपन्यास लेखन में अपने कदम रखें। आज तक उन्होंने लगभग 40 उपन्यासों का निर्माण किया है। जैसे – वाषक्कै, अषैक्किरदु, उन्नेप्पोल ओरुवन, पारी सुक्कुपो, चिल नेरंगल्लि चिल्ल मनिदरगल, ओरू नडी है, नाडहम पार्किक्कराल, जय जय शंकर, मनोवेलि मनिदरगल, महायज्ञ आदि। इन उपन्यासों में डी जयकांतन जी ने समाज का नग्न यथार्थ चित्रण करते हुए सामाजिक समस्याएं, स्वयं का यथार्थवाद, बाल विधवा, विधवा पुनर्विवाह, नारी जीवन एवं संघर्ष, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश, भारतीय परिवार की वास्तविकता, निम्न एवं मध्यवर्ग का संघर्ष, भारतीय संस्कृति एवं परंपरा आदि विषयों को सूक्ष्मता से वाणी देने का कार्य उन्होंने किया है। उनके उपन्यासों की भाषा में सजीवता, भावात्मकता, प्रवाहमहता आदि गुण विद्यमान है। उनकी विशिष्ट शैली के कारण उपन्यास प्रभावी बन पड़े हैं। अतः उनके विराट उपन्यास साहित्य से तमिल उपन्यास साहित्य सक्षम बन पड़ा है।

निबंध लेखन :

डी जयकांतन तमिल कहानीकार और उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण निबंधकार भी है। जिन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में उत्कृष्ट निबंधों का सृजन किया है। डी जयकांतन जी ने साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक आदि विषयों पर श्रेष्ठ निबंधों का निर्माण किया है। उनके निबंध जन सामान्य पाठकों में काफी प्रचलित रहे। उनके निबंधों में रोचकता, संप्रेषणीयता आदि गुण विद्यमान है। उनके कुछ महत्वपूर्ण निबंध इस प्रकार है- मुन्नोट्टम, अवरगळ, उळळे, इरूक्किरारगळ, सुतन्दिर, प्रजयिन कुरल, भारती पाडल आदि।

फिल्म निर्माण और उपन्यास :

डी जयकांतन जी साहित्य के साथ-साथ फिल्म जगत के साथ भी जुड़े हुए थे । उन्होंने सन् 1964 में फिल्म क्षेत्र में जाने का निर्णय लिया। उन्होंने कुछ फिल्मों का निर्माण और निर्देशन भी किया है। उन्होंने उन्नेप्पोल ओरुवन, यारुक्कग अवुदान, पदु चेरुप्पु, कडिक्कुम इंटरनेशनल आदि फिल्मों का निर्देशन किया है। उनके 10 उपन्यासों पर फिल्म निर्माण का कार्य हो चुका है। अर्थात् उनके 10 उपन्यासों का फिल्म रूपांतरण सफलता के साथ हुआ है।

अनुवाद का क्षेत्र :

डी जयकांतन जी ने अनुवाद के क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके कुछ उपन्यास और कहानियों का भारतीय, विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए हैं। साथ ही उन्होंने रोमा रोला कृत महात्मा गांधी जी की जीवनी का तमील भाषा में अनुवाद किया है।

पुरस्कार एव सम्मान :

डी जयकांतन जी ने अपने साहित्यिक जीवन में लगभग 200 कहानियां, 40 उपन्यास, 15 निबंध संग्रहों का निर्माण किया है तथा अनुवाद, निर्देशन, पत्रकारिता, संपादन के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जिसके कारण उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार,पद्म भूषण पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू अवॉर्ड तथा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ज्ञानपीठ पुरस्कार आदि पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया है।

इस तरह समग्र रूप से कहा जा सकता है कि डी जयकांतन जी का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व सराहनीय है। जो पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़ता है तथा उनके लिए कई आदर्श की स्थापना करता है।

3.3.2 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह का वस्तु विवेचन :

कहानी वर्तमानकालीन साहित्य जगत की महत्वपूर्ण विधा है। आज के भाग-दौड़ की जीवन प्रणाली में मनुष्य के पास समय की उपलब्धि काफी कम मिलती है। ऐसे समय कहानी पढ़ने में लोगों की अधिक रुचि दिखाई देती है। इस कारण कहानी साहित्य जगत की एक लोकप्रिय विधा है। सुप्रसिद्ध तमिल कहानीकार डी जयकांतन ने तमिल भाषा में कहानी को विधा को सशक्त रूप देने का प्रयास किया है। उन्होंने अब तक लगभग 200 कहानियों का सृजन किया है। 'अधूरे मनुष्य' डी. जयकांतन जी का अनुदित कहानी संग्रह है। मूल तमिल भाषा में लिखित इस कहानी संग्रह का हिंदी अनुवाद डॉ. ए. के. जमुना जी ने 'अधूरे मनुष्य' इन इस नाम से किया है। इस कहानी संग्रह में कुल 11 कहानियां संकलित है। जिसमें से ताश का खेल, मौन एक भाषा है, युगसंधि, एडल्ट्स ओनली, दिन की एक पैसेंजर गाड़ी में, अपना-अपना दृष्टिकोण, सत्य झुलसता है और अधूरे मनुष्य जिसका अध्ययन हम करनेवाले हैं।

डी जयकांतन जी ने अपनी कहानियों में जनसाधारण की भावनाओं और उनके लक्षणों का चित्रण बड़ी मार्मिकता से किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में सभी समाज को उभरने का प्रयास किया है। सभी वर्गों के

लोगों को अपनी कहानियों के पात्र बनाया, परंतु अधिकता समाज का निम्नवर्ग, पीड़ित एवं दलित वर्ग की ही रही है। जो उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। उन्होंने सामाजिकता को उभारते समय मनुष्य और मानवीय समाज से जुड़ी समस्याओं को सहज रूप से वाणी देने का प्रयास किया है। अपनी कहानियों में कहानीकार ने मानव से संबंधित विभिन्न विषयों को अपनी कहानी के माध्यम से वाणी दी है। डी जयकांतन जी का अनुदित कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' इसके लिए अपवाद नहीं है। इस कहानी संग्रह में कहानीकार ने मानवीय समाज का यथार्थ चित्र खींचा है। उसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। उन्होंने अनेक विषयों को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। जैसे, नारी चित्रण, पारिवारिक त्रासदी, आदर्श भारतीय नारी, मातृत्व की संकल्पना, मौन का रूप, दो पीढ़ियों का अंतर, विधवा विवाह, बाल विवाह, बाल पुनर्विवाह, नारी संघर्ष, पारंपारिक रूढ़ि-परंपराएं, रीति-रिवाज, आधुनिकता, आधुनिक जीवन प्रणाली, पारिवारिक रिश्तों की दृढ़ता, प्रेम की संकल्पना और त्याग, मनुष्य की मानसिकता, अनमेल विवाह, दांपत्य जीवन, भारतीय संस्कार आदि विभिन्न विषयों को अपनी कहानियों की विषय वस्तु के रूप में चित्रित किया है। जिसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

डी जयकांतन जी की एक प्रसिद्ध कहानी है - **मौन एक भाषा है।** यह ग्रामीण परिवेश और ग्रामीण संस्कृति के दर्शन करनेवाली कहानी है। जिसमें मनुष्य की मौन प्रवृत्ति को एक भाषा के रूप में देखा गया है। कहानी की मूल विषय वस्तु है, रवि की मां का हमेशा मौन रहना। परंतु मां अलमु ओच्चि का मौन रहना भी बहुत कुछ कह देता है। इस कहानी के पत्र सिंगारम, रवि, सुंदरम, कामाक्षी, सुशीला, भाभी, इंदिरा आदि पात्रों के माध्यम से कहानीकार ने मौन को सजीव भाषा का रूप प्रदान किया है। कहानी में मां अलमु ओच्चि को आठ संताने हैं। चार बेटी और चार बेटियां। उन्हें दामाद और पोते-पोतियो भी हैं। ऐसे में उसका दूसरा बेटा रवि विदेश में पढ़कर विदेशी लड़की (डॉक्टर) से शादी करता है। यही हरकत माता-पिता को पसंद नहीं आती। पिता उसे त्याग देते हैं। मां अलमु हमेशा की तरह चुप बैठी रहती है। लगभग शादी के पांच साल तक बेटा रवि घर नहीं आता। परंतु उसकी मां जब लगभग पचास साल की उम्र में गर्भवती बनती है। तो वहां अपने जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने का प्रयास करती है। तभी भी वह अपने पति से इस बात को छुपा कर रखती है। उसे शर्म महसूस होती है, जिसके कारण आत्महत्या का प्रयास करती हैं। तभी पांच साल बाद बेटा वापस आता है। तब मां अलमु अपना मानसिक संतुलन खो बैठती हैं, और बार-बार अपने पति सिंगारम को कोसती है। तभी वापस आया रवि अपनी मां को बस में करता है और आत्महत्या का कारण पुछता है, तब उसे मां से गर्भवती होने की बात पता चलती हैं, तब रवि उस बात को सहज रूप से स्वीकारता है और यह सुखद समाचार परिवार को देता है। वह कहता है, ''एक शुभ संदेश सुनो.... हमारे यहां भाई या बहन जन्म लेनेवाला है।'' साथ ही अपनी मां को भी इस मातृत्व के महत्व से अवगत करता है वह कहता है, ''मां, चुप रहो। व्यर्थ बक-बक मत करो... इस समय अपमानित होने की कोई बात नहीं है.... तुम इतनी-सी बात के लिए पागलों की तरह आत्महत्या करने के लिए तैयार हो गयी? क्या तुम जानती हो कि विदेशों में इसे अत्यंत महत्वपूर्ण और गौरव का विषय समझा जाता है? तुमने बहुत पुण्य किए

है... ईर्ष्या के कारण कोई तुम्हारा उपहास करें तो करने दो। मां, मातृत्त्व की महिमा अपार है। हाय मां! इतनी-सी बात के लिए तुमने ऐसा भयंकर कदम क्यों उठाया? मां... ओ मां...।''

परिवार के सारे सदस्य मां के इस आचरण पर मौन पालते हैं और उसका विरोध करते हैं। उसे अपमानित होने सा महसूस करते हुए मां के इस आचरण का विरोध करते हैं। परंतु बेटा पढ़ा-लिखा और विचारों से सक्षम होने के कारण वह उस यथार्थ को स्वीकारता है और मां को आधार देता मातृत्व के गौरव को, उसके महत्व को समझता है। साथ ही एक नारी सम्मान की बात भी करता है। नारी के नारीत्व दशा को जीवन की सार्थकता बताता है। साथ ही अपने पिताजी से कहकर उसे अपने साथ ले जाता है। तभी सभी मौन रहते हैं। बेटा रवि कहता है, ''क्यों मां, यहां तेरा अपमान करनेवाले लोग कौन-सी भाषा में बात करते हैं?... सभी मौन है परंतु काम बराबर हो रहा है। मौन रहकर क्या प्रेम और सम्मान के भाव को व्यक्त नहीं किया जा सकता? किसी की निंदा करने के लिए और किसी के प्रति प्रेम को व्यक्त करने के लिए क्या भाषा-रूप माध्यम का होना जरूरी है?''

इन संवादों से कहानी का केंद्रीय विषय उजागर होता है। इसी तरह कहानीकार ने ग्रामीण संस्कृति, लोगों की धारणाएं, बच्चा न होने का दुःख, पाश्चात्य विचारधारा, प्रौढ़ अवस्था में संतान होने का दुख, स्त्री के प्रति पुरुष या स्त्री के ही द्वोष से देखने का नजरिया, मातृत्व की दशा, नारी सम्मान, पति-पत्नी के बीच का प्रेम आदि विभिन्न विषयों को वाणी दी है।

डी जयकांतन की कहानी 'ताश का खेल' नाते-रिश्ते के महत्व को उजागर करती हैं। रिश्ते ईश्वर का खेल ताश का खेल है। संसार के सारे मनुष्य इस खेल के पत्ते हैं। वही ईश्वर संसार को चलना है। कहानी की मूल विषय वस्तु पति-पत्नी के रिश्ते को उजागर करना रहा है। कहानी की मूल पात्र जानकी है। उसके पति शिवसामी और उसकी मां सरस्वती अम्माल यह एक परिवार है। तो दूसरी ओर रामभद्रन और लक्ष्मी का परिवार है। इस दो परिवारों के माध्यम से कहानीकार ने पति-पत्नी के रिश्ते की अहमियत बताई है। कहानी की नायिका जानकी बहुत सुंदर और सुशील है। परंतु वहा अत्यंत गरीब है। इसलिए उसकी शादी एक अमीर घर के शिवसामी से होती है। परंतु शिवस्वामी देखने में अत्यंत कुरूप है। जानकी और शिवसामी में बनती नहीं थी। जानकी इस रिश्ते से खुश नहीं थी। वह इस रिश्ते के कारण आत्महत्या करने की भी सोचती है। परंतु अपने बेटे रवि को देखकर और सास सरस्वती अम्माल के समझाने पर रुक जाती है और मुक्त रूप से अपनी जिंदगी जीती है। वह अपने पति से खुश नहीं है। इसलिए वह रवि को लेकर सिनेमा देखने भी चली जाती है। उसका पति शिवसामी ऑफिस से लौटने पर रात ग्यारह बजे तक ताश का खेल खेलता रहता है। इसी खेल में उसका दोस्त रामभद्रन भी रहता है। रामभद्रन दिखने में अत्यंत सुंदर है, तो उसकी पत्नी लक्ष्मी अत्यंत कुरूप है। परंतु अपनी मजबूरी के कारण रामभद्रन को लक्ष्मी से शादी करनी पड़ती है। वह भी इस रिश्ते से खुश नहीं था। परिणाम स्वरुप वह अपना समय ताश खेलने में लगा देता था। अतः इन दो परिवारों से जानकी और रामभद्रन इन रिश्तों से खुश नहीं थे। परंतु शादी जैसे बंधन में बंध चुके थे। जो भारतीय संस्कृति का एक बड़ा संस्कार है। इस बंधन में बंधे स्त्री-पुरुष हमेशा के लिए एक-दूसरे के लिए बनते हैं। एक दिन जानकी सिनेमा देखने चली जाती है। सिनेमा देखने के उपरांत वह कुछ खाने के लिए होटल चली

जाती है, तब वहां उसे रामभद्रन मिलता है। दोनों एक-दूसरे को पहचान लेते हैं। दोनों में अनेक प्रकार के बातें होती रहती हैं। रामभद्रन अपने दुख को और जानकी अपने दुख को एक-दूसरे के सामने प्रकट करते हैं। जिससे दोनों में एक प्रकार का आकर्षण तैयार होता है। कुछ पल के लिए दोनों को ऐसा लगता है कि दोनों एक दूसरे के लिए बने हैं। दोनों घंटे सागर के तट पर बैठते हैं, तब रामभद्रन कहता है, ''हम दोनों भी ताश के पत्ते हैं। खेलनेवाले शिवस्वामी और लक्ष्मण है। परस्पर एक-दूसरे से ताश के पत्तों को बदल लेना ही तो खेल है। जानकी तू बुद्धिमती है। मेरे शब्दों का अर्थ समझ रही है न?''

पल भर के काल्पनिक सुख के बाद जानकी होश में आती हैं और अपने यथार्थ की स्थिति और अपनी नैतिक जिम्मेदारी को समझ कर रामभद्रन को कहती हैं, ''आपसे नाराज होने का मुझे अधिकार कहां है? अरे हां, मैंने आपको ताश के खेल के बारे में पूरी बात नहीं बतायी। आपने कहा था कि खेलनेवाले मेरे पति और आपकी पत्नी है। वस्तुत: आपकी यह बात गलत है। वह भी हमारी तरह ताश के पत्ते हैं। हां...आप कह सकते हैं कि उनका कोई 'प्वाइण्ट' नहीं है। खेलनेवाला मनुष्य नहीं, ईश्वर है। वह गलत खेल रहा है, ऐसा कहने का हमें अधिकार कहां है?''

अतः वह इसी रामभद्रन को अपना भाई मानती है और उसे अपने पति होने के और पत्नी होने के नैतिक जिम्मेदारियों से अवगत कराती है। समग्र रूप से कह सकते हैं कि इन कहानी के माध्यम से लेखक ने भारतीय संस्कार और शादी, पति-पत्नी के नैतिक जिम्मेदारियां, नारी मन की विशालता, नारी व्यथा, अमीरी-गरीबी, सामान्य मनुष्य की जिम्मेदारियां आदि विषयवस्तु को अत्यंत मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है।

'युगसंधि' अर्थात् दो युगों का मिलन। आधुनिक विचारधारा से प्रेरित डी जयकांतन जी अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को वाणी देते हैं। उनकी 'युगसंधि' कहानी भी नए और पुराने संघर्ष का चित्रण है। इस कहानी में कहानीकार ने गौरी दादी और उसकी पोती गीता के जीवन संघर्ष के माध्यम से पुराने युग और नए युग की संधि को प्रस्तुत किया है। कहानी का मूल पात्र सत्तर साल की बुढि विधवा गोरी दादी है। जो पुराने युग या पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। तो दूसरी नारी गीता गौरी दादी के बेटे की लड़की है। वह भी बाल विधवा है। वह नए युग या पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। इस कहानी में पुराने संस्कार, शास्त्र, रूढ़ि-परंपराएं आदि को माननेवाले पात्र के रूप में गौरी दादी का बेटा गणेश अय्यर, उसकी पत्नी पार्वती तथा उनकी अन्य संताने जैसे - मीणा, जमा, गणेश और अय्यर पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हुए पुराने संस्कारों को, रीति-रिवाज को, रूढ़ि-परंपराओं को, शास्त्र सम्मत नियमों का स्वीकार करने वाले है। जिसे वह छोड़ना नहीं चाहते। परंतु गणेश की मां और दादी भी उसके पहले की पीढ़ी से संस्कारीत है। वह सोलह वर्ष की आयु में ही एक बच्चे की मां बनती हैं और पति का देहांत होता है। वह विधवा बनती है, तब से लेकर आज तक सत्तर वर्ष तक की आयु तक वह अपना जीवन अपने बेटे को बड़ा करते और अन्य पोता पोतीयों के साथ बिताती हैं। परंतु दादी की सबसे अधिक निकटता अपने बेटे और बड़ी पोती गीता से है। गौरी दादी और गीता का जीवन एक जैसा ही बन जाता है। क्योंकि जब गीता की शादी के दस महीने बाद ही उसका पति मर जाता है। जिसके कारण वह बाल विधवा बनती है। माता-पिता उसे नसीब

का फल मान कर शास्त्र सम्मत या पुराने संस्कारों के अनुसार उसे विधवा रूप में ही देखते रहते हैं। लेकिन दादी की तरह ही गीता के भी कुछ सपने होते हैं, अपनी कुछ मानसिक इच्छाएं होती हैं, उसे वह पूरा करना चाहती है। पिता उसे टीचिंग ट्रेनिंग देते हैं। जिसकी बदौलत वहा शहर में ही नौकरी करती है। परंतु कुछ वर्ष बाद उसका तबादला होता है और पिता उसे दूसरी जगह नौकरी के लिए जाने के लिए मना कर देते हैं। क्योंकि तीस साल की कम उम्र की विधवा बेटी को वह अकेले कैसे भेज सकते थे। उन पर पुराने संस्कार हावी बनते हैं। उन्हें गीता की व्यथा समझ में नहीं आती। परंतु दादी उसकी भावनाओं को समझ कर उसके साथ रहने का फैसला करती है और उसके साथ रहने चली जाती हैं। क्योंकि दादी ने उस जैसी अपनी जिंदगी की जी थी। वह उसके दर्द, व्यथा को जान सकती थी। दादी पुराने संस्कारों में पलने बढ़ने के बावजूद प्रगतिशीलता को स्वीकारती है, जब गीता अपनी इच्छा और भावनाओं के अनुसार अपने सहकर्मी हिंदी पंडित श्री रामचंद्र से कानूनी ढंग से शादी का निर्णय लेती है और गौरी दादीद्वारा अपनी बात पिता को पत्र के द्वारा कह देती हैं। जिसमें वह पुराने संस्कार,शास्त्र के नियम, पुराने रीति-रिवाज, रूढ़ि-परंपराओं का विरोध करती हुई स्वतंत्र रूप से अपना निर्णय लेती है। वह पत्र में माता-पिता और दादी को लिखती है कि, ''बाबूजी, बात यह है कि मैंने अपने एक सहकर्मी हिंदी के पंडित श्री रामचंद्रन से अगले रविवार को कानूनी ढंग से विवाह करने का निश्चय किया है। वह जानते हैं कि मैं विधवा हूं। 'ऐसा करना पाप है,' इस भावना और विचार को लेकर मैं छह महीने तक अपने-आप से उलझती रही। अब मैं एक नीश्यच पर पहुंच गई हूं। मैं जान गई हूं कि मैं पूरे मन से वैधव्य व्रत का पालन नहीं कर सकती। मेरी सच्चरित्रता इसी बात में है कि मैं तरह-तरह के भेष धारण कर स्वयं कलंकित होकर परिवार को भी कलंकित न करूं। इस तीस साल की उम्र में भी मैं अपनी भावनाओं को अपने वश में नहीं कर पा रही हूं। मन में डर है कि कहीं पांच साल बाद फिर यही निर्णय न लेना पड़ जाए। इसी से मैंने सोचा कि इस काम को अभी कर लेना ही अच्छा है। मेरे विचार में मैं जो कुछ कर रही हूं, वह ठीक ही है।''

''हां, मैंने यह निर्णय अपनी मर्जी से ही लिया है। मेरे लिए दादीजी के अलावा और किसी ने अपनी सुख सुविधाओं का त्याग किया है? कोई भी मेरे लिए ऐसा क्यों करेगा?''

ऐसे समय माता-पिता तथा उसकी बीस साल की बहन मीणा भी उसके इस कृत्य का विरोध करती हैं और उसे अपने लिए मरी समझती है। परंतु गौरी दादी अपने बड़े बेटे, बहु पार्वती के समान न सोचकर एक प्रगतिवादी नारी के समान सोचकर अपने बेटे से कहती है, ''क्या तेरे धर्म शास्त्र में यही लिखा है कि तू विधवा बेटी को रंगीन कपड़े पहने दे? बाल संवरकर, जुड़ा बनाकर स्कूल जाने दे? स्वयं कमाकर अपना पेट पालने दे? इन सब बातों के लिए जब तूने मुझसे अनुमति मांगी, तो मैं चुपचाप अनुमति दे दी। जानते हो, क्यों? क्योंकि जमाना बदल रहा है। इसके साथ मनुष्य को भी बदलना चाहिए।''

इस प्रकार गौरी दादी गीता का पक्ष लेकर पुराने, जर्जर संस्कारों को त्याग कर गीता के आधुनिक विचारों को स्वीकारती हैं। यही दो युगों, दो विचारों और दो पीढियों की युगसंधि है। अतः इस कहानी की मूल विषय वस्तु दो पीढ़ियों की विचारधारा को स्पष्ट करना है। दो युगों के मेल को दिखाना साथ ही कहानीकार इस कहानी के माध्यम से पुराने और नई पीढ़ी का अंतर, पुरानी रूढि-परंपराओं का त्याग,

आधुनिक जीवन प्रणाली का स्वीकार, गौरी दादी और गीता का जीवन संघर्ष, उनका दुख और पीड़ा की अभिव्यक्ति, नारी मुक्ति की पहल, आधुनिक नारी की सोच, विधवा नारियों का यथार्थ और समाज आदि विषय वस्तुओं को विस्तार से चित्रित किया है।

डी जयकांतन की कहानी '**अधूरे मनुष्य**' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। जिसकी मूल विषयवस्तु मनुष्य की विचित्र मानसिकता का चित्रण करना है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजम नाम की एक नारी के जीवन की अभिव्यक्ति के माध्यम से नारी के दोहरी की अर्थात् विचित्र मानसिकता का चित्रण किया है। प्रस्तुत कहानी का केंद्रीय पात्र राजम एक विवाहित नारी है। कण्णन से उसका विवाह होकर पांच साल बीत चुके हैं। कण्णन उसका पति है जो एक ऑफिस में काम करता है। उसके ही ऑफिस में काम करनेवाला उसका एक मित्र राघवन और राघवन का एक मित्र डॉक्टर यह दो पात्र कहानी के अन्य पात्र हैं। कहानी की मूल नारी पात्र राजम कहानी में मानसिक रोग का शिकार है। उसकी रोजाना की गतिविधियां विचित्र है। जिसका निरीक्षण कर उसका पति उसे साइक्याट्रिस्ट डॉक्टर के पास लेकर जाना चाहता है, परंतु राजन को सीधे वह यह पुछ नहीं सकता था। इसलिए उसने राजम को बार-बार उसके एक डॉक्टर दोस्त के पास जाने की बात की । कण्णन का कहना था कि राजम की हालत अभी इतनी खराब नहीं है। परंतु इस स्थिति को बिगड़ नहीं देना चाहता था। इसलिए वह उसे पिछले दस दिनों से प्यार से पेश आता है और डॉक्टर के पास जाने का विषय छेड़ता है। राजम पर रात के समय में भी निगरानी रखता है। वह कहता है कि, ''उसका एका- एक बिना किसी कारण के क्रोधित होना, अकारण ही बड़बड़ाना, कुछ कह देने पर फफक- फफकर रो पड़ना, बात करने पर मौन रहना, मानो किसी गहन चिंता में लीन होने के कारण उसे कुछ भी सुनाई न दिया हो- इन सभी बातों से उसकी इस धारणा को बल मिल रहा था कि उसकी मनौव्यादि की चिकित्सा अवश्य ही की जानी चाहिए।''

एक दिन जब वह ऑफिस से घर आया था, तब शाम को अपनी पत्नी को डॉक्टर के पास जाने के लिए तैयार खड़ा देखकर अवाक रहता है। पत्नी उसके साथ डॉक्टर के पास चली जाती हैं। वहां जाने पर पति कण्णन अपनी पत्नी के बारे में डॉक्टर को बताना चाहता था, परंतु उसे ठीक से बोलना संभव नहीं हो पा रहा था। बीच में ही राजम डॉक्टर को बताती है कि मेरे पति की मानसिकता ठीक नहीं है, उसे पर आपको निर्णय लेना है। पत्नी कहती है कि, ''मेरे पति की हालत कुछ दिनों से ठीक नहीं है। वह बहुत ही घबराए हुए है। दुखी भी हैं। अधिक बोलते भी नहीं है। रात को उन्हें नींद नहीं आती। इतना ही नहीं डॉक्टर, किसी न किसी तरह की आवाज कर मुझे भी जगा देते हैं...'',

पत्नी के इस प्रकार की बात से कण्णन को काफी आश्चर्य लगता है। वह डॉक्टर को समझने की कोशिश करता है कि वह मानसिक रोग का शिकार नहीं है, बल्कि उसकी पत्नी ही मानसिक रोगी बन गई हैं। परंतु डॉक्टर उसे ही मानसिक रोगी मानते हैं। डॉक्टर के कहने पर उसे ही डॉक्टर के पास इलाज के लिए छोड़ देती है और टैक्सी बुलवाकर घर लौटने के लिए टैक्सी में बैठते हैं। टैक्सी ड्राइवर राजम को कहते हैं कि वह ठीक-ठाक लग रहे हैं, उन्हें शायद कोई तकलीफ नहीं होगी। इस बात पर राजम जोर-जोर से भयंकर हंसने लगती है। जिससे गाड़ी का ड्राइवर भी घबरा जाता है। परंतु राजम में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं

देता। इस तरह डी जयकांतन जी ने स्त्री तथा पुरुषों की मानसिक स्थिति का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। साथ ही नारी की विचित्र मानसिकता, पति के मन का आत्मिक संघर्ष तथा मानवीय मन का वैज्ञानिक अध्ययन आदि विषयों को समग्रता से वाणी देने का काम किया है।

'**सत्य झुलसता है**' कहानी में कहानीकार डी जयकांतन जी ने दाम्पति जीवन और मानवीय भावनाओं का चित्रण करते हुए सत्य क्या कर सकता है? इस बात का चित्रण अत्यंत मार्मिकता से किया है। इस कहानी का केंद्रिय विषय भी यही है। डी जयकांतन प्रस्तुत कहानी में शिक्षित सोमनाथन, उसकी भांजी कोदै, परमेश्वरन तथा डॉक्टर आदि पात्रों के माध्यम से दाम्पति जीवन का चित्रण किया है। कहानी का मूल पात्र परमेश्वरन और तमिल के प्राध्यापक हैं। उन्हीं के गुरु सोमनाथन है, जो इसी कॉलेज में पढ़ने का काम करते हैं। परमेश्वरन की पत्नी और सोमनाथन की भांजी कोदै कहानी की मूल नारी पात्र है। परमेश्वरन के जीवन में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और सोमनाथन यह तीन लोगों का महत्वपूर्ण स्थान है। सोमनाथन परमेश्वरन के गुरु है। साथ ही बाद में वह उनके रिश्तेदार भी बन जाते हैं। जब कोदै का विवाह परमेश्वरन से हो जाता है। परमेश्वरन अत्यंत बुद्धिमान विचारवंत हैं। उम्र के चालीस साल तक वह ब्रह्मचारी रहे और अपने गुरु के कहने पर उसने कोदै से शादी की। वह कॉलेज में पढ़ाने का काम करते हैं। किसी भी विषय पर वह अपने वैचारिक ज्ञान से राय देते थे। सोमनाथन में भी वैचारिक दृढ़ता दिखाई देती हैं। उनका जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोण जनसाधारण से अलग है। परमेश्वरन और सोमनाथन रिश्तेदार, गुरु और अच्छे दोस्त भी हैं। किसी भी विषय पर वह वैचारिक मंथन हमेशा करते रहते हैं। ब्रह्मचारी पर वैचारिक मंथन करते हुए सोमनाथन कहते हैं कि, ''ब्रह्मचारी बना रहना न अनुचित है, न उचित। दोषों से रहित किसी पुरुष को तभी ब्रह्मचार्य व्रत का पालन करना चाहिए जब उसके सामने कोई लक्ष्य हो। किसी लक्ष्य को सामने रखकर ब्रह्मचारी बना रहना उचित है। केवल ब्रह्मचारी कहलाने के लिए ब्रह्मचारी बना रहना अनुचित है। बाद में वह पाप भी बन सकता है।''

ब्रह्मचारी संकल्पना को विषय के रूप में प्रस्तुत किया है। कहानी में परमेश्वरन का विवाह चालीस की उम्र में हुआ था। उसे समय कोदै की उम्र 20 बीस साल की थी। दिखने में भी यहां अनमेल विवाह है। अनमेल विवाह को वास्तव में एक समस्या के रूप में देखा जाता है। परंतु इस कहानी में यह अनमेल विवाह पारिवारिक जीवन के आनंद का प्रतीक बना है। इसी बात पर बात करती हुई कोदै अपने पति परमेश्वरन से कहती है कि, ''शुरू-शुरू में मैं भी आपकी तरह इसे अनुचित समझती थी... किंतु... अब लगता है कि यदि संसार के सभी लोग आयु से ज्यादा अंतर से विवाह करेंगे तो सभी का जीवन स्वर्ग बन जाएगा... पति-पत्नी की आयु समान होने पर न तो दोनों एक-दूसरे का लिहाज करेंगे और न ही मिल-जुलकर रह सकेंगे। आयु का अधिक अंतर होने पर उनमें घनिष्ठता और एक प्रकार की... मेरे समझ में नहीं आता कि कैसे उसे स्पष्ट करूं ...मैं बहुत प्रसन्न हूं। इतना ही मैं कह सकती हूं।''

इस तरह से कोदै अनमोल विवाह पारिवारिक सुख के लिए जरूरी मानती है। इसी तरह दाम्पत्य जीवन ही सामाजिक जीवन का लघु रूप है। सामाजिक जीवन और दांपत्य जीवन के अंतर्संबंध को स्पष्ट करते हुए सोमनाथन कहते हैं कि, ''अपने लिए जीनेवाला कोई लड़का या लड़की जब दूसरे के लिए जीना प्रारंभ कर

देते हैं, उसी को विवाह कहा जाता है। दांपत्य जीवन सामाजिक जीवन का लघु रूप है, उसी को विवाह कहा जाता है। सामूहिक जीवन के आधार दांपत्य जीवन में त्याग-भावना के होने पर ही सामाजिक जीवन सुंदर बन सकता है।''

इस तरह यही पर कहानीकार ने विवाह और समाज के संबंध को विषय वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत कहानी में परमेश्वरन और कौदै अपना आनंदी जीवन जीते हैं। परंतु एक गुमनामी पत्र परमेश्वरन को आने से उनका सुखी जीवन संदेह से भर जाता है और दुख में बदल जाता है। अभी तक अपनी पत्नी अपने गुरु सोमनाथन को पिता समान माननेवाला परमेश्वरन उन्हें संदेह की दृष्टि से देखने लगता है और अपनी पत्नी के शादी के पूर्व के प्रेम संबंध और बच्चे गिराने की बात को वह सच और झूठ के तराजू में तोलने लगता है। उसकी पूछताछ जब वहां सोमनाथन से करता है तो उसे उत्तर मिलता है यह बात झूठ है। परंतु यही बात जब वह अपनी पत्नी से पुछता है तो वह इस उसे यह बात सच होने का दावा करती हैं। जिससे अपने पिता गुरु और आदर्श माननेवाले सोमनाथन की अपने घर की दीवार पर टंगी तस्वीर को तोड़ डालता है। और उससे घृणा करता है। यह देखकर पत्नी कोदै वहां से उसे छोड़कर जाने के लिए निकलती हैऔर अपने पति से कहती हैं, ''अब यदि हम दोनों मिलकर जीवन-यापन करते हैं, तो यहां हम दोनों के लिए दंड-रुप ही होगा। आपके प्रति मेरे मन में कोई मिल नहीं है। जिस महापुरुष ने आपसे कहा था कि सत्य झुलसता है, मैं उनसे यह कहकर माफी मांगने जा रही हूं कि सत्य झुलसता ही नहीं, कुछ लोगों को पूरी तरह जला देता है- इस सत्य को जाने बिना मैं एक व्यक्ति को जला डाला है...''

अतः उपर्युक्त अवतरण में कहानीकार ने सत्य को विशेष रूप से प्रकट किया है। जी सत्य को जानकर वैचारिक ढूंढता से संपन्न परमेश्वरन मानसिक संदेह का शिकार बनता है। जिससे उसकी मानसिक दुर्बलता दिखाई देती हैं। अतः इस कहानी में कहानीकार ने स्त्री-पुरुष संबंध, नारी के प्रति पुरुष का देखने का नजरिया, नैतिकता-अनैतिकता, संदेह की प्रवृत्ति, सत्य और मनुष्य की मानसिकता, दांपत्य जीवन और सामाजिक जीवन, अनमोल विवाह आदि विषयों को प्रमुखता से उभरा है।

'**अपना-अपना दृष्टिकोण**' इस कहानी में कहानीकार ने जीवन के प्रति देखने के दृष्टिकोन को उजागर किया है। प्रत्येक मनुष्य की अपनी एक दृष्टि होती है। अपनी एक विचारधारा होती है, उसी के अनुसार वह अपनी राय बनता है। जीवन को विभिन्न दृष्टिकोण से अनेक रूपों में देखा जा सकता है। जीवन ही उन दृष्टिकोण को पूर्णतः देता है। कहानी में लेखक ने लिखते हैं कि, ''जीवन को नाना दृष्टिकोण से नाना रूपों में देखा जा सकता है। परंतु जीवन इन सभी दृष्टिकोणों और रूपों को आत्मसात करनेवाली एक पूर्णता है।''

प्रस्तुत कहानी की मूल विषयवस्तु मानवीय रिश्ते की दृढ़ता को बरकरार रखना और पवित्र प्रेम को अभिव्यक्ति देना है। साथ ही प्रेम में त्याग, बड़ों के प्रति सम्मान की भावना, रिश्तों की अहमियत, मनुष्य की गलत प्रवृत्ति, लोगों की तरफ देखने का दृष्टिकोण, नारी चित्रण, स्वार्थ आदि विषयों को भी कहानी में सहज रूप से अभिव्यक्ति मिली है। इन विषयों को कहानीकार एक परिवार के जीवन की दास्तान के माध्यम से उजागर किया है। कहानी में राजलक्ष्मी अम्मा, उसका बेटा मुरली, नौकरानी शंकरी दादी, प्रमिला तथा

राजलक्ष्मी की बेटियां मीणा और कमला और उनके पति ज्योतिष सब्बुशास्त्री आदि। पात्र घटित घटनाओं को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते हैं। राजलक्ष्मी अम्मा और बेटी मुरली दोनों आराम के साथ अपना जीवन जीते हैं। मुरली ऑफिस में काम करता है। उसकी उम्र पैंतीस साल की अधिक है। अभी तक उसने शादी नहीं की है। उसके दो बहने जिनकी शादी हो चुकी है। बेटे ने पैंतीस उम्र तक अपनी शादी नहीं की है। फिर भी मां उसे शादी के बारे में नहीं पूछती। मुरली अत्यंत शांत स्वभाव का और जिम्मेदार लड़का है। घर की नौकरानी शंकरी दादी भी उसे काफी मानती है। जब बेटा मुरली प्रमिला नामक पार्श्व गायिका की जन्म पत्रिका अपने परंपरागत ज्योतिष को दिखाती है। तो वह पत्रिका मिलती है। इसलिए वह अपने घरवालों के सामने सब्बुशास्त्री के द्वारा प्रमिला से विवाह का प्रस्ताव रखता है। प्रमिला से उसकी जान पहचान संगीत उत्सव में हुई थी। धीरे-धीरे यह पहचान बढ़ती गई। अप्रत्यक्ष रूप से मुरली उससे प्रेम करने लगता है। प्रमिला भी लगभग तीस साल की है। उसे भी मुरली से प्रेम उत्पन्न होता है। परंतु उनका यह प्रेम जिम्मेदारियां और रिश्तेदारों के सम्मान पर टिका हुआ था। प्रस्तुत कहानी में प्रमिला मुरली की मां के साथ बात करती हुई कहती हैं, ''एक बात कहे देती हूं कि यदि मेरा विवाह इनसे नहीं होवे तो भी मुझे खुशी ही होगी। इनके मन में मुझसे विवाह करने का एक विचार तो आया- यही मेरे लिए पर्याप्त है। इन्होंने मुझे ठीक तरह से समझा, मुझे इतना गौरव दिया- इस परम सुख के बल पर ही कई वर्ष जी लूंगी। मेरा मन अब पूरी तरह से संतुष्ट हो गया है। मानो मुझे पूर्ण दांपत्य-सुख के उपभोग का अवसर मिल गया हो।'' इस बात से दोनों के बीच के प्रेम की गहराई समझदारी तथा त्याग की भावना दिखाई देती है।

प्रमिला के साथ शादी के प्रस्ताव को उसकी दोनों बहने, दामाद ज्योतिष के बुरे तर्कों के आधार पर उसकी मां भी ठुकराती हैं। अपने मां के निर्णय को स्वीकारता हुआ बेटा मुरली अपने प्रेम का त्याग कर देता है और अत्यंत सहज रूप से प्रमिला को भी समझता है। वह भी इस निर्णय को स्वीकार की हैं जब मुरली की मां को असलियत का पता चलता है, तब वह प्रमिला से शादी के इस प्रस्ताव को स्वीकारती हैं। परंतु पहले ही इस पर निर्णय हो जाने के कारण वह मां को विनम्रता से जानकारी देती हुई कहती है, ''आपको इस तरह से दुखी या भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। जन्मपत्री का मिलना ही पर्याप्त कहां है। यह विवाह अब नहीं होगा। पुराने संबंधों को मजबूत बनाने के लिए और परिवार के विकास के लिए ही हमारे पूर्वजों ने विवाह संस्था की नींव डाली थी। इसके द्वारा अपने पुराने संबंधों को तोड़ना क्या अनुचित नहीं?'' मेरे लिए इस तानपूरे का- संगीत- कला का आधार पर्याप्त है। आप-जैसे भले लोगों का प्रेम और संरक्षण मिल जाए तो बताइए, फिर मुझे जीवन में किस वस्तु की आवश्यकता रह जाएगी?''

अतः प्रमिला पुराने संबंधों की मजबूती के लिए अपने प्रेम को ठुकराती है और शादी न करने का निर्णय भी लेती है। परंतु राजलक्ष्मी अम्मा बेटे मुरली के जन्मदिन पर नौकरानी शंकरी दादी ने बनाई मिठाईयां लेकर उसे प्रमिला को देने चली जाती है। इस तरह अत्यंत सहज रूप से कहानीकार ने नारियों के दृष्टिकोण को उजागर करने का प्रयास किया है।

'एडल्ट्स ओनली' डी जयकांतन जी की एक पारिवारिक कहानी है। इस कहानी का प्रमुख पात्र रामस्वामी एक पुरुष है। उसकी पहली पत्नी मर चुकी है। उसे सोमू नाम का एक बेटा भी है। पहिली पत्नी

के मरने के बाद उसने मंगलम् से दुसरी शादी की है। परंतु सोमू के रहते वह अपनी दूसरी पत्नी मंगलम के पास जाने से भी शर्माता है। परिणाम स्वरूप वह सहज दांपत्य सुख से दूर रहता है। एक दिन मालकिन के द्वारा समझाने पर वह अपने बेटे सोमू को उसके दोस्तों के साथ सिनेमा देखने भेज देता है। परंतु सोमू बीच में से ही सिनेमा देखे बिना वापस अपने घर आता है। परंतु घर का दरवाजा बंद देखकल वापस अपने दोस्त के साथ खेलने के लिए चला जाता है। तब रामस्वामी अपनी पत्नी के साथ संभोग करने में मग्न था। शाम को जब पुनः सोमू वापस घर आता है, तब सोमू से सिनेमा के बारे में पुछता है। सोनू बताता है कि, ''पिताजी, पिक्चर देखने नहीं गया। वह तो केवल बड़े लोगों के लिए थी। आज नई पिक्चर लगी है ''एडल्ट्स ओनली''। अपने बेटे के इस जवाब पर रामस्वामी सोचते है कि, ''मन-ही-मन वह सोचने लगे- है। एडल्ट्स ओनली! वे लोग इस तरह की पिक्चरों में ऐसे कौन-सी रहस्य की बातें दिखा देंगे, जिन्हें व्यक्ती शहर के जीवन में नहीं देख सकता? या उससे नहीं सीख सकता? इतना सोचते ही दुःख और उपेक्षा-मिश्रित मंद-मंद मुस्कान उनके चेहरे पर फैल गयी।''

इस तरह प्रस्तुत कहानी एक मनोविज्ञानिक कहानी भी है, जिसमें सोमू और उसके पिता की मानसिकता का चित्रण अत्यंत सूक्ष्मता से कीया हुआ है। साथ ही मनुष्य की सहज बावनाओं का खुलकर चित्रण किया हुआ है।

'दिन की एक पैसेंजर गाडी में' डी जयकांतन की महत्त्वपूर्ण कहानी है। यह कहानी वात्सल्य और करुणा से ओतप्रोत कहानी है। यह कहानी परंपरा से अपने पैर जमाए जातिवाद को जड़ से निकालने का एक क्रांतिकारी प्रयास है। आम्मासी एक सेनानी है। वह कहानी का मूलपात्र है जो युद्ध से वापस अपने घर रेल से आ रहा था। वह एक दलित पात्र है। उसका अपना कोई नहीं है, फिर भी वहा मन की इच्छा न होते हुए भी घर वापस लौट आ रहा है। वह दो बार सैनिक में भरती भी हो चुका है। परंतु दुश्मनों के साथ लड़ते हुए उसे गोली लगती है और उसे सेना से वापस अपने घर आना पडता है। घर आते समय उसके गाँव को केवल पॅसेंजर गाडी ही रुकती थी। इसलिए व उस गाडी से अपने गाँव की दलित बस्ती में आता है। वहाँ पर उसे माँ और बचपन की यादे याद आती है। अम्मासी की उमर लगभग पचास की है। कहानी में आम्मास अपनी पीड़ा को व्यक्त करता हुआ कहता है कि, ''हाय री जवानी! वह तो न जाते कब की बीत गई! मैं भी कभी अठरह, बीस, तीस, चालीस साल का

इस तरह डी जयकांतन जी ने दिन की **'दिन की एक पैसेंजर गाड़ी में'** इस कहानी में वर्गभेद, जातिभेद जैसी विषयों का चुनाव किया है। इसमें दो वर्ग आपस में संघर्ष के लिए नहीं उतरते बल्कि उच्च वर्ग का व्यक्ति इस जातिवाद को जानबूझकर मिटाना चाहता है। **एडल्ट्स ओनली** नामक कहानी में भी सामाजिकता, सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है। कहानी के लेखन में दांपत्य जीवन को भी कहानी की विषय वस्तु के रूप में चुना है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि डी जयकांतन जी अपने 'अधूरे मनुष्य' इस कहानी संग्रह में समाज का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए मानवता, मनुष्य और सामाजिक समस्या आदि विषयों को अत्यंत सहजता से

पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। अतः उनका कहानी संग्रह विभिन्न विषयों को वाणी देने में सक्षम बना हुआ है।

3.3.3 भावपक्ष एवं कलापक्ष के आधार पर 'अधूरे मनुष्य' का अध्ययन

3.3.3.1 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह का भावपक्ष

किसी भी साहित्यिक रचना का निर्माण करने के लिए कुल चार तत्वों की आवश्यकता होती है। जिसमें सबसे प्रमुख तत्व के रूप में भाव तत्व काम करता है। अतः किसी भी साहित्यिक रचना का केंद्र भाव अर्थात् भावपक्ष होता है भावपक्ष का सामान्य अर्थ होता है, साहित्यिक रचना का वह पक्ष जिसमें, रस का सांगोपांग वर्णन या विवेचन होता है। जिसमें प्रमुखतः से रचनागत भावनाओं, कल्पनाओं तथा विचारों का समावेश किया जाता है। साहित्यिक रचना में भाव तत्व सबसे प्रधान ही होते हैं। बिना भाव के रचना का निर्माण संभव नहीं है। भाव एक ऐसा तत्व है जो साहित्य को प्रभावशाली और गतिशील बनता है। भावपक्ष ऐसा तत्व है जो पाठकों के दिलों-दिमाग पर असर करता है। भावपक्ष के माध्यम से ही पाठक, श्रोता, दर्शक के हृदय में रस रूप में परिणत होकर उन्हें आनंद प्रदान करता है। अतः साहित्य और भाव का अनन्यसाधारण संबंध होता है। किसी भी साहित्यिक रचना के केंद्र में भाव ही प्रमुख होते हैं, वे ही रचना का प्राण तत्व होते हैं। किसी भी साहित्यिक रचना में मनुष्य के भावों को अभिव्यक्ति दी जाती है। अतः कहानीकार मानवीय भावनाओं और कल्पना तथा विचारों के माध्यम से कहानियों का सृजन करता है। किसी भी कहानी में भावतत्व अर्थात् भावपक्ष की ही प्रधान रहता हैं।

डी जयकांतन एक कथाकार है। उन्होंने अपने कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' में सामाजिक यथार्थ को सूक्ष्मता से उतरा है। उन्होंने अपने जीवन की अनुभूति एवं कल्पना तथा विचारों के माध्यम से समाज के विभिन्न विषयों को वाणी देने का प्रयास किया है। जिससे उनका भावपक्ष अत्यंत सूक्ष्म एवं प्रभावशाली बना हुआ है। इस कहानी संग्रह में डी जयकांतन जी ने मनुष्य की भावनाओं को अत्यंत मार्मिकता से वाणी दी है। जिससे कहानी रसमय बनी हुई है। साहित्यशास्त्र में चित्रित विभिन्न भावों को उभरते हुए डी जयकांतन ने कहानियां को भावनाशील बना दिया है। डी जयकांतन की कहानी 'ताश का खेल' में लेखक ने प्रेमभाव अर्थात रति, क्रोध, शोक, वात्सल्य आदि भावों को अभिव्यक्ति दी है। जिसे प्रस्तुत करते समय विचारों और कल्पनाओं को कुशलता से चित्रित किया है। प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने दो परिवारों की कहानी के माध्यम से इन भावों को अभिव्यक्ति दी है। कहानी की मूल पात्र जानकी जिसे रवि नामक एक बेटा है। उसकी शादी अत्यंत कुरूप दिखनेवाले शिवसामी से होती है, इसका कारण यह शादी उसके लिए केवल एक समझौता होता है। वह मन ही मन अत्यंत दुखी रहती हैं। कहानी में अपनी सास सरस्वती अमल से कहती है, ''वह आपका पुत्र है, इसलिए आपका दुखी होना उचित है। आपने उसका विवाह करके एक लड़की की जिंदगी को बिगाड़ने का पाप अपने सिर पर ले लिया है। इसके लिए आप जी भरकर रोइए! आ बेटा, हम चलते हैं!''

उपर्युक्त अवतरण से जानकी के हृदय की पीड़ा व्यक्त हुई है। इस शादी से उसपर क्या बीतती है, वह केवल वही जान सकती है। इसलिए अपने मां के दुख के भाव को वह स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। जिससे जानकी के हृदय का दुख और द्वेष का भाव सामने आता है। इस तरह प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने प्रसंगानुकुल द्वोष, शोक, घृणा, निर्वेद, प्रेम आदि भावों की अभिव्यक्ति दी है। रामभद्रन और जानकी जब सिनेमा छूटने पर मिलते हैं और सागर तट पर एक दूसरे से बात करते हैं, तब कुछ समय के लिए दोनों के हृदय में प्रेम भावना जागृत होती है। रामभद्रन अपने मन की बात को जानकी के सामने रखना हुआ कहता है, ''हम दोनों भी ताश के पत्ते हैं! खेलनेवाले शिवसामी और लक्ष्मी है। परस्पर एक-दूसरे से ताश के पत्तों को बदल लेना ही तो खेल है। जानकी! तू बुद्धिमानी है। मेरे शब्दों का अर्थ समझ रही है न?''

'अपना-अपना दृष्टिकोन' यह कहानी भी पवित्र प्रेम का प्रेम को अभिव्यक्ति देती हैं और प्रेम त्याग और बलिदान से ही प्राप्त होता है, इसी बात को भी स्पष्ट मिलती हैं। कहानी का प्रमुख पुरुष पात्र मुरली एक जिम्मेदार और समझदार बेटा है। वह पार्श्व गायिका प्रमिला से सच्चा प्रेम करता है और उससे शादी भी करना चाहता है परंतु परिवार वाले परिवार वालों के विरोध और नाते-संबंधों को दरार ना आए इस कारण वह अपने प्रेम की कुर्बानी देता है, प्रमिला भी इस बात को स्वीकार कर अपने प्रेम की बली देती है वह मुरली की मां से कहती हैं, ''एक बात कहे देती हूं कि यदि मेरा विवाह इनसे नहीं होवे तो भी मुझे खुशी ही होगी। इनके मन में मुझसे विवाह करने का एक विचार तो आया- यही मेरे लिए पर्याप्त है।''

'मौन एक भाषा है' इस कहानी का मूल विषय की मातृत्व भाव या वात्सल्य भाव को प्रकट करना है। इस कहानी में परिवार में माता-पिता के बीच पिता पुत्र के बीच मां बेटे के बीच की भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। प्रस्तुत कहानी की अलमू ओच्चि को चार बेटे और चार बेटियां हैं। आज उसकी उम्र लगभग पचास साल की है। चारों बेटे और तीन बेटियों की शादी हो चुकी है, इसी कहानी पूरी कहानी दांपत्य भाव को उजागर करने वाली कहानी है। इस कहानी में हास, करुणा, दुःख, वात्सल्य, ममता, भाईचारा, कुंठा, संत्रास आदि भावों की अभिव्यक्ति प्रचुरता से हुई है। इस कहानी में बेटी अपने पिता की चिंता करती हुई कहती है कि, ''बेचारे पिताजी! वह पहले व्यर्थ का विवाद अवश्य करते थे परंतु जब से उन्हें पता लगा की मां का जीवन खतरे में है, तब से वह सदा आंगन में ही बैठे रहते हैं, कमरे के भीतर तक नहीं जाते। मां के कमरे में जाते हुए वह घबराते हैं। चाहे कुछ भी हो, मां को ऐसा भयानक काम नहीं करना चाहिए था। क्या तुम जानते हो कि आस-पड़ोस के लोग क्या कहते हैं?''

निश्चित रूप से उपर्युक्त अवतरण से बेटी की पिता के प्रति चिंता के भाव और पति ने अपनी पत्नी के प्रति होने वाले चिंतित चिंता के भाव को अभिव्यक्ति मिली है। जिसमें करुणा भी है और दुख भी दिखाई देता है। प्रस्तुत कहानी में मां और बेटे के बीच के वात्सल्य के भाव का उदाहरण का दृष्टव्य है- ''मां, मैं सोचता हूं कि मैं चाहे कहीं भी रहूं, मुझे सदा तुम्हारा प्यार मिलता रहेगा। अपने इसी विश्वास के बल पर मैं तुमसे अलग होकर रहने लगा... उसे समय तुम मौन रही... और अब तुम आत्महत्या करने पर क्यों तुल गई हो? मां क्या तुम्हें मेरा यहां आना अच्छा नहीं लगा? क्या तुम मुझे नहीं देखना चाहती हो?''

इससे मां का बेटों के प्रति और बेटे का मां के प्रति होनेवाले भाव के दर्शन होते हैं। इस तरह कहानीकार प्रसंग अनुकूल एवं परिस्थिति के अनुकूल भावों को उभरने का प्रयास किया है।

'युगसंधि' कहानी भी दांपत्य भाव से भरी हुई कहानी है। इस कहानी में कहानीकार ने गौरी दादी और गीता इन दो बाल विधवाओं के माध्यम से दो पीढियों के अंतर और उसमें संधि लाने की बात की है। दोनों भी बाल विधवाएं है। यह करुण रस से भरी हुई कहानी है। दो नारियों के जीवन संघर्ष से भरी यह कहानी विभिन्न भावों को अभिव्यक्ति देती हैं। कहानी में दादी जब सोलह साल की थी तब वह एक बच्चे की मां थी। तभी वह विधवा हो गई थी। उसने अपना पूरा जीवन विधवा होकर और परंपराओं और रूढ़ियों को निभाते बिताया था। जब उसकी पोती गीता विधवा होने के बाद पुनर्विवाह का निर्णय लेती है। तब गीता के माता-पिता उसका विरोध करते हैं और उसे मरी हुई समझकर गंगा स्नान करने की बात करते हैं, तब दादी अपनी बहू और बेटे को विधवा का दर्द क्या होता है? यह समझने की कोशिश करती है। तब दादी के हृदय में उमडे भाव अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं। दादी अपने बेटे ने उसे पागल कहने पर वह कहती है, ''हां बेटा, मैं पागल हूं? मेरा पागलपन नया नहीं, बहुत पुराना है... मेरा यहां पागलपन कभी नहीं मिट सकता। मैं चाहती हूं कि मेरा पागलपन मेरे साथ ही मिट जाए। उसका पागलपन इतनी जल्दी, एकाएक दूर हो गया, इसके लिए कोई क्या कर सकता है? उसने तो कह ही दिया कि वह जो कुछ करने जा रही है, वह उसकी नजर में बिल्कुल ठीक है। तरह-तरह का भेष धारण कर बुरा नाम कमाने से बचने के लिए ही उसने यह निर्णय लिया है।''

अतः यहां पर दादी के विधवा जीवन की पीड़ा, दुख उबड़कर सामने आया है। साथ ही अपनी पोती गीता के प्रति होनेवाली संवेदना, चिंता आदि की अभिव्यक्ति हुई है। अपनी दादी की बात को बेटा नहीं मानता। वह अभी भी अपनी परंपरागत सोच पर अड़ा रहता है और अपने मां के भावों को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है कि, ''वह दुष्टा कलंकिनी है। परिवार की मर्यादा को तोड़नेवाली वह चरित्रभ्रष्ट्र लड़की मर गयी, ऐसा सोचकर तू गंगा नहा ले।'' यहां पर बेटे गणेश का अपनी मां के प्रति क्रोध का भाव सामने आता है। वह अपनी मां से घृणा करते हुए बात करता है।

'सत्य झुलसता है' कहानी में लेखक ने पारिवारिक आनंद और संदेह के परिणाम का चित्रण अत्यंत सूक्ष्मता से किया है। कहानीकार ने सोमनाथन कोदै परमेश्वरन के माध्यम से पारिवारिक और सामाजिक परिवेश को उभारा है। इस कहानी में कहानीकार ने मूलतः सत्य की संकल्पना, पुरुष की संदेह ही मानसिकता, ब्रह्मचर्य की व्याख्या, अनमोल विवाह, विवाह और दांपत्य जीवन सत्य और मनुष्य का मौन इन सारे विषयों को भावात्मक अभिव्यक्ति दी है। जिसमें रति, हास, क्रोध, शोक उत्साह, आश्चर्य, निर्वेद आदि भावों को का चित्रण प्रसंगानुकूल रूप में हुआ है। सोमनाथन और परमेश्वरन आपस में वैचारिक बातें अक्सर करते रहते हैं। आपस में इस प्रकार की बातें करते समय उनकी वाणी में शांत रस की अभिव्यक्ति मिलती है। जिससे निर्वेद भाव उभर कर सामने आता है, ''पूजा करते समय पूजा करनेवाले के मन में ही तो विश्वास होना चाहिए। ऐसा करने से मुझे एक प्रकार की मानसिक शक्ति मिलती है... क्या आपको इसमें किसी तरह की आपत्ति है?''

उपर्युक्त अवतरण से रामेश्वरन की मां का निर्वेद भाव उभरकर सामने आया हुआ है। प्रस्तुत कहानी का मूल पात्र रामेश्वरमन में अनेक अच्छे गुण दिखाई देते हैं, तो दूसरी ओर उसके मन में पुरुष सुलभ अपनी पत्नी के प्रति संदेह की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। शादी के कुछ साल बाद परमेश्वरन को एक गुमनामी पत्र आता है। जिसमें उसकी पत्नी के शादी के पूर्व के प्रेम संबंधों की बात को उजागर किया गया है। यह बात से वहां अपनी पत्नी तथा पितातुल्य गुरु के प्रति उसके मन में शक होता है। उसे बार-बार इसकी सच्चाई जानने की इच्छा होती है। वह उस बात की सच्चाई जानने के लिए उतावला बन जाता है। इसलिए वह सोमनाथन और अपनी पत्नी से इसकी तसल्ली करता है। कहानी में मन के संदेह के भाव को व्यक्त करता हुआ वह सोमनाथं से और बाद में अपनी पत्नी कौन से पूछता है, ''इस पत्र को पढ़ ले....बिना टाल-मटोल किए एक शब्द में तू उत्तर दे दे की पत्र की बात सच है या झूठ। मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं कि तेरा उत्तर चाहे जो हो, वह हमें या किसी दूसरे व्यक्ति को किसी भी तरह प्रभावित नहीं करेगा। मैं सच्चाई जानना चाहता हूं.... मैं आश्वस्त होना चाहता हूं कि मेरा जीवन झूठ की आधारशिला पर नहीं टिका है...!''

अतः इसे स्पष्ट होता है कि रामेश्वरन के हृदय में संशय का भाव दृढ़ता से दिखाई देता है। उसमें ही उसकी घुटन भी छपी है। जिसमें वह छटपटाता है। उसमें एक घुटन का भाव भी दिखाई देता है। जिससे वह तिलमिला जाता है। कहानी में वह अपने आप से कहता है, ''मैं, महामुर्ख हूं। मेरे सामने सत्य की साक्षात मूर्ति, मेरी पत्नी खड़ी है। इसे वह पत्र दिखाकर, मैं पूछ सकता हूं कि सत्य क्या है? ऐसा न कर मैं व्यर्थ ही छटपटा रहा हूं!'' अतः परमेश्वरन में एक और दिन भाव दिखाई देता है तो दूसरी ओर घुटन भी। इस तरह कहानीकार ने प्रसंगानुकुल एवं परिस्थिति के अनुकूल भावों का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

'अधूरे मनुष्य' कहानी में कहानीकार जी ने मनुष्य के अधूरे होने की बात पति-पत्नी के माध्यम से चित्रित की हैं। कहानी की मूल नारी पात्र राजम और उसके पति कण्णन पति-पत्नी है। दोनों हमेशा एक-दूसरे की कमियों को ढूंढने की कोशिश करते हैं। परिणाम स्वरुप दोनों एक-दूसरे को मानसिक रोगी दिखाने की कोशिश भी करते हैं। इस कहानी में लेखक ने मानव की मनोवैज्ञानिकता, स्त्री की दुविधाग्रस्त मानसिकता, नारी के विचित्र रूप का चित्रण आदि कथ्य को वाणी दी है। जिसमें दोनों की एक-दूसरे के प्रति होनेवाली भावनाओं में एक संदेह दिखाई देता है। शुरू में कण्णन पत्नी की अजीबो-गरीब हरकतों के कारण उस पर नजर रखता है और उसे एक साइक्यािट्रस्ट डॉक्टर के पास जाने के लिए मनाने की कोशिश करता है। इसी बीच के प्रसंग में विभिन्न भावों का उद्घाटन होता है। करुणा, दुख, हास्य, गंभीर, निर्वेद, क्रोध, चिंता आदि भाव उभरकर सामने आते हैं। इस तरह 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह में भावों का चित्रण सहजता एवं सरलता से हुआ है। अतः इन कहानियों का भावपक्ष अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। जिसमें उत्पन्न भाव सहज, सरल, प्रभावपूर्ण और संप्रेषणीय बने हैं। जो पाठकों को अपनी जिज्ञासा बनाए रखते और पाठकों को अपनी और आकृष्ट करते हैं। जिससे पाठकों का हृदय भावना विव्हल हो जाता है।

3.3.3.2 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह का कलापक्ष :

किसी भी साहित्यिक रचना का अध्ययन मुख्यतः दो रूपों में किया जाता है। भावपक्ष और कलापक्ष किसी भी साहित्य के निर्माण में साहित्यकार भावपक्ष और कलापक्ष दोनों पर भी ध्यान देता है। भावपक्ष साहित्य का प्राण तत्व है, तो कला पक्ष उसका शरीर। भावपक्ष साहित्य में विचार और भावों की पुष्टि करता है, तो कलापक्ष इस विचार और भाव की विशिष्ट शैली में अभिव्यक्ति देता है। अतः साहित्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों महत्वपूर्ण रहते है। प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं में विशिष्ट शिल्प विधान का प्रयोग करता है। शिल्प विधान को ही रचना का कलापक्ष कहा जाता है। कलापक्ष में रचना की भाषा-शैली, छंद, अलंकार, मुहावरे, सूक्तियां आदि बिंदुओं का समावेश किया जाता है। अतः डी जयकांतन का कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' का कलापक्ष की दृष्टिकोण से अध्ययन करने के लिए कहानी संग्रह की 'भाषा और शैली' दोनों को देखना अनिवार्य होगा। अतः 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की भाषा शैली का अध्ययन निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

3.3.3.2.1 कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' की भाषा :

भाषा मनुष्य के विचार विनिमय का सशक्त माध्यम है। अर्थात् मनुष्य की भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त ऐसा साधन है भाषा है। यह एक ऐसा साधन या माध्यम है, जो रचनाकार के विचारों या भावों को साहित्यिक रूप में व्यक्त करता है। किसी भी साहित्यिक रचना में भाषा की अपनी अहम भूमिका होती हैं। भाषा के बिना किसी साहित्यिक कृति का निर्माण संभव नहीं है। भाषा और कहानी का अंतर्संबंध होता है। भाषा जितनी संप्रेषणीय होगी उतने ही प्रभाव से भावना और विचारों का संप्रेषण संभव है। भाषा कहानी के कथानक को, पत्रों को गतिशील बनती हैं। परिणाम स्वरुप वह संप्रेषण होने के साथ-साथ प्रभावशाली बनती है। प्रस्तुत कहानी में डी जयकांतन की कहानियों की भाषा में विभिन्न प्रकार की विशेषताएं मिलती हैं। डी जयकांतन की कहानियों की भाषा सहज, सरल, सजीव एवं संप्रेषण है, जो पाठक की जिज्ञासा जगाकर उसे प्रभावित करती है। 'अधूरे मनुष्य' इस कहानी संग्रह की पहली कहानी 'ताश का खेल' की भाषा अत्यंत सरल है। जिसमें सहजता और सजीवता के कारण भाषा में संप्रेषणीयता का गुण दिखाई देता है। डी जयकांतन भाषा को सहजता से पिरोने में निपुण है। 'ताश का खेल' में भाषा के इस रूप की अभिव्यक्ति अधिकता से हुई है। कहानी में सरस्वती अम्माल अपनी बहू जानकी से कहती है, ''तू खुशी से जा! मैंने सोचा, धूप है इसलिए कह रही थी। तू व्यर्थ ही गुस्सा हो रही है कि मैं सास की जगह खड़ी होकर तुझे डांट रही हूं...''

कहानीकार अपनी रचना को आकर्षक तथा प्रभावशाली और कलात्मक रूप प्रदान करने के लिए भाषा के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग करते हैं। जैसे डी जयकांतन ने 'अधूरे मनुष्य' इस कहानी संग्रह की कहानियों को प्रभावशाली एवं कलात्मक बनाने के लिए भावानुकूल भाषा, पात्रानुकूल भाषा, प्रसंगानुकूल भाषा, बिंबात्मक भाषा, अलंकारमयी भाषा, संगीतात्मक भाषा, हास्यात्मक भाषा, व्यंग्यात्मक भाषा, नाटकीय भाषा आदि का प्रयोग प्रचुरता से किया है। 'युगसंधि' कहानी की मूल पात्र गौरी दादी की पोती विधवा गीता जब

पत्र लिखकर अपने माता-पिता को उसके पुनर्विवाह करने की बात करती है तब पिता गणेश अयर काफी क्रोधित होते हैं और अपनी बेटी गीता को विधवा कहते हैं। जिस पर दादी अपने भावों को अभिव्यक्त करती हुई रहती हैं, ''तू शास्त्र की... नियम की बात कर रहा है! क्या तू जानता है कि उसे समय तुझे क्या करना चाहिए था? क्या तू जानता है कि शास्त्र के नियमों ने मेरी क्या दुर्दशा की?... उस समय तू दूध-पीता बच्चा था... मेरी उम्र सिर्फ पंद्रह साल की थी! मेरा बच्चा मेरे इस रूप को देखकर इस तरह से चीख उठता था मानों उसने किसी भूत-प्रेत को देख लिया हो!...मां का दूध न मिलने पर तू चीख-चीखकर रोता था और मेरे पास आने पर भय से चीख उठता था। जो कुछ हुआ था, उसे मेरा दुर्भाग्य मानकर घरवालों ने मुझे एक कोने में धकेल दिया। तूने गीता का सिर मुंडाकर उसे कोठरी में क्यों नहीं धकेल दिया? बोल, उसकी दुर्दशा क्यों नहीं की?''

उपर्युक्त अवतरण से पता चलता है कि दादी के मन में क्रोध के भाव के साथ-साथ अपनी पीड़ा और दुख का भाव भी छिपा है। जिसने उसे स्वयं भोगा हैं और आज गीता उसे भोग रही है। अतः कहानीकार ने गौरी दादी के मन की भावनाओं के अनुकूल भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। प्रस्तुत कहानी संग्रह की सभी कहानियों में भावानुकूल भाषा के कई उदाहरण मिलते हैं। अतः कहानी में भावात्मकता एवं प्रभात्मकता के निर्माण के लिए कहानीकार ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग सक्षमता से किया है।

कहानीकार ने अपनी कहानियों में विभिन्न प्रकार के कई प्रसंगों, घटनाओं का चित्रण किया है। अतः प्रसंगों एवं घटनाओं का यथार्थ रूप से चित्रित करने के लिए डी जयकांतन ने प्रसंगकुल भाषा का प्रयोग प्रचुरता से किया है। 'ताश का खेल', 'मौन एक भाषा है', 'युगसंधि', 'अपना-अपना दृष्टिकोण', 'अधूरे मनुष्य' आदि कहानियों में प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। 'मौन एक भाषा है' इस कहानी में लेखक ने पारिवारिक प्रसंग एवं घटनाओं का वर्णन किया है। अनेक घटना एवं प्रसंग परिवार से ही संबंधित हैं। प्रस्तुत कहानी में अलमु ओच्चि प्रमुख नारी पात्र हैं, रवि उसका बेटा प्रमुख पुरुष पात्र हैं। जब पचास साल की उम्र में उसकी मां गर्भवती होती है, तो वहां आत्महत्या करने का प्रयास करती है। जब घर वालों को यह बात पता चलती है तो वह उसे घृणा करने लगते हैं, तभी बेटा रवि उसे अपने साथ मद्रास ले जाना चाहता है। रवि ने विदेशी महिला डॉक्टर से प्रेम विवाह किया है। मद्रास जाने की बात को लेकर मना करती हुई मां कहती है कि मैं उसकी भाषा को नहीं जानती। तब बेटा रवि कहता है कि, ''क्यों मां, यहां तेरा अपमान करनेवाले लोग कौन-सी भाषा में बात करते हैं?... सभी मौन है परंतु काम बराबर हो रहा है। मौन रहकर क्या प्रेम और सम्मान के भाव को व्यक्त नहीं किया जा सकता? किसी की निंदा करने के लिए और किसी के प्रति प्रेम को व्यक्त करने के लिए क्या भाषा-रूप माध्यम का होना जरूरी है?'' अतः यहां पर कहानीकार ने इस प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। जिससे भाषा का प्रभावशाली प्रभावी रूप सामने आता है।

कहानीकार ने कहानी में कहीं-कहीं नाटकीयता को उभारने के लिए नाटकीय भाषा का अर्थात् संवादात्मक भाषा का प्रयोग भी किया है। 'ताश का खेल' कहानी में शिवसमी और सरस्वती अम्माल के संवादों से नाटकीय भाषा का रूप दृष्टव्य होता है जैसे-

''जानकी कहां है?''

''सिनेमा देखने गयी है।''

''किससे पूछ कर गई है?''

''किससे पूछ कर जाती? मुझसे पूछ कर गई है।''

डी जयकांतन अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को उभारते हैं, जिसमें उन्होंने कहानियों को आकर्षक बनाने के लिए बिंबात्मक भाषा का प्रयोग भी किया है। प्रसंग एवं घटनाओं के अनुकूल इस प्रकार की बिंबात्मक भाषा का प्रयोग उन्होंने किया हुआ दिखाई देता है। जैसे 'अपना-अपना दृष्टिकोण' कहानी का उदाहरण देख सकते हैं- ''कमरे में 'उस व्यक्ति का चित्र' ऐसे स्थान पर टंगा था कि कमरे में प्रवेश करते ही लोगों की दृष्टि उस पर पड़ जाए। चित्र पर जरी की एक माला पड़ी हुई थी। पान की पीक से रंगे होठ, गले में सोने की चेन और केश-विन्यास में 'मन्नार-गुड्डी के मनचले पुरुष' को पहचानने में राजलक्ष्मी को अधिक कठिनाई नहीं हुई। दूसरी ओर कर्नाटक संगीत के कीर्तिस्तंभ त्यागराज का चित्र टंगा था। चित्र के दोनों और छोटे-छोटे दीपक जल रहे थे। कोने की मेज पर फ्रेम में जड़ी एक तस्वीर थी- यह तस्वीर उसकी मां की होगी।''

अतः यहां पर लेखक अपनी भाषा से एक बिंब पाठकों के सामने खड़ा करते हैं। जिसे पाठक के मस्तिष्क में वह चित्र-सा अंकित होता है। इस प्रकार की भाषा से पाठक प्रभावित होता है।

समग्र रूप से कह सकते हैं कि डी जयकांतन जी का कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' की भाषा सहज, सरल, प्रभावशाली है। जिस भाषा में सजीवता विद्यमान है। उनकी भाषा में व्यंग्यात्मकता, भावानुकूलता, प्रसंगानुकूलता, हास्यात्मकता, सहजता, संप्रेषणीयता, गरिमा, गंभीरता आदि गुण दिखाई देते हैं। भाषा में कहीं भी क्लिष्ठता नहीं दिखाई देती। जिसके कारण भाषा में प्रवाहमयता सहज रूप से उभर कर आई है। भाषा में कहावतें-मुहावरों तथा तमिल भाषा के कई शब्दों की ज्यों की क्यों प्रयुक्त किए गए हैं। प्रस्तुत भाषा की संप्रेषणीयता में कोई रुकावट नहीं आयी। इस तरह डी जयकांतन के कहानी संग्रह की भाषा सहज, सरल, संप्रेषणीय एवं प्रभावी है, जो पाठक से सहज तादात्म्य स्थापित करती है।

3.3.3.2.2 कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' की शैली

हर साहित्यिक रचना में शैली का अपना विशेष महत्व होता है। शैली अर्थात् भाषा की अभिव्यक्ति का ढंग या पद्धति। साहित्यकार अपने विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए जिस पद्धति का प्रयोग करता है उसे शैली कहा जाता है। 'शैली' भाषा के प्रस्तुतीकरण का एक ढंग है। साहित्य में भाषा के साथ-साथ शैली भी महत्वपूर्ण होती है। हर रचनाकार की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। शैली रचना में प्रौढ़ता, प्रवाहमयता, प्रभावशीलता, आकषर्कता, सहजता का निर्माण करती है। कहानीकार डी जयकांतन अपने कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' में विभिन्न शैलियों का प्रयोग करते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, व्यंग्यात्मक शैली, संवादात्मक शैली, नाटकीय शैली, हास्यात्मक शैली,

बिंबात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, संस्करणात्मक शैली, पत्रात्मक शैली आदि विविध शैलियों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। उनके कहानी संग्रह में उन्होंने प्रसंग अनुकूल, पात्र अनुकूल एवं कथानक के अनुसार विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है।

डी जयकांतन जी ने ताश का खेल, मौन एक भाषा है, युगसंधि, एडल्ट्स ओनली, दिन एक पैसेंजर गाड़ी में, अधूरे मनुष्य, अपना-अपना दृष्टिकोण, सत्य झुलसता है आदि कहानियों में प्रसंग या घटनाओं की को प्रभावी रूप से उभरने के लिए विवरणात्मक शैली और विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग भारी मात्रा में किया है। 'ताश का खेल' नाम की कहानी में कहानी के परिवेश को उभरते समय विवरणात्मक शैली का प्रयोग दिखाइए देता है जैसे- ''अरगनी पर टंगी वायरल साड़ी को झाड़ कर पहनने के बाद जानकी दीवार पर लटके आईने के सामने जा खड़ी हुई। उसने अपने सवरें हुए बालों को हाथों से तनिक ठीक किया। माथे पर लगी कुंकुम की बिंदी पसीने से कुछ फैल गई थी। उंगली पर धोती का किनारा लपेटकर उसने बिंदी को चारों तरफ से ठीक किया। बिंदी का आकार कुछ छोटा हो गया। उसे मन-ही-मन इस बात का संतोष था कि छोटे आकार की बिंदी भी उसके माथे पर अच्छी लग रही है। इसके बाद उसने चूड़ियों के डिब्बे में मोड़कर रखा दो रुपयों का नोट निकला और उसे धोती के पल्ले में बांध लिया। पीछे मूड़ते ही उसने अपना डेढ़ साल का लड़का रवि दिखाई दिया। अपने आती नाजुक पैरों को घसीटते हुए किसी तरह वह उसके पास पहुंच गया और उसने उछलकर अपने दोनों हाथ उसकी और फैला दिये।''

इस तरह से अन्य कहानियों में परिवेश को उभरते समय, वैचारिक बातों का विश्लेषण करते समय लेखक ने विवरणात्मक और एवं विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग प्रचुरता से किया है।

कहानीकार ने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को समग्रता से प्रस्तुत किया है। जिसका सूक्ष्म चित्रण कहानियों में मिलता है। सामाजिक एवं पारिवारिक या व्यक्तिगत समस्याओं को उभरते समय कहानीकार ने व्यंग्यात्मक भावात्मक शैलियों का प्रयोग किया हुआ है। कहानियों में भावों की अभिव्यक्ति करते समय भावात्मक शैली के दर्शन होते हैं। 'मौन एक भाषा है' कहानी में अलमु ओच्चि रवि की मां अपनी छटपटाहट की भावना को व्यक्त करती हुई चिल्लाकर अपने पति को सुनती है, ''उस नीचे ने तुझे भी यहां बुलाया है?....हे ईश्वर! तुम सब लोग मिलकर मुझे छेद- छेदकर क्यों मार रहे हो?'' ऐसे प्रसंगों का उद्घाटन करते समय डी जयकांतन जी ने भावात्मक शैली का प्रयोग किया हुआ है।

इसी कहानी में अपने विचार को अभिव्यक्त करते समय लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे- 'मौन एक भाषा है' कहानियों में घर से निकलते समय रवि अपनी भाभी से कहता है, ''भाभी, तुमने घर के पिछवाड़े लगे हुए कटहल के पेड़ को देखा है न? फल उसकी शाखाओं में न लगकर उसके तन में लगे हुए हैं। इसका कारण क्या तने का और डोलियों का परस्पर एक-दूसरे से विरोध है? नहीं! तने में फलों को लगा देखकर कोई भी इस बात को नकार नहीं सकता कि शाखाओं का आधार वृक्ष का तना ही है।''

प्रस्तुत पंक्तियों में रवि अपनी भाभी को अपनी मां किस प्रकार से पूरे परिवार का आधार है, यह बताना चाहता है। इसलिए उसने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए मां को कटहल का तने की उपमा दी है और पारिवारिक सदस्यों को डोलियों की उपमा दी है।

डी जयकांतन जी ने अपनी कहानियों के प्रसंग या घटनाओं में जीवंतता लाने के लिए चित्रात्मक एवं बिंबात्मक शैली का प्रयोग प्रचुरता से किया है। 'सत्य झुलसता है' कहानी में प्रसंग को उभरते समय लेखक ने चित्रात्मक एवं बिंबात्मक भाषा का प्रयोग इस प्रकार किया है।-

''कोदै ने मेज पर से हॉर्लिक्स का कप उठाकर उनके हाथ में दिया। बुढ़ापे के कारण दुर्बल हुए अपने कांपते हाथों में कप थामे हुए उन्होंने हॉर्लिक्स पिया। गरम-गरम पेय पीते ही उसके माथे पर पसीना झलकने लगा। इसे देख कोदै ने पंखा चलाया। हवा में उनके सफेद रंग के घने बालों की छोटी-छोटी लेट माथे पर झूलने लगी। सोमनाथ की दृष्टि पूरे हॉल में घूमी घूम गयी। वहां रखे रेडियो, एक कोने में एक स्टैंड पर गौतम बुद्ध की प्रतिमा, खिड़की पर लटकता हल्के नीले रंग का परदा आदि को ध्यान से देखने के बाद उनकी दृष्टि कोदै पर आकर टिक गयी। उनकी आंखों में प्यार उमड आया। वह एक बच्चे की तरह मुस्कुराने लगे।''

कहानियों के कुछ पत्र ऐसे हैं जो प्रत्यक्ष कहानी में दिखाई नहीं देते परंतु अपने मन की भावनाओं को और विचारों को स्पष्ट रूप से अपने परिजनों के आगे नहीं कह सकते, ऐसे पत्रों के विचार और भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए कहानीकार ने पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'युगसंधि', 'सत्य झुलसता है, इन कहानियों में अनुक्रम गीता और अनजान आदमी के द्वारा पत्र लिखा गया है। जिससे पत्रात्मक शैली उभर कर सामने आई है। 'युगसंधि' कहानी में विधवा गीता अपने पिता से स्वयं ने दूसरा विवाह करने के निर्णय को पत्र के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं जैसे-

''मेरे प्यारे पिताजी माता जी और दादीजी!

'छह महीने तक सोचने-विचारने के बाद आज एक निर्णय पर पहुंचकर बड़े शांत भाव से में आप लोगों को यह पत्र लिख रही हूं । इस पत्र के आप लोगों तक पहुंचाने के बाद हमारे बीच का पत्र व्यवहार रुक जाएगा, शायद.....

....

....

आप लोगों के प्रति सदा अडिग प्रेम रखनेवाली,

- गीता'

अतः यहां पर गीता की मां के विचार, निर्णय और अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि डी जयकांतन जी ने अपनी कहानियों को आकर्षक, प्रभावशाली, सहज, संप्रेषण और अनोखा बनाने के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग अत्यंत कुशलता से किया है। जिसे कहानी अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली बनी है ।

3.3.4 'अधूरे मनुष्य' की समसामयिकता :

कहानी आधुनिक युग की महत्वपूर्ण गद्य विधा है। कहानी मानवीय समाज की भावना, विचार, समस्या आदि को प्रभावशाली ढंग से वाणी देती हैं। डी जयकांतन आधुनिक काल के अंतर्गत आनेवाले एक तमिल कथाकार है। जिन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को अत्यंत सक्षमता से और एक नई दृष्टि से उभरने की कोशिश की है। उनका कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' डॉ. के. ए. जमुना द्वारा हिंदी भाषा में अनूदित हुआ है। यह कहानी संग्रह भी सामाजिक यथार्थ की सच्ची तस्वीर है। इस कहानी संग्रह की कहानियों में अनेक व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या को वाणी मिली है। अगर इसी कहानी संग्रह का समसामयिकता की दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो हमें पता चलता है कि आज भी डी जयकांतन की कहानियां आधुनिक समस्या, विचार और भावनाओं से तादात्म्य स्थापित करती है। समसामयिकता का सामान्य अर्थ होता है- वर्तमानकालीन अर्थात् आज की परख करना या रखना। इस तरह से आज भी 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह में संकलित कहानियां ताश का खेल, मौन एक भाषा है, युगसंधि, दिन की एक पैसेंजर गाड़ी में, सत्य झुलसाता है, अधूरे मनुष्य, अपना-अपना दृष्टिकोण आदि कहानियों में चित्रित समस्याएं और घटनाएं आज भी समसामयिकता के परिप्रेक्ष्य में आती हैं।

डी जयकांतन के 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की पहली कहानी 'ताश का खेल' है। यह कहानी एक पारिवारिक एवं व्यक्तिगत तथा सांस्कृतिक आदर्श तथा असाह्य, मजबूर, गरीब व्यक्तियों के मन की पीड़ा को प्रस्तुत करनेवाली कहानी है। इस कहानी की प्रमुख नारी पात्र जानकी है। जो रूपवती है, परंतु अत्यंत गरीब। इस कारण सौंदर्यावती होने के बावजूद उसकी शादी अत्यंत कुरूप, लुले-लंगड़े परंतु अमीर शिवसामी से होती है। यह शादी करने के लिए वहां असहाय और मजबूर है। वह मन की इच्छा के खिलाफ शादी करती है और शादी के बाद आत्महत्या का विचार भी करती है। परंतु अपने रवि नामक छोटे बेटे को देखकर मजबूरन उस पति शिवसामी के साथ जीवन जीने का समझौता करती है। इसमें उसका दुख और पीड़ा उभर कर आई है। जब पति के साथ उसका झगड़ा होता है तब वह पागलों की तरह बौखला जाती है वह कहती है- ''यही सब-कुछ देखने के लिए ही तो आपने अपने प्यारे बेटे का ब्याह रचाया था... देखिए... जी भरकर देखिए...।'' कहानी का दूसरा एक पुरुष पात्र है रामभद्रन वह भी दिखने में सुंदर हैं परंतु अपने मामा के घर पर ही बड़ा हुआ है। वह भी निर्धन है । उसके मामा बड़े सधन व्यक्ति है। उसे भी ऐसे ही मामा की लड़की लक्ष्मी से शादी करनी पड़ती है । जो दिखने में अत्यंत कुरूप है। इसका दुख रामभद्रन को भी सलता है।

अतः जानकी और रामभद्रन दोनों ऐसे पात्र हैं जो असहाय और मजबूर हैं, जो अत्यंत पीड़ित और दुखी होकर अपना जीवन किसी तरह काट रहे हैं। ऐसे पात्रों के माध्यम से आज के नवयुवकों की पीड़ा,

मजबूरी असहायता को भी देखा जा सकता है। अतः आज के नवयुवकों की यह भी समस्या बन गई है। इस कहानी की नारी इतनी दुखी होने के बावजूद भी अपने सामाजिक संस्कारों का और भारतीय नारी का आदर्श सामने रखती हुई दिखाई देती है और अपनी इच्छा के अनुसार मिलनेवाले प्रेम को ठुकराती है। वह में रामभद्रन को कहती है, ''आपने कहा था कि खेलनेवाले मेरे पति और आपकी पत्नी हैं। वस्तुतः आपकी यह बात गलत है। वह भी हमारी तरह ताश के पत्ते हैं। हां...आप कह सकते हैं कि उनका कोई 'प्वाइण्ट' नहीं है। खेलनेवाला मनुष्य नहीं, ईश्वर हैं। वह गलत खेल रहा है, ऐसा कहने का हमें अधिकार कहां है?''

'मौन एक भाषा है' यह कहानी भी समसामयिकता से परिपूर्ण है। इस कहानी में डी जयकांतन जी ने अनेक विषयों को वाणी दी है। इस कहानी की मूल विषय वस्तु है – प्रौढ़ नारी की पीड़ा और उसका मौन। कहानी में अलमु ओच्चि प्रमुख नारी पात्र है। वह घर के किसी भी प्रश्न पर सहज उत्तर नहीं देती। अपना मौन ही धारण करती है। उसकी आठ संताने हैं। उसका दूसरा बेटा रवि है। जो विदेश में पढ़ाई करके वापस लौटा है और उससे अधिक उम्रवाली महिला से उसने प्रेम विवाह किया हुआ है। इस प्रेम विवाह को अलमु ओच्चि और उसका पति सिंगाराम का परिवार स्वीकृति नहीं देता। यह परिवार अपने परंपरागत संस्कारों से जकड़ा है। इस कारण जाति–पाति के बाहर अपने बेटे के विवाह का वह तीव्र विरोध करते हैं और बेटे को घर से निकाल देते हैं। उसके पिता कहते हैं, ''मैं सोच लिया है कि मेरे सात ही पुत्र हैं और तुझे पूरी तरह भुला दिया है। यदि तू लौटकर यहां न आओ तो यही अपने परिवार के प्रति और जन्म देनेवाली मां के प्रति बहुत बड़ा उपकार होगा।''

बेटा रवि शादी कर मद्रास में क्लीनिक चलाता है। परंतु यह परिवार उसे स्वीकारता नहीं है। परंतु जब रवि की मां जो पचास साल में गर्भवती होती है और आत्महत्या करने की कोशिश करती हैं, तब पिताजी अपने इस बेटे को अपनी मां के खातिर अपने पास बुला लेते हैं। तब पिता को छोड़कर भाई–बहनें अपने भाई से खूब हंसी मजाक करते हैं और उसे स्वीकारते हैं। तभी मां के आत्महत्या करने के की बात को रवि बेटा जानना चाहता है, तब वह यह गर्भवती होने की बात अपने परिवार से बताता है। उस समय परिवारवाले उससे घृणा करने लगते हैं, तभी पिताजी की आज्ञा से रवि मां को अपनी विदेशी पत्नी के पास रहने के लिए लेकर चला जाता है, तब पिता भी उसे जाने की अनुमति दे देते हैं। अर्थात् जो लोग प्रेम विवाह को अस्वीकृति करते हैं वही ऐसी घटना घटित होने पर उसे स्वीकारते हैं। अतः यहां मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। आज भी समाज में ऐसे कई प्रेम विवाह होते हैं। जिसे माता–पिता को स्वीकृत नहीं करते, परंतु कुछ अशुभ घटना घटित होने पर उसे स्वीकार करते हैं। रवि जैसे पढ़े–लिखे युवकों में आज भी यह समस्या दिखाई देती है। साथी आज भी समाज में कई ऐसे परिवार हैं जो प्रेम विवाह का विरोध करते हैं।

'युगसंधि' कहानी में भी समसामयिकता से भारी कईं उदाहरण देख जा सकते हैं। प्रस्तुत कहानी दो पीड़ितों के अंतर पर प्रकाश डालती हैं और पुरानी रुढी–परंपराएं, जर्जर प्रथाओं का विरोध करती है। कहानी में गौरी दादी लगभग सत्तर साल की विधवा है और लगभग 30 साल की उसकी पोती गीता भी बाल विधवा है। दो विधवाओं के जीवन संघर्ष के माध्यम से इन मिथ्या एवं जर्जर रूढ़ि–परंपरा, प्रथाओं का विरोध दिखलाया है। गौरी दादी पुरानी एवं जर्जर प्रथाओं एवं संस्कारों का विरोध कर आधुनिकता को

स्वीकार कर दो युगों की संधि करने का आदर्श खड़ा करती है। इस कहानी की गीता बाल विधवा है। आज के समाज में भी बाल विधवा विवाह का विरोध किया जाता है। परंतु कहानीकार डी जयकांतन उसी का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं। जो आज समय की मांग है। गीता बाल विधवा है। गीता के परिवार के लोग उसके पुनर्विवाह का विरोध करते हैं, किंतु उसकी दादी जो स्वयं एक बाल विधवा थी। उसका पक्ष लेती है। गीता का पत्र पढ़कर स्तंभित से खड़े अपने पुत्र से वह कहती है, ''हां बेटा, मैं पागल हूं? मेरा पागलपन नया नहीं, बहुत पुराना है... मेरा यहां पागलपन कभी नहीं मिट सकता। मैं चाहती हूं कि मेरा पागलपन मेरे साथ ही मिट जाए। उसका पागलपन इतनी जल्दी, एकाएक दूर हो गया, इसके लिए कोई क्या कर सकता है? उसने तो कह ही दिया कि वह जो कुछ करने जा रही है, वह उसकी नजर में बिल्कुल ठीक है। तरह-तरह का भेष धारण कर बुरा नाम कमाने से बचने के लिए ही उसने यह निर्णय लिया है।''

अतः इस कहानी की गौरी दादी प्राचीन युग का प्रतिनिधि पात्रा नहीं है, तेजी से सामने आते हुए नए युग को प्रेम पूर्वक अपनाने की क्षमता रखनेवाली एक क्रांतिकारी वृद्धा है। आज समाज में कई ऐसे देहातों में ऐसी स्थिति के दर्शन होते हैं। जिसमें गीता और गौरी दादी जैसी नारियों मौजूद हैं, जो ऐसी बर्बर प्रथाओं का विरोध करती है और अपना मुक्त जीवन जीना चाहती है।

'अधूरे मनुष्य' कहानी के कहानीकार ने मनुष्य के अधूरेपन पर व्यंग्य कसा है। इस कहानी के नायक-नायिका कण्णन और राजम परस्पर एक दूसरे को मनोग्रस्त प्रतीत होते हैं। कहानीकार बताना चाहते हैं कि आज के समाज में प्रायः सभी व्यक्ति अपूर्ण होते हैं परंतु हर व्यक्ति दूसरे को अपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास करता है। इसी कहानी में कण्णन को लगता है कि मेरी पत्नी राजम मानसिक रोगी है। उसका विचित्र रूप से आचरण उसे इस निर्णय पर लाकर खड़ा कर देता है, इसलिए वह अपनी पत्नी का निरीक्षण करता है और किसी तरह वह उसे साइक्याट्रिस्ट डॉक्टर के पास ले जाना चाहता है। जब उसे वहां लेकर जाने के बाद राजम ही उसके पति को मानसिक रोगी सिद्ध करती है और डॉक्टर भी यह मानकर उसे पर उपचार हेतु उसे अपने अस्पताल में रखते हैं। पत्नी को पति को छोड़कर घर जाती है। अतः यहां पर हर व्यक्ति अपने दूसरे व्यक्ति की कमियों को खोजता रहता है और दोष देता रहता है। आज भी इस युग में हमारे समाज में ऐसे कई लोग हैं जो दूसरों को अपूर्ण मानते हैं और खुद को पूरा मानने पर तुले हैं तथा यह कहानी भी समसामयिकता से युक्त हैं।

'अधूरे मनुष्य' इस कहानी संग्रह की अन्य कहानियां 'अपना-अपना दृष्टिकोण', 'सत्य झुलसता है', : 'दिन की एक पैसेंजर गाड़ी में', आदि कहानियों में चित्रित सामाजिक यथार्थ वर्तमान सामाजिक यथार्थ, सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं से मेल खाता है। जिनमें आज की समसामयिकता सहज ढंग से देखी जा सकती है।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए उचित विकल्पों को चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

१. 'अधूरे मनुष्य' इस अनूदित किताब के अनुवादक ...... है।

अ) डी जयकांतन आ) डॉ. के. ए. जमुना

इ) पु.ल. देशपांडे ई) वे. सु. अय्यर

२. 'अधूरे मनुष्य' यह अनूदित किताब के मूल लेखक........हैं।

अ) डी जयकांतन आ) डॉ. के. ए. जमुना

इ) पु.ल. देशपांडे ई) वे. सु. अय्यर

३. डी जयकांतन जी का जन्म सन् .... ई. में हुआ।

अ) 1904 आ) 1914 इ) 1924 ई) 1934

४. डी जयकांतन....भाषा के कथाकार हैं।

अ) हिंदी आ) मराठी इ) बंगाली ई) तमिल

५. डी जयकांतन ने लगभग.....कहानियों का सृजन किया है।

अ) 100 आ) 200 इ) 300 ई) 240

6. डी जयकांतन ने अब तक लगभग..... उपन्यासों का निर्माण किया है।

अ) 12 आ) 40 इ) 50 ई) 9

7. डी जयकांतन को 2002 में...... पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

अ) पद्मश्री आ) पद्मभूषण इ) ज्ञानपीठ ई) साहित्य अकादमी

8. डी जयकांतन की कहानी 'ताश का खेल' की नायिका....... है।

अ) जानकी आ) सरस्वती अम्माल इ) गौरी दादी ई) राजाम

9. 'ताश का खेल' कहानी में लेखक ने... की त्रासदी का चित्रण किया है।

अ) व्यक्तिगत आ) पारिवारिक इ) सामाजिक ई) राजनीतिक

10. 'मौन एक भाषा है' कहानी में अलमु कोच्चि के बेटे ...... ने विदेश में पढ़ाई की थी।

अ) सुंदरम आ) रवि इ) मत्तु ई) सोमू

11. .... कहानी के रवि का प्रेम विवाह हुआ था।

अ) मौन एक भाषा है आ) ताश का खेल

इ) अधूरे मनुष्य ई) युगसंधि

12. 'युगसंधि' कहानी की प्रमुख नारी पत्र ...... है।

अ) गीता आ) जाना इ) मीणा ई) गौरी दादी

13. 'युगसंधि' कहानी की गीता ..... है।

अ) विधवा बाल आ) विधवा इ) गायिका ई) नृर्तिका

14. 'युगसंधि' कहानी में गीता..... करने का निर्णय लेती हैं।

अ) नौकरी आ) पुनर्विवाह इ) मेहनत ई) अध्ययन

15. 'दिन की एक पैसेंजर गाड़ी में' कहानी के कहानीकार........ है।

अ) डी जयकांतन आ) डॉ. के. ए. जमुना

इ) पु.ल. देशपांडे ई) वे. सु. अय्यर

16. 'एडल्ट्स ओनली' कहानी का प्रमुख पात्र........है।

अ) रामस्वामी आ) शिवसमी इ) परमेश्वरन ई) कन्नन

17. एडल्ट्स ओनली रामस्वामी का बेटा.....है।

अ) सोमू आ) मीनू इ) गणेश ई) रामू

18. 'अपना-अपना दृष्टिकोन' कहानी का नायक .... है।

अ) शिवरमन आ) शंभूशास्त्री इ) मुरली ई) सोमनाथन

19. 'अपना-अपना दृष्टिकोण' कहानी की प्रमिला..... है।

अ) गायिका आ) नृतिका इ) खिलाड़ी ई) अभिनेत्री

20. 'सत्य झुलसता है' कहानी में ..... विवाह का चित्रण किया है।

अ) प्रेम आ) पुर्न इ) अनमेल ई) विधवा

21. 'सत्य झुलसाता है' कहानी के परमेश्वरन की पत्नी.....है।

अ) गीता आ) प्रमिला इ) कोदै ई) राजम

22. 'अधूरे मनुष्य' कहानी में कण्णन की पत्नी ....है।

अ) गीता आ) राजाम इ) जानकी ई) प्रमिला

23. एक दूसरे को अधूरा देखने की मनुष्य की प्रवृत्ति.... कहानी में उजागर हुई है।

अ) अधूरे मनुष्य आ) युगसंधि इ) ताश का खेल ई) अपना-अपना दृष्टिकोण

3.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियां:

मनोवेदना – मन की वेदना।

साइक्याट्रिस्ट – मानसिक व्याधि को दूर करने वाला वैद्य या डॉक्टर।

झुलसना – जल जाना।

किंकर्तव्यविमूढ़ – दुविधा भरी स्थिति।

जीवनसंगिनी – धर्म पत्नी।

ब्रह्मचारी – ब्रह्मचार्य का पालन करनेवाला।

मुन्नारगुडी – एक स्थान का नाम।

त्यागराज : कर्नाटक संगीत के कीर्तिस्तंभ।

कुंवारा – जिसकी शादी नहीं हुई ऐसा पुरुष।

युगसंधि – दो युगों की संधि या मिलाप।

मौन – शांत रहना, कुछ भी बात न करना।

ताश का खेल – पत्तों का खेल।

मदमाती – पागल आदमी।

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्न के उत्तर :

1. आ) डॉ. के. ए. जमुना	2. अ) डी जयकांतन	3. ई) 1934	4. ई) तमिल
5. आ) 200	6. आ) 40	7. इ) ज्ञानपीठ	8. अ) जानकी
9. अ) व्यक्तिगत	10. आ) रवि	11. अ) मौन एक भाषा है	12. ई) गौरी दादी
13. अ) विधवा बाल	14. आ) पुनर्विवाह	15. अ) डी जयकांतन	16. अ) रामस्वामी
17. अ) सोमू	18. इ) मुरली	19. अ) गायिका	20. इ) अनमेल
21. इ) कोदै	22. आ) राजम	23. अ) अधूरे मनुष्य	

3.7 सारांश :

1. भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में डी जयकांतन का कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' का अध्ययन करने के उपरांत सारांश रूप में कहा जा सकता है कि तमिल भाषा के ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त डी जयकांतन का

व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व अत्यंत प्रभावशाली है। जिससे उनके जीवन संघर्ष और साहित्य संघर्ष से पाठक आदर्श लेकर अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

2. 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह के वस्तु विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि डी जयकांतन जी ने इस कहानी संग्रह की कहानियों में विषय वस्तु का विवेचन सूक्ष्मता से किया है। विशेष रूप से सामाजिक यथार्थ को समग्रता से उभारते समय कहानीकार ने सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश को सच्चाई से चित्रित किया है।

3. मानवता और समाज को केंद्र में रख कर नारी का यथार्थ चित्रण,नारी विमर्श एवं नारी त्रासदी, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएं, मनुष्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, भारतीय समाज की जर्जर रुढी-परंपराएं एवं प्रथाएं, नैतिकता-अनैतिकता, दांपत्य जीवन प्रणाली, प्रेम, त्याग, कर्तव्यशीलता आदि विषयों का विवेचन गहराई से हुआ है।

4. 'अधूरे मनुष्य' कहानियों का भावपक्ष का अध्ययन करने से सारांश रूप में कहा जा सकता है कि डी जयकांतन ने मानवीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति की है। जिससे पाठकों के हृदय द्रवित होता हैं। इस कारण कहानियों को भखवाभिव्यक्ति प्रभावशाली एवं संप्रेषणीय बनी है।

5. 'अधूरे मनुष्य' कहानियों के कलापक्ष का अध्ययन करने से कहा जा सकता है कि डी जयकांतन जी ने अपनी कहानियों के कथानक को गति देने के लिए, कहानी में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए, आकषर्कता निर्माण करने के लिए भावानुकूल भाषा, प्रसंगानुकूल भाषा, पत्रानुकूल भाषा तथा सहज, सरल, संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग किया है।

6. कहानी में प्रभाव उत्पादकता के निर्माण के लिए डी जयकांतन ने विवरणत्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संस्मरणात्मक शैली, संवादात्मक शैली, बिंबात्मक एवं चित्रात्मक शैलियों का प्रयोग सहजता से किया हुआ है।

7. 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की समसामयिकता आज के परिवेश, प्रसंग के अनुकूल है। जिसमें सामाजिक समस्या का यथार्थ चित्रण हुआ है। जो भारतीय समाज का वर्तमान स्वरूप स्पष्ट करता है।

8. अतः 'अधूरे मनुष्य' डी जयकांतन जी का महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है। जो मानवीय सामाजिक समस्याओं को सूक्षता से प्रस्तुत करता है।

3.8 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. डी. जयकांतन का कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' की कहानियों की विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
2. डी. जयकांतन के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व पर प्रकाश डालिए।
3. डी. जयकांतन के कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' के भावपक्ष पर प्रकाश डालिए।

4. डी जयकांतन के कहानी संग्रह 'अधूरे मनुष्य' के कलापक्ष पर प्रकाश डालिए।
5. 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की भाषा पर प्रकाश डालिए।
6. 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की शैली पर प्रकाश डालिए।
7. 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह की समसामयिकता पर प्रकाश डालिए।
8. 'अधूरे मनुष्य' कहानी संग्रह के आधार पर नारी जीवन की त्रासदी का चित्रण कीजिए।

ब) ससंदर्भ के लिए उदाहरण

1. ''मैं पापन हूं। महापापीन हूं! मैंने अपने बेटे के लिए इस सुंदर बच्ची के जीवन को नष्ट कर दिया।'' (पेज नंबर 23)
2. ''अरे इस पत्रिका में इस लेखक की जो धारावाहिक कहानी छपी थी, क्या तू उसी की बात कर रहा है?... मैंने भी एक-दो जगह इस फिल्म का विज्ञापन देखा था। इतनी-सी बात के लिए बच्चों को गाली क्यों दे रहा है? मैं और तू सिनेमा के बारे में कुछ नहीं जानते लेकिन आजकल के बच्चे तो फिर भी बहुत सीधे हैं....।'' (पेज नंबर 77)
3. एडल्ट्स ओनली! वे लोग इस तरह की पिक्चरों में ऐसी कौन-सी रहस्य की बातें दिखा देंगे, जिन्हें व्यक्ति शहर के जीवन में नहीं देख सकता या उससे नहीं सीख सकता?'' (पेज नंबर 96)
4. ''जीवन में प्राय: हर व्यक्ति दूसरे को अपने दृष्टिकोण से देखता है। उसके एक पहलू को देखकर एक निर्णय पर पहुंच जाता है और उसी निर्णय को पूरी तरह से सही सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहता है।'' (पेज नंबर 116)
5. ''अपने को आपकी जीवनसंगिनी मान लेने के बाद आपसे कोई भी बात छुपाना उचित नहीं होगा। यही सोचकर मैंने यह सारी बातें आपसे कहीं। इस सत्य से आप झूलस सकते हैं, इस बात को मैं समझता हूं; किंतु मैं जानती हूं कि सत्य के ताप को सहने की शक्ति आपमें है।'' (पेज नंबर 141 - 42)
6. आपने कहा था कि खेलनेवाले मेरे पति और आपकी पत्नी हैं। वस्तुत: आपकी यह बात गलत है। वह भी हमारी तरह ताश के पत्ते हैं। हां...आप कह सकते हैं कि उनका कोई 'प्वाइण्ट' नहीं है। खेलनेवाला मनुष्य नहीं, ईश्वर हैं। वह गलत खेल रहा है, ऐसा कहने का हमें अधिकार कहां है? (पेज नंबर 30)
7. क्या तुम जानती हो कि विदेशों में इसे अत्यंत महत्वपूर्ण और गौरव का विषय समझा जाता है? तुमने बहुत पुण्य किए हैं... ईर्ष्या के कारण कोई तुम्हारा उपवास करें तो करने दो। मा.., मातृत्व की महिमा अपार है। (पेज नंबर 58)

8. ''क्यों मा, यहां तेरा अपमान करनेवाले लोग कौन-सी भाषा में बात करते हैं?... सभी मौन है परंतु काम बराबर हो रहा है। मौन रहकर क्या प्रेम और सम्मान के भाव को व्यक्त नहीं किया जा सकता? किसी की निंदा करने के लिए और किसी के प्रति प्रेम को व्यक्त करने के लिए क्या भाषा-रूप माध्यम का होना जरूरी है?'' (पेज नंबर 60)

9. ''हां, मैंने यह निर्णय अपनी मर्जी से ही लिया है। मेरे लिए दादीजी के अलावा और किसीने अपनी सुख सुविधाओं का त्याग किया है? कोई भी मेरे लिए ऐसा क्यों करेगा?'' (पेज नंबर 79)

10. ''एक बात कहे देती हूं कि यदि मेरा विवाह इनसे नहीं होवे तो भी मुझे खुशी ही होगी। इनके मन में मुझसे विवाह करने का एक विचार तो आया- यही मेरे लिए पर्याप्त है। (पेज नंबर 126)

11. ''ब्रह्मचारी बना रहना न अनुचित है, न उचित। देषों से रहित किसी पुरुष को तभी ब्रह्मचार्य व्रत का पालन करना चाहिए जब उसके सामने कोई लक्ष्य हो। किसी लक्ष्य को सामने रखकर ब्रह्मचारी बना रहना उचित है। केवल ब्रह्मचारी कहलाने के लिए ब्रह्मचारी बना रहना अनुचित है। बाद में वह पाप भी बन सकता है।'' (पेज नंबर 131)

12. ''अब यदि हम दोनों मिलकर जीवन-यापन करते हैं, तो यहां हम दोनों के लिए दंड-रुप ही होगा। आपके प्रति मेरे मन में कोई मिल नहीं है। जिस महापुरुष ने आपसे कहा था कि सत्य झुलसता है, मैं उनसे यह कहकर माफी मांगने जा रही हूं कि सत्य झुलसता ही नहीं, कुछ लोगों को पूरी तरह जला देता है- इस सत्य को जाने बिना मैं एक व्यक्ति को जला डाला है...'' (पेज नंबर 142)

13. ''मेरे पति की हालत कुछ दिनों से ठीक नहीं है। वह बहुत ही घबराए हुए हैं । दुखी भी हैं। अधिक बोलते भी नहीं है। रात को उन्हें नींद नहीं आती। इतना ही नहीं डॉक्टर, किसी न किसी तरह की आवाज कर मुझे भी जगा देते हैं...''(पेज नंबर 169)

14. ''हां बेटा, मैं पागल हूं? मेरा पागलपन नया नहीं, बहुत पुराना है... मेरा यहां पागलपन कभी नहीं मिट सकता। मैं चाहती हूं कि मेरा पागलपन मेरे साथ ही मिट जाए। उसका पागलपन इतनी जल्दी, एकाएक दूर हो गया, इसके लिए कोई क्या कर सकता है? उसने तो कह ही दिया कि वह जो कुछ करने जा रही है, वह उसकी नजर में बिल्कुल ठीक है। तरह-तरह का भेष धारण कर बुरा नाम कमाने से बचने के लिए ही उसने यह निर्णय लिया है।'' (पेज नंबर 82)

15. ''तू शास्त्र की... नियम की बात कर रहा है! क्या तू जानता है कि उसे समय तुझे क्या करना चाहिए था? क्या तू जानता है कि शास्त्र के नियमों ने मेरी क्या दुर्दशा की?... उस समय तू दूध-पीता बच्चा था... मेरी उम्र सिर्फ पंद्रह साल की थी! (पेज नंबर 83)

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

- 'अधूरे मनुष्य' का मराठी भाषा में अनुवाद करने का प्रयास करें।
- मराठी में लिखित साहित्य का हिंदी भाषा में अनूदित करने का प्रयास करें।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

- बदलते चेहरे, (हिंदी), अनुवाद, राजगोपालन, नॅशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
- हिंदी लघुकथा, सं. डॉ. नामवरसिंह, अनु. डॉ. प्रभाकर माचवे

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न**

    1. अधुरे मनुष्य कहानी संग्रह के लेखक .... है।

        अ. पी.जयकांत ब. डी.जयकांतन क. व्ही.जयकांतन ड. डी जयशांतन

    2. डी.जयकांतन........भाषा के कथाकार है।

        अ. मराठी ब. तमिल क. कन्नड ड. तेलगु

    3. युगसंधि कहानी की गीता...... है।

        अ. विधवा ब. अभिनेत्री क. नृत्यांगना ड. गायिका

    4. सत्य झूलसता हैकहानी में .... समस्या है।

        अ. प्रेम ब. विधवा क. पूनर्विवाह ड. अनमेल

    5. डी.जयकांतन ने करीब......... कहानियॉ लिखी है।

        अ. 600 ब. 200 क. 400 ड. 300

    उत्तर –

    1. ब 2. ब 3. अ 4. ड 5. ब

2. **उचित मिलान कीजिए**

1. ताश का खेल	अ. मुरली
2. युगसंधि का प्रमुख नारी पात्र	ब. रामस्वामी
3. अधुरे मनुष्य कृष्णन की पत्नी	क. राजम
4. एडल्ट ओनली प्रमुख पात्र	ड. गौरी दीदी
5. अपना-अपना दृष्टिकोन नायक	इ. जानकी

उत्तर सही मिलान

1.-इ, 2.-ड, 3.-क, 4.-ब, 5.-अ.

3. **सही गलत का निर्ण करे**

1. अधूरे मनुष्य एक मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसमें लेखक ने राजम नाम की नारी व्यथा को वाणी दी है।
2. एडल्ट ओनली का प्रमुख पात्र रामस्वामी है, उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई है।
3. अपना-अपना दृष्टिकोन की राजलक्ष्मी के पति ज्योतिष है, विवेच्य कहानी के पात्र प्राय:अपने दृष्टिकोण पर चलते हैं।
4. युगसंधि बाल विधवा के जीवन को अभिव्यक्त करती है, इस कहना में पुनर्विवाह का चित्रण है।
5. मौन एक भाषा बाल विधवा जीवन पर आधारित कहानी है, जबकि वह पारिवारिक जीवन की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालती है।

उत्तर

1. पहला सही और दूसरा भी सही।
2. पहला सही और दूसरा भी सही।
3. पहला सही और दूसरा भी सही।
4. पहला सही और दूसरा भी सही।
5. पहला गलत और दूसरा सही है।

❑❑❑

इकाई 4

(पु. ल. देशपाण्डे के हास्य–व्यंग्यात्मक लेख (मराठी) – पु. ल. देशपाण्डे)

अनु. वेदकुमार वेदालंकार

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन

4.3.1 पु. ल. देशपांडे जी का जीवन परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व

4.3.2 पु.ल. देशपांडे जी के हास्य–व्यंग्यात्मक लेख का वस्तुविवेचन

4.3.3 हास्य–व्यंग्यात्मक लेख का भावगत एवं शिल्पगत अध्ययन

4.3.3.1 हास्य व्यंग्यात्मक लेख का भावगत अध्ययन

4.3.3.2 हास्य–व्यंग्यात्मक लेख का शिल्पगत अध्ययन

4.3.3.2.1 हास्य–व्यंगात्मक लेख और भाषा

4.3.3.2.2 हास्य–व्यंग्यात्मक लेख और शैली

4.3.4 हास्य–व्यंगात्मक लेख और सामाजिकता

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

4.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

1. मराठी साहित्यकार प.ल. देशपांडे जी के व्यक्तित्त्व से परिचित हो जाएंगे।
2. मराठी साहित्यकार पु. ल. देशपांडे जी के कृतित्त्व और उनकी रचनाओं से परिचित हो जाएंगे।
3. मराठी साहित्यकार पु. ल. देशपांडे जी के हास्य–व्यंग्यात्मक लेख इस अनूदित किताब से परिचित हो सकेंगे।
4. साहित्यकार पु. ल. देशपांडे से के हास्य–व्यंग्यात्मक लेखों के भावपक्ष से परिचित होंगे।

5. साहित्यकार पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों के विभिन्न विषयवस्तु से परिचित होंगे।
6. साहित्यकार पु.ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों में चित्रित समाज के यथार्थ रूप से परिचित होंगे।
7. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों के शिल्प-विधान से अर्थात् भाषा-शैली से परिचित हो जाएंगे।

4.2 प्रस्तावना :

भारत विभिन्न धर्म और जातियों से भरा हुआ देश है। भारत में अनेक प्रकार की भाषाएं और बोलियां का प्रयोग किया जाता है। जब हम भारतीय साहित्य पढ़ते हैं, तब भारत की विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण बन जाती हैं। हिंदी, मराठी, तमिल, कन्नड़, बंगाली, गुजराती, भोजपुरी, मलयालम, उर्दू आदि भाषाओं का साहित्य 'भारतीय साहित्य' की परिधि के अंतर्गत आता है। भारतीय साहित्य पढ़ते समय इन भाषाओं के साहित्य को पढ़ना अनिवार्य बनता है। स्नातकोत्तर की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय साहित्य के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन करने के साथ-साथ हमें पाठ्यक्रम में दिए गए मराठी भाषा के पु. ल. देशपांडे जी के 'पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख' रचना का अध्ययन करना है। जो भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आता है और इस दृष्टि से उसका अध्ययन करना आवश्यक बन जाता है। इस इकाई में हम 'भारतीय साहित्य' की संकल्पना को सामने रखकर मराठी के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार पु. ल. देशपांडे जी के कुछ 'हास्य-व्यंग्यात्मक लेख' का अध्ययन करने वाले हैं। इस इकाई में पु. ल. देशपांडे जी के लेख पढ़ते समय पु. ल. देशपांडे जी का जीवन परिचय, पु. ल. देशपांडे जी के व्यंग्यात्मक लेख की विषयवस्तु, पु.ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख का भावपक्ष, पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में चित्रित सामाजिक यथार्थ, हास्य-व्यंग्यात्मक लेखक का शिल्प विधान आदि का गहराई से अध्ययन किया जाएगा।

4.3 विषय विवेचन :

4.3.1 पु. ल. देशपांडे जी का जीवन परिचय व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व :

- **जीवन परिचय**

आधुनिक मराठी के महत्वपूर्ण रचनाकारों में पु. ल. देशपांडे जी का नाम अग्रगण्य है। पु. ल. देशपांडे जी मराठी साहित्य के लोकप्रिय रचनाकार हैं। वह हास्य-व्यंग्य के महत्वपूर्ण रचनाकार माने जाते हैं। साथ ही वे एक नाटककार, हास्यव्यंग्यकार, कथाकार, अभिनेता, संगीतकार, पटकथा लेखक तथा गायक भी हैं, मराठी साहित्य के इस अग्रगण्य रचनाकारों को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है। ऐसे साहित्यकारों की रचना का अध्ययन करने के लिए हमें उनके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व से परिचित होना आवश्यक है। उनके व्यक्तित्व को निम्न बिंदुओं के माध्यम से देखा जा सकता है।

पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे जी को पु. ल. इस नाम से भी जाना जाता है। मराठी साहित्य में हास्य-व्यंग्य के द्वारा पाठकों को और दर्शकों को हास्यानंद से भर देनेवाले इस लेखक का जीवन परिचय देखा जा सकता है।

जन्म एवं परिवार :

पु.ल. देशपांडे जी का जन्म सन् 8 नवंबर 1919 को मुंबई के गांवदेव नामक इलाके में गोंड सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता जी का नाम लक्ष्मण त्र्यंबक देशपांडे था। जो आडवाणी कागज कंपनी में काम करते थे। वह कोल्हापुर से थे। उनकी माता जी का नाम लक्ष्मीबाई लक्ष्मण देशपांडे था। जो कारवारी नामक गांव से थी। उनकी पत्नी सुनीता देशपांडे और उनके मानस पुत्र दिनेश ठाकुर थे।

शिक्षा-दीक्षा :

आधुनिक मराठी साहित्य के महत्वपूर्ण हास्य-व्यंग्य लेखक पु.ल. देशपांडे जी उच्च शिक्षित थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा 'पार्ले तिलक विद्यालय' में हुई। उसके बाद की शिक्षा फर्ग्यूसन महाविद्यालय, पुणे से उन्होंने स्नातक और स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की और विलिंग्डन महाविद्यालय सांगली में भी उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की। पु. ल. देशपांडे जी को अपनी मैट्रिक तक की पढ़ाई में अनेक पाठशालाओं की समस्याओं से गुजरना पड़ा। वह अपने 'हसवणूक' इस किताब के 'शिशुकक्षा से मैट्रिक' तक इस अनुदित हास्यव्यंग्यात्मक लेख में इस पीड़ा को उजागर करते हैं। वह लिखते हैं कि, 'शिशुकक्षा से लेकर मैट्रिक तक का मेरा अध्ययन काल एक दुख भरी दास्तांन है। अनेक कठिनाइयां झेलने की करुण कहानी है।' उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी होने के बाद कुछ समय तक अध्यापन की नौकरी भी की। इस तरह शिक्षा जीवन के प्रारंभिक साल तकलीफ में बीते। माध्यमिक शिक्षा पूरी होने के बाद पु.ल. देशपांडे जी ने 'इस्माईल युसूफ कॉलेज' से इंटर एवं सरकारी लॉ कॉलेज से एल.एल.बी. प्राप्त की है।

नौकरी और अन्य :

अपनी शिक्षा पूरी होने के बाद पु. ल. देशपांडे जी ने मुंबई में कलेक्टर कचहरी एवं प्राप्ति कर विभाग में कुछ समय तक काम किया। उसके पूर्व पेट्रोल ऑफिस और राशनिंग ऑफिस में क्लर्क की नौकरी की। साथ ही कुछ समय तक वह ओरिएंटल हाईस्कूल में शिक्षक के रूप में भी काम करते रहे।

मृत्यु :

पु. ल. देशपांडे जी की मृत्यु 12 जून 2000 में पुणे में 'पार्किनसन्स' की बीमारी के कारण हुई। उसे दिन उनकी 54 वीं सालगिरह थी। मृत्यु के समय उनकी उम्र 80 वर्ष की थी।

- **पु. ल. देशपांडे का व्यक्तित्व**

पु.ल. देशपांडे जी अपने खास व्यक्तित्व के कारण प्रसिद्ध थे। सर्वांग पूर्ण व्यक्तित्व के धनी थे। उनका व्यक्तित्व कलाओं से भरा पड़ा था। वे बहुभाषिकता के धनी थे। मराठी, हिंदी, अंग्रेजी के साथ-साथ वह

बंगाली एवं कन्नड़ भाषा को भी अच्छी तरह से जानते थे। कला के प्रति रुचि होने के कारण वह एक प्रसिद्ध साहित्यकार होने के साथ-साथ एक अभिनेता, एक गायक, एक वादक भी थे। बचपन से उन्हें प्राकृतिक शारीरिक दृढ़ता प्रदान हुई थी। दो साल की उम्र में ही वह पांच साल के बच्चे की तरह दिखते थे। वह अत्यंत होशियार थे। हमेशा कुछ ना कुछ करने में व्यस्त दिखाई देते हैं। उनके सहज, सरल व्यक्तित्व में एक वक्ता भी छुपा हुआ था। बचपन से ही उन्हें वक्तृत्व के प्रति रुचि थी। किसी भी भाषण को कंठस्थ करना उनके लिए मुश्किल काम नहीं था। उन्हें एक खास भाषण शैली अवगत थी जिसके बल पर उन्होंने बहुत बड़ा नाम कमाया। वह संगीत के के भी अच्छे ज्ञाता थे। जिसके कारण उन्हें बालगंधर्व जी ने आशीष दिया और भावी जीवन के लिए शुभकामनाएं दी। अतः पु. ल. देशपांडे जी का व्यक्तित्व सर्वांगपूर्ण है, जो पाठकों एवं दर्शकों को प्रभावित करता है।

- **पु. ल. देशपांडे जी का कृतित्त्व :**

पु.ल देशपांडे जी के व्यक्तित्व की तरह उनका कृतित्व भी प्रशंसनीय है। जीवन के हर क्षेत्र में संघर्ष करते हुए उन्होंने अपनी नई पहचान बनाई। अपने कृतित्व के बल पर पद्मश्री और पद्म भूषण के हकदार बने। अतः उनके कृतित्व को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है। पु. ल. देशपांडे जी ने मराठी साहित्य को समृद्ध करने का बड़ा कार्य किया है। उन्होंने मराठी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। जिसके माध्यम से उनके उनका साहित्यिक महत्व उजागर होता है। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा में प्रमुखता से हास्यव्यंग्यात्मक लेख, नाटक, लोकनाट्य, एकांकी, व्यक्तिचित्रण, यात्रावर्णन, उपन्यास, निबंध, अनूदित रचनाएं आदि में लेखन कार्य किया है। जिसे निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

हास्य-व्यंग्यात्मक लेख :

पु. ल. देशपांडे जी ने अपने जीवन में अनेक विधाओं में लेखन कार्य किया है। मराठी साहित्यिक विधा 'हास्यव्यंग्यात्मक लेख' में पु. ल. देशपांडे जी ने लेखन कार्य करते हुए व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि क्षेत्र में आनेवाली विसंगतियों का प्रमुखता से चित्रण किया है। उनके कुछ हास्यव्यंग्यात्मक लेख इस प्रकार हैं-

एका रविवारची कहाणी, बिगरी ते मॅट्रिक, मुंबईकर, पुणेकर का नागपूरकर? म्हैस, मी आणि माझा शत्रूपक्ष, पाळीव प्राणी, काही नवे ग्रहयोग, माझे पौष्टिक जीवन, उरला- सुरला, रावसाहेब, माशी, काही अप काही डाऊन, काय म्हणाले गुरुदेव?, चितळे मास्तर, चाळीशी, असा मी असामी, आपुलकी, खिल्ली, कोट्याधीश, एक शून्य मी आदि। इस प्रकार के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख लिखकर व्यंग्यात्मक विधा को समृद्ध बनाने का प्रयास किया है।

नाटक :

पु.ल. देशपांडे जी ने नाटक विधा के अंतर्गत भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में कुछ मौलिक तो कुछ अनूदित नाटकों का निर्माण किया है। उनके कुछ मौलिक नाटक

इस प्रकार हैं - एक झुंज वाऱ्याशी, तुका म्हणे आता, तुझे आहे तुजपाशी, नवे गोकुळ, पुढारी पाहिजे, भाग्यवान, वटवट वटवट, सुंदर मी होणार आदि। कुछ अनुदित नाटक इस प्रकार हैं- अमलदार, तीन पैशाचा तमाशा, ती फुलराणी, पहिला राजा राजा इडिपस आदि अनूदित नाटकों का निर्माण कर पु. ल. देशपांडे जी ने अनेक सामाजिक विषयों को वाणी दी है।

एकांकी संग्रह :

पु. ल. देशपांडे जी ने हास्यव्यंगात्मक निबंध,नाटक के साथ-साथ एकांकी का निर्माण भी किया है। उन्होंने आम्ही लटिकेना बोलू, मोठे मासे छोटे मासे, विठ्ठल तो आला-आला इन एकांकियों का सृजन करते हुए भारतीय परिवेश को उभरने का प्रयास किया है। साथ ही पुढारी पाहिजे और वाऱ्यावरची वरात नामक लोकनाट्य का निर्माण भी उन्होंने किया है।

यात्रा वर्णन :

पु. ल. देशपांडे जी को यात्रा करना भी पसंद था। अपने देशी-विदेशी यात्राओं की अनुभूति के आधार पर उन्होंने अपूर्वाई, पूर्वरंग, जावे त्यांच्या देशा और और वंगचित्रे आदि यात्रा साहित्य का भी निर्माण किया है।

व्यक्ति चित्रण :

पु. ल. देशपांडे जी ने अपने जीवन के अनुभव के बदौलत कुछ व्यक्ति चित्रण भी लिखे हैं। समाज के लोगों के प्रति गहरी आस्था, उनसे आत्मीयता के रिश्ते, संवेदनशीलता के कारण कई व्यक्तियों से उनका गहरा संबंध रहा। उसके आधार पर उन्होंने अण्णा बाळगावकर, गजा खोत, ते चौकोनी कुटुंब, तो, दोन वस्ताद, नामू परीट, परोपकारी गंपू, बबडू, बापू काणे, बोलट, भैया नागपूरकर, लखू रिसबूड, हंड्रेड परसेंट, पेस्तन काका, हरी तात्या आदि व्यक्ति चित्रण का निर्माण उन्होंने किया है। इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक विधाओं में भी उन्होंने लेखन कार्य किया है। उनकी कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं-गणगोत,गाठोड, खोगीर भरती, कोट्याधीश पु. ल., गोळाबेरीज, बटाट्याची चाळ, हसवणूक, व्यक्ती आणि वल्ली, भाग्यवान, जावे त्यांच्या देशा, चार शब्द आदि किताबों का लेखन कार्य भी उन्होंने किया है। साथ उन्होंने काय वाटेल ते होईल, एका कोळीयाने, कान्होजी अग्रो नामक उपन्यासों का अनुवाद किया है। साथ ही गांधीजी नामक चरित्र भी उन्होंने लिखा है।

अन्य क्रियाकलाप :

साहित्यिक लेखन के साथ-साथ पु. ल. देशपांडे जी ने अभिनय एवं फिल्म के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। फिल्म के क्षेत्र में अभिनय के साथ-साथ संगीत, पटकथा लेखन, गीत रचना, संवाद आदि का कार्य भी उन्होंने किया है। मानाचे पान, मोठी माणसे, जरा जपून, नवरा बायको, वर पाहिजे, घरधनी, दूध भात, गुळाचा गणपती, माईसाहेब फूल और कलियां, आज और कल इन मराठी एवं हिंदी फिल्मों में उन्होंने कथा लेखन, पटकथा लेखन, संवाद लेखन, संगीत एवं अभिनय का काम भी किया है।

पुरस्कार एव सम्मान :

पु. ल. देशपांडे जी का साहित्य लेखन, फिल्म लेखन, सामाजिक कार्य आदि क्रियाकलापों के कारण उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। जैसे – पद्मश्री पुरस्कार, पद्मभूषण पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, पुण्य भूषण पुरस्कार, कालिदास सम्मान, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार आदि।

अतः समग्र रूप से कह सकते हैं कि पुल देशपांडे जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सराहनीय है। जो सामान्य पाठक एवं दर्शकों के लिए उच्च आदर्श बन सकता है एवं उन्हें सकारात्मक जीवन की ओर प्रेरित करता है।

4.3.2 पु.ल. देशपांडे जी के हास्य–व्यंग्यात्मक लेख का वस्तुविवेचन:

आधुनिक मराठी रचनाकारों में पु. ल. देशपांडे जी की एक महत्वपूर्ण हास्य–व्यंग्य रचनाकार माने जाते हैं। अपने विशेष हास्य व्यंग्यात्मक शैली में उन्होंने अनेक व्यंग्यात्मक निबंधों का सृजन किया है। उन्होंने अपने जीवन की अनुभूतियों के आधार पर अनेक रचनाओं का निर्माण किया है। उनके इस अनुभूति की झलक उनके कई निबंधों में देखी जा सकती है। उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से समाज की अनेक विसंगतियों को वाणी दी है। उन्होंने 'हास्य–व्यंग्यात्मक लेख' इस पुस्तक में संकलित निबंधों में अपने व्यक्तिगत, सामाजिक विषयों को निडरता के साथ समाज के सामने प्रस्तुत किया है। 'हास्य–व्यंग्यात्मक लेख' इस पुस्तक में अनुवादक प्राचार्य वेदकुमार वेदालंकार जी ने मराठी रचनाकार पु. ल. देशपांडे जी के 'हसवणूक' इस मराठी पुस्तक के कुल सात 'हास्य–व्यंग्यात्मक' निबंध मबिगरी ते मॅट्रिक, (शिशुकक्षा से मैट्रिक) 'माशी', (मक्खी) मी आणि माझा शत्रूपक्ष, (मैं और मेरा शत्रुदल) माझे पौष्टिक जीवन, (मैं और पोस्ट ऑफिस) काही अप काही डाऊन, (रेलगाड़ियां कुछ अब कुछ डाउन) काही नवीन ग्रहयोग, (कुछ नए ग्रह योग) चाळीशी, (चश्मा) साथ ही मूल पुस्तक 'गणगोत' में से रावसाहेब (रावसाहब) 'असा मी आसामी' इस किताब से काय म्हणाले गुरुदेव?, (क्या कहा गुरुदेव ने?) 'व्यक्ती आणि वल्ली' में से चितळे मास्तर (मेरे चितले मास्टर जी) इस कुल दस मराठी हास्य–व्यंग्यात्मक निबंधों का समावेश कर अनुवाद किया है। जिसमें अनेक विषयों को अभिव्यक्ति मिली है।

पु.ल. देशपांडे जी का इस अनूदित किताब में पहला हास्य–व्यंग्यात्मक निबंध का नाम है **'शिशु कक्षा से मैट्रिक तक'** इस निबंध में पु. ल. देशपांडे जी ने अपनी पाठशाला के दिनों के अनुभव को वाणी देने का काम किया है। लगभग हर व्यक्ति का पाठशाला के जीवन की शुरुआत शिशु कक्षा से होती है। उसे तरह निबंधकार जी के पाठशाला जीवन की शुरुआत भी शिशु कक्षा से ही हो जाती है। पु. ल. देशपांडे जी बताते हैं कि शिशु कक्षा से लेकर मैट्रिक तक का मेरा अध्ययन काल एक दुख भरी दास्तां है। अनेक समस्याओं को झेलने की करुण कहानी है वह अपने लेख में लिखते हैं, 'शिशु कक्षा से लेकर मैट्रिक तक का मेरा अध्ययन कल एक दुख भरी दास्तान है। अनेक कठिनाइयां झेलने की करुण कहानी है। शैशव, बाल्य, कौमार्य, पौगंड आदि जीवन की प्राथमिक अवस्थाएं किसी के लिए सुखद, रमणीय या प्यारी रहीं हों, यह

दस साल मेरे लिए तो जलकर राख होने की दशाएं थी। यह मेरे घर की हालत कुछ ऐसी खस्ता न थी कि म्युनिसिपैलिटी के खंबे–तले बैठकर पढ़ाई करनी पड़ी हो। सोचता हूं कि यदि वैसी कंगाली हालत होती, तो मैं भी अवश्य ही आज एक महान चरित्र–नायक होता। आज जैसा एक साधारण–सपाट मनुष्य ना हुआ होता!'

वह अपनी पाठशाला के जीवन की कहानी बयां करते हैं। इस हास्य व्यंग्यात्मक लेख में उन्होंने अपने बचपन के दस साल और घर के हालात कपड़े के प्रति होनेवाला मोह, कॉलरवाली कमीज, भीखबाली का इतिहास और पूरा देशपांडे दामोदर मास्टर और बिल्ली पाठशाला की विभिन्न विषयों की कक्षाएं दामले मास्टर और पढ़ाई का ढंग तथा बच्चों की हालत, मेरे बचपन के दोस्त, बचपन का मुरझाना, गोले मास्टर और बच्चे, अध्यापकों के अलग प्रकार के नाम, कोट पु. ल. देशपांडे तथा पाठशाला के मास्टर, परीक्षा और शिक्षक, मास्टरों के प्रति होनेवाली शिकायते, शिक्षा व्यवस्था, बाल मनोविज्ञान, सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगति, शिक्षा पर व्यंग्य, शिक्षकों का आचरण एवं स्वार्थ अध्यापकों की रुचि, पु. ल. देशपांडे जी का विसंगत जीवन, उनकी रुचि आदि विभिन्न विषयों को वाणी दी है। इन विषयों की प्रस्तुति में पु. ल. देशपांडे जी ने व्यंगात्मक रूप से हास्य का निर्माण किया है।

हास्य–व्यंग्यात्मक लेख में दूसरा लेख है '**मक्खी**' में लेखक ने मूलतः मक्खी के माध्यम से अनेक सामाजिक और राजनीतिक तथा साहित्यिक विषयों को प्रस्तुत किया है। इसमें एक मक्खी के मरने की कथा तथा उससे जुड़े अनेक हास्य आत्मक घटनाओं को प्रस्तुति मिली है जिससे वर्तमान व्यवस्था पर करारा प्रहार किया है। पु. ल. देशपांडे जी बताते हैं कि एक मक्खी दवाई की शीशी (बोतल) में जाकर मरती है और फिर यह खबर बाहर फैलती है। इस घटना को आधार बनाकर लेखक ने एक किटक 'मक्खी' का सपना, उसका और मानव जाति का संबंध, घर में उसका सहवास आदि का वर्णन किया है। साथ ही मक्खी की मरी हुई घटना पर पत्रकारिता क्या रूप लेती है? उसे कैसे वर्तमान पत्र के प्रथम पृष्ठ पर जगह मिलती है। इतना ही नहीं तो संपादक महोदय उसपर अग्रलेख भी लिख डालते हैं। पु. ल. देशपांडे जी इस व्यंग्यात्मक निबंध में मक्खी को असाधारण महत्व देते हुए अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय घटनाओं से उनका संबंध जोड़ते हैं। इसमें लेखक ने अनेक घटनाओं के माध्यम से व्यंग्य को सशक्तता के साथ उभरा है। जो औषधि मनुष्य के लिए तारणहार बनती है, वही औषधि उस मक्खी को मृत्यु के द्वारा तक पहुंचती हैं। लेखक ने इस घटना के माध्यम से आज की पत्रकारिता, सरकार की दिरंगाई, भ्रष्टाचार आदि विषयों को प्रस्तुत किया है। सरकार और पत्रकारिता पर व्यंग्य करते हुए लेखन लिखते हैं कि, 'यहां मृत्यु लोक में भी तो उसकी मृत्यु के कारण कितनी खलबली मची थी। आज तक दवाई पीकर कितने आदमी मरे हैं, उनकी कोई गिनती है! किंतु किसी का भी फोटो अखबार में नहीं छपा।परंतु इस मक्षिका को समाचार पत्र के प्रथम पुस्तक पर स्थान मिला और संपादकों ने इस पर अग्रलेख भी लिख डालें। एक मक्खी के मर जाने पर इतनी बड़ी मात्रा में इतना दुख पहले कभी नहीं मनाया होगा। अभी अभागी मक्खी उसे शीशी में अपने अति स्मरणीय पंख फैलाकर तैर रही थी। आज तक वहां उसे कार्यालय के अनेक अधिकारियों के मुख पर बैठी होगी। यही नहीं सरकारी कामकाज का जायजा लेने के लिए आनेवाले मंत्री, सम्माननीय व्यक्ति, नेता, अतिथि आदि के

मुखमंडल की उसने शोभा बढ़ाई होगी कभी-कभी सरकारी कचहरियों में अपनी सखी सहेलियां का शिकार करनेवाले वरिष्ठ- कनिष्ठ अधिकारियों को चकमा देती हुई उनका अनमोल समय नष्ट किया होगा। परंतु अंत में एक औषधि की धार ही उसके लिए धारातीर्थ बनी। एक मक्खी मर गई तो कोई बात नहीं। मगर इस तरह होता रहा तो सरकार की हिम्मत बढ़ती जाएगी। जाने कितनी मक्खियों मारेगी-मरवाएगी सरकार!'

इस तरह पु. ल. देशपांडे जी ने पौराणिक विषय के माध्यम से राजघराने पर भी व्यंग्य किया है। पाश्चात्य संस्कृति, पाश्चात्य घटना तथा चीन के साथ भी मक्खी की तुलना, मक्खी का और स्त्री जाति का संबंध आदि अनेक विषयों को प्रस्तुत किया है।

'मैं और मेरा शत्रुदल' यह हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में पु. ल. देशपांडे जी ने अपने शत्रुदल अर्थात् व्यक्तिगत तकलीफ पहुंचानेवाले और समय बर्बाद करनेवाले व्यक्तियों को अपना दुश्मन अर्थात शत्रु माना है। जिसका चित्रण उन्होंने कलात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक रूप में किया है। वह अनेक शत्रुदल अर्थात् व्यक्तियों की तकलीफ से इतनी तंग आ चुके हैं कि अब सहने की हद जैसे समाप्त ही हो गई है। वह अपने निबंध में लिखते हैं कि, 'अब तो हद हो गई! अरे, मैं पूछता हूं, मनुष्य की सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है या नहीं? एक इतने से जीवन में मनुष्य क्या-क्या बर्दाश्त करें? यह लोग सबको छोड़ हमें ही क्यों पकड़ लेते हैं? सों से मैं मुंह छुपाए या बचता-छुपता निकल जाता हूं-जैसे कि मैं उनका कर्जदार हूं! आखिर मेरे जैसे लोग अपनी शिकायत किस चौपाल में जाकर करें?'

इस तरह पु. ल. देशपांडे जी अपनी व्यक्तिगत त्रासदी का चित्रण करते हैं। यह करते समय उन्होंने अपने जीवन की त्रासदी के विषय के माध्यम से लोगों की प्रवृत्तियों पर प्रहार किया है। लेखक पु. ल. देशपांडे जी अपने दोस्त सोन्या बगलाणकर को अपने शत्रुदल की कहानी सुनाते हैं। शिकारी लेखक का पहला शत्रु है जो अपने शिकार की कहानी सुनाकर लेखक को नाराज दुखी करता है। उसका समय बर्बाद करता है। पापासाहब घौडचौरे, अण्णासाहब सरगुड़े आदि शिकारी अपने वीरता की दास्तान पढ़कर लेखक को बोर करते हैं। लेखक का दूसरा शत्रु है घर बनानेवाले व्यक्ति और तीसरा दुश्मन यात्रा करके आनेवाले व्यक्ति। जो फोटो दिखाकर अथवा एल्बम दिखवाना और तीसरा दुश्मन है बाल कलाकारों के माता-पिता। इन शत्रुदल से लेखक ने अपनी खुद के समय की अपव्ययता, लोगों के चरित्र के दोष, स्वार्थपरता, पति-पत्नी के संबंध, घर मलिक का स्वभाव, स्त्री का स्वभाव, लोगों के बड़प्पन दिखाने की पद्धति, झूठे साहित्यकारों पर व्यंग्य, शिकारी की झूठी और उबासु कहानी आदि विषयों को वाणी दी है। झूठ साहित्यकारों की प्रवृत्तियों पर प्रहार करते हुए पु. ल. देशपांडे जी लिखते हैं कि, ''वस्तुस्थिति यह होती है कि चार फीट दूर ही नासिकानली से ओष्ठ-मुरली से खुरायमान ध्वनियां आ रही होती है- किंतु प्रेम-कथा लिखने में कोई बाधा नहीं होती। जब ऐसे ऐसे कथाकार निराधार लिख सकते हैं, तो अकेले बाबा साहब ने ही किसी का क्या बिगाड़ा है? कुल मिलाकर बात इतनी कि अंत में सारे एक ही थैली के.....!''

इस तरह के अनेक सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि विषयों को रावसाहब, क्या कहा गुरुदेव ने? आदि व्यंग्यात्मक निबंध में वाणी देने का प्रयास किया है।

पु. ल. देशपांडे जी अपनी साहित्यिक रचना के लिए विभिन्न विषयों का चुनाव करते हैं। रोजमर्रा जीवन के छोटी सी छोटी अनुभूति को भी वह साहित्यिक रचना की महत्वपूर्ण विषय वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने के लिए माहिर माने जाते हैं। वह सहज रूप से अपने हास्य व्यंग्यात्मक निबंध के लिए वस्तु का चुनाव करते हैं। जैसे- चश्मा, पोस्ट ऑफिस, रेलगाड़ी, ज्योतिषी आदि। **'मैं और पोस्ट ऑफिस'** इस हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध में लेखक ने पोस्ट ऑफिस और स्वयं के जीवन के अनुभव को आधार बनाया है। जिससे वह अपनी खास हास्य-व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से कोई बच नहीं सकता। वह पोस्ट ऑफिस को एक अजूबा नमूना मानते हुए लिखते हैं कि, ''पोस्ट ऑफिस भी एक अजीब नमूना होता है। वहां पब्लिक के लिए रखी हुई कलम-दवात से लेकर सारी स्थिर-स्थावर, जड़-जंगम वस्तुओं पर एक रहस्यमय मुहर लगी होती है। उस मुहर की छाप को पढ़ पाना उतना कठिन है, जितना वहां के लिफाफे या रसीद पर लगी हुई छाप को। फिर भी उसका अस्तित्व होता है, यह तो मानना ही पड़ेगा-कुछ काला-काला-सा ठप्पा जो होता है। मुझे तो लगता है कि डाक विभाग में नौकरी पर रखते समय यहां भलि-भांति जांच लिया जाता है कि कहीं उम्मीदवार के चेहरे पर कोई विशेष भाव तो नहीं है! अथवा सभी भावनाओं का अभाव है या नहीं! यह भी देखा जाता है।'' पोस्ट ऑफिस का गहराई से चित्रण, पोस्ट कर्मचारियों की प्रवृत्ति, पोस्ट ऑफिस के पद, शॉर्ट फॉर्म, बटवाडा जैसे शब्द और उसका अर्थ, कर्मचारियों की काम करने की पद्धति, उनकी लिखावट, पत्र या तार का समय पर न पहुंचना, मुहर लगाना, पोस्टपेटी से जुड़े अर्थ, पत्र पहुंचनेवाले व्यक्ति का वर्णन, स्याही, पत्रपत्ता, डाक विभाग के फॉर्म और उसे पर की भाषा, पोस्ट ऑफिस और मनोरंजन, पोस्ट ऑफिस की खिड़की और उसे जुड़े काम की पद्धति, लेखक का टिकट खरीदना और विज्ञापन पढ़ना, उससे निर्मित व्यंग्य, तार या पत्र के परिवार से जुड़े मामले, पोस्ट ऑफिस का बंद होने का समय, पोस्ट ऑफिस की नई कार्य पद्धति की कल्पना, डाक की परिवर्तनता, पत्र लिखने की पद्धति इस तरह के अनेक विषयों को अपने इस निबंध की विषय वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। इन सारे विषयों के माध्यम से लेखक ने पोस्ट और उससे जुड़ी कार्य पद्धति का कठोर विरोध किया है। उसपर व्यंग्य करते हुए उन्होंने आम आदमी की समस्याओं को वाणी दी है।

पु. ल. देशपांडे जी का और रेल्वे स्टेशन का बड़ा गहरा संबंध प्रतीत होता है। जैसे उन्हें देहात, छोटे कस्बे अच्छे लगते हैं। उसी प्रकार उन्हें छोटे देहातों के छोटे रेल्वे स्टेशन के प्रति भी अधिक लगाव दिखाई देता है। इसी लगाव के परिणाम स्वरुप वह रेलवे स्टेशनों पर अपनी रचना का निर्माण करते हैं। उन्होंने अपने हास्य-व्यंग्यात्मक निबंधों में इसी रेल्वे स्टेशन पर **'रेलगाड़ियां कुछ अप-कुछ डाउन'** नामक रचना का निर्माण किया है। इस निबंध में लेखक ने रेल्वे स्टेशन से जुड़ी हर एक बात को अपनी विषयवस्तु के रूप में लिया है। रेल्वे स्टेशन से संबंधित अपनी राय प्रकट करते हुए पु.ल. देशपांडे जी लिखते हैं कि, ''ऐसे ढंग के छोटे से फलाट (प्लेटफार्म) के प्रति मेरा विशेष खिंचाव है । केवल एक- दो आनेवाली और एक-दो जानेवाली पैसेंजर रेलगाड़ियां वहां आती-जाती हो। जैसे भूख लगने पर पालने में सोया हुआ 'ललुआ' चुलबुलाने लगता है, यों रेल के आने या जाने का समय होते ही जरा-सी हरकत में आ जाय! बस,

इतना-सा छोटा हो वह स्टेशन। सुबह की पैसेंजर गाड़ी से कौन गया, कौन आया, यह सारे गांव को पता लगे, इतना छोटा हो!''

इस तरह रेल्वे स्टेशन और उससे जुड़ी भावनाएं, रेल्वे स्टेशन का प्लेटफार्म, रेलगाड़ी और मनुष्य की जीविका, रेल क्लर्क का भ्रष्टाचार, रेल कर्मचारियों की काम में दिरंगाई, रेल कर्मचारियों के पद एवं हरकतें, रेल्वे स्टेशन का माहौल, फेरीवालों के तौर-तरीके, उनके शब्दों के उच्चारण, रेल्वे स्टेशन पर पानी की सुविधा, स्टेशन मास्टर के काम और ग्राहक की सुविधा, रेल्वे स्टेशन के बुक स्टॉल के लिए लिखनेवाले लेखकों पर व्यंग्य, प्लेटफार्म का वेटिंग रूम और वहां के यात्री, उन यात्रियों के तौर-तरीके, यात्रियों की आचरण की पद्धति, रेल के फर्स्ट क्लास, थर्ड क्लास यात्रियों की तुलना, रेल्वे स्टेशन के हमला और धांधली, रेल्वे बोर्ड और विज्ञापन, बिजली पर और कोयल पर चलने वाली रेलगाड़ियों की तुलना, महानगरी रेल्वे स्टेशन और लोकल ट्रेन तथा वहां के लोगों की जीविका आदि विभिन्न विषयवस्तु को हास्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

पु. ल. देशपांडे जी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। उनके निबंधों में एक विलक्षण विनोदशीलता दिखाई देती हैं। उन्हें ज्योतिषी विद्या का खास अध्ययन था। वह कहते हैं कि मेरे ज्योतिषी के प्रति गहरी आस्था है। भले ही मैं ईश्वर के सामने हाथ न जोडू परंतु ज्योतिषी के सामने बार-बार हाथ फैलाने पड़ते हैं। लेखक पु.ल. देशपांडे जी ने ग्रहों की दशाओं के माध्यम से राजनीति, राजनेता और साहित्यिक समीक्षकों पर गहरा व्यंग्य कसा है। '**कुछ नये ग्रहयोग**' निबंध में उन्होंने ग्रहयोग के प्रकारों को बताते हुए स्वयं कुछ योग की कल्पना की है। जैसे- जल श्रृंखला योग, बूट्टी अधिकारी योग, अंतः क्रमांक योग, कनिष्ठभागिनी योग, आकाशवाणी योग, समस्त स्त्री वृंद-पर पुरुष- विवाहित वैषम्य योग, पादत्राणांगुष्ठ योग, द्वाराघंटीका योग, आदि नवयुगों का निर्माण कर हास्य व्यंग्यात्मक शैली में किया है। जिससे व्यक्तिगत, सामाजिक,राजनीतिक समस्याओं को विषयवस्तु के रूप में विवेचन किया है। ग्रहयोग एवं पाश्चात्य सिद्धांत, ज्योतिष विद्या की वर्तमान स्थिति,ज्योतिषी के प्रति अपनी व्यक्तिगत धारणा, ग्रहयोग और राजनीतिक व्यंग्य, ग्रहयोग और साहित्यिक व्यंग्य, जल श्रृंखला योग और व्यक्तिगत समस्या, कर्मचारी और उनके कार्यालय की धांधली, तथा बूट्टी अधिकारी योग, सरकारी पुलिस अफसर की दोहरी नीति, अतः क्रमांक योग और लोगों की रोजाना की समस्याएं, स्त्री पुरुष संबंध और पुरुषों का परिस्थिति के प्रति देखने का दृष्टिकोण, पादत्राणागुष्टक योग और आम जनता, द्वारघंटीका योग, मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति आदि विषयवस्तु का विवेचन हास्यात्मक शैली में हुआ है।

'रावसाहेब' पु. ल. देशपांडे जी का जीवन परक निबंध है। यह निबंध 'गणगोत' इस मूल मराठी किताब से लिया गया है। इस निबंध में निबंधकार पु. ल. देशपांडे जी अपने जीवन में आए और उन्हें प्रभावित किए व्यक्ति के बारे में अपने अनुभव का कथन हास्यात्मक रूप से किया है। पु. ल. देशपांडे जी इस निबंध में बताते है कि मनुष्य के जीवन में वह अनेक लोगों से रोज मिलता-जुलता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनसे 15-15 साल तक उनके साथ रहने से या एक-दूसरे को पहचाने के बाद भी उनसे हमारे संबंध दृढ नहीं होते, परंतु काई ऐसे व्यक्ती भी होते हैं जिनसे कुछ पल में ही रिश्ता जुड़ जाता है और ऐसा

बनता है जैसे वह कई सालों से एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते हो। इस संदर्भ में पु. ल. देशपांडे लिखते है कि, ''कई लोगों से हमारा पंद्रह-बीस वर्षां का परिचय होता है, किंतु वह संबंध शिष्टाचार की सीमा से आगे कभी बढ़ नही पाता। बरसों से हम उनके घर आते-जाते है, भेंट-बातें होती है। परंतु भेट होने पर भी दो मनों की गाठें बनती ही नहीं। दूसरी ओर कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं कि, उनके साथ स्नेह का धागा तुरंत ऐसे जुड़ जाता है, जैसे जनम-जनम का नाता रहा हो। आचरण का संकोच पल-भर में समाप्त हो जाता है। ऐसे संबंध के बीच स्थान-भिन्नता आडे नहीं आती। पूर्व-संस्कार, भाषा, रुची, पसंत-नापसंत..... आदि किसी बहाने की आवश्यकता नहीं होती। बस एक ही पल में कोई अपना हो जाता है। गहरी मित्रता हो जाती है। गाँठे स्वयं बन जाती है।''

इस संबंध में लेखक अचानक उन्हें मिले बेलगाव के कृष्णराव हरिहर अर्थात् 'रावसाहब' जी के आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व का चित्रण कलात्मक, हास्यात्मक शैली में बयान करते है। अत्यंत साधारण व्यक्तित्व होने पर भी अपनी विशेष काम की पद्धति और बोलने के ढंग से दुसरों को प्रभावित करनेवाले व्यक्ति पु. ल. देशपांडे जी को कोल्हापूर के शालिनी फिल्म स्टुडिओ में प्रथम बार मिलता है और जीवनभर अपना हो जाता है। रावसाहेब सिनेमा थेटर का व्यवसाय करते है। जब लेखक अध्यापक के रूप में कार्य करने के लिए बेलगाव गये थे तब पुनः उनकी मुलाकात होती है। रावसाहेब अत्यंत साधारण एवं सबको समान दृष्टि से देखनेवाले व्यक्ति थे। चाहे वह राजनीतिक नेता हो या सामान्य आदमी दोनों को समान रूप से ही देखते थे। इस निबंध में लेखक ने जातिवाद छुआ- छुत ऊँच-नीच, संगीत और गीत, कहानी तथा कथालेखन और रावसाहेब आदि का चित्रण अत्यंत मार्मिकता से किया है। पु. ल. देशपांडे जी अपने रावसाहब की मानवता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, ''मैंने और मेरी पत्नी ने अब तक जैसे-तैसे आसूँओं का प्रवाह रोक रखा था। किंतु अब बाँध तोड़कर आँसू बह निकले। कौन हैं ये लोग हमारे? मैं भी कौन हूँ? कॉलेज का लेक्चरर- कुछ थोड़ा-सा गाना बजा लेता हूँ.... नाटक सिनेमा में आनंद मानने वाला- यहाँ कौन है किसी का सखा, कौन है साथी... कोई यहाँ- कोई वहाँ गीत गाकर अभिनय करने वाला। प्लेटफॉर्म पर कोई नहीं था ऐसा ऐसा जिससे खून का रिश्ता हो....थे विद्यार्थी, स्नेही, साथी.... अड्डे के यार दोस्त...! कई आयु की दृष्टि से, आदर मान की और ऐश्वर्या की दृष्टि से भी बडे-बडे व्यक्ति थे....सभी की प्रशंसा और स्नेह के कारण हमारा दम घुट घोटा जा रहा था... रेल चल पड़ी...धीरे-धीरे और रावसाहब एक छोटे बालक के समान सिसकते हुए चिल्लाकर बोले -

''काहे आये थे जी तुम बेलगाव।''

ऐसे मानवतावादी और संवेदनशील रावसाहेब का चित्रण लेखक ने किया है। जिससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य को कैसे और क्यू जीना है? अतः 'रावसाहेब' उच्च कोटी के मानवीय संबंध को उजागर करनेवाला हास्यात्मक लेख है।

'क्या कहा गुरुदेव ने?' यह पू. ल. देशपांडे जी का हास्य व्यंग्यात्मक निबंध है। 'असा मी असामी' इस मूल मराठी के हास्यव्यंग्यात्मक निबंध संग्रह से लिया गया है। इस निबंध के अंतर्गत लेखक बताना चाहते है

कि मनुष्य कैसे अपने से ज्यादा दूसरों पर विश्वास करता है। इस लेख में लेखक कायकिणी गोपालराव, अप्पा भिंगार्डे के साथ अध्यात्मिक गुरुजी से मिलने गये थे। तब वहाँ जाकर उनसे मिलते है, तब उस गुरुदेव का दिवाणखाना, वहाँ पर उन्हें मिलने आए विभिन्न तरह के लोगों की गतिविधियाँ, आप्पा भिंगार्डे की मजेदार शैली, गुरु के शिष्यों का वर्णन, दान-दक्षिणा देने की पद्धति, भक्तो की मूर्खता आदि का चित्रण व्यंग्यात्मक रूप से किया है। पु. ल. देशपांडे जी इस निबंध में लिखते है कि, कैसे में कायकिणी गोपालराव के साथ उनके गुरु को मिलने गया था? जहाँ जाने पर मुझे कैसी घुटन मेहसूस हुई? कैसे मुझे प्रार्थना के वक्त नींद लगी? और उस समय मुझे गुरुदेव ने क्या कहाँ? यह बताते है कि जब में गुरुदेव से मिलकर आया तो गोठस्कर दादा को उनका कोट देने के लिए मैं उनके पास चला गया तब उन्होंने मुझे सवाल किया की क्या कहा गुरुदेव ने? उस समय पु. ल. देशपांडे जी ने उत्तर देते हुए कहा कि, ''मतलब में अपने बाबा के शब्दों के द्वारा बदलता हूँ। मेरे पिताश्री कहा करते थे- बबुआ, ब्रह्मदेव ने इतनी विशाल सृष्टि का निर्माण किया, परंतु उसका प्रिय प्राणी है- गधा! इसलिए उसने मनुष्य प्राणी में भी गधे का अंश मिला दिया। दुनियाँ में कुम्हार कम और गधे ज्यादा है! तस्मात् यहाँ कुम्हारों की ही चलती है। इसलिए बबुआ, कुम्हार बन गधों की कोई कमी नहीं।'' इससे स्पष्ट होता है कि पु.ल. देशपांडे जी ने अपनी हास्यव्यंग्यात्मक शैली में झूठी धर्मांधता पर कठोर प्रहार किया है।

'मेरे चितले मास्टर जी' यह पु.ल. देशपांडे जी का अपनी शिक्षा के जीवन पर लिखा गया हास्यव्यंग्यात्मक निबंध है। जो मराठी की मूल पुस्तक 'व्यक्ती आणि वल्ली' से लिया गया है। इस निबंध में पु. ल. देशपांडे जी ने अपने प्रिय चितले मास्टर जी के जीवन को जागर किया है। वे लिखते है कि, यथार्थ रूप में स्कूल 'श्री गोपाल कृष्ण गोखले' के स्मारक के रूप में बनाया गया था। वह आज 'चितले मास्टर का स्कूल' नाम से जाना जाता है। लेखक बताते है कि, जब बच्चों को एक बार चितले मास्तर के हवाले कर दिया जाये तो वह उनके हाथों में सकुशल और सुरक्षित रहता है। लेखक इसके माध्यम से पुरानी शिक्षा पद्धति और आज की शिक्षा पद्धति तथा आज के अध्यापकों पर व्यंग किया है। साथ ही चितले मास्टर का रहन-सहन, पढ़ाई का विशिष्ट ढंग, बच्चों के प्रति होनेवाला आचरण, बच्चों के प्रगति के प्रति विशेष व्यवस्था, बच्चों के प्रति होनेवाली जिम्मेदारियाँ, बच्चों के परिवार से होनेवाले आत्मीय संबंध, चितले मास्टर की शिक्षा देने की पद्धति, चितले मास्टर के बच्चों के नाम लेने की विशिष्ट पद्धति, पु. ल. देशपांडे जी और चितले मास्टर के गहरे संबंध साथ ही वर्तमान समय के उसी स्कूल की स्थिति, वहाँ के अध्यापकों की प्रवृत्ति, चितले मास्टर का जीवन संघर्ष आदि विभिन्न बातों को व्यंग्यात्मक एवं हस्यात्मक रूप से, अत्यंत सहजता से वर्णित किया है। अतः कह सकते है कि पु.ल. देशपांडे जी के अपने गुरु चितले मास्टर के साथ अपनेपन के संबंध तथा जीवन के अंत तक चितले मास्तर का प्रभाव पु. ल. देशपांडे जी पर बराबर बनता रहा।

चश्मा और पु. ल. देशपांडे जी का अलग नाता है। वह घर में अलग प्रकार का चश्मा और बाहर अलग प्रकार का चश्मा पहनते थे। घर में सफेद और बाहर काला चश्मा। वह कहते हैं कि सन 1940 को ही मुझे चश्मा लग गया था। इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में लेखक ने स्वयं चश्मा लगने की कहानी,

आलिंगन के द्वारा चश्मा टूटने की कहानी, काला चश्मा पहनने से आनेवाली मुसीबतें, चश्मा न पहनने से क्या हो सकता है, चश्मा दुकानवालों की ग्राहकों को ठगने की पद्धति, तीन चश्मे की कहानी आदि विषयों को विस्तार से वाणी दी है।

समग्र रूप से कह सकते हैं कि पु. ल. देशपांडे जी ने अपने हास्य व्यंग्यात्मक निबंधों में अपने जीवन के अनुभव के द्वारा अनेक व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक साहित्यिक, व्यावसायिक विषयों को प्रस्तुति दी है।

4.3.3 'हास्य व्यंग्यात्मक लेख' का भावगत एवं शिल्पगत अध्ययन :

- **'हास्य व्यंग्यात्मक लेख' का भावगत अध्ययन :**

काव्य या साहित्य को पढ़ने या सुनते समय पाठक को जो आनंद मिलता है, उसे रस कहा जाता है। रस के पीछे ही भाव होते हैं। साहित्यशास्त्र में सामान्यतः कुल मिलाकर 11 रस और 11 स्थाई भाव है। साहित्य में भाव तत्व ही सबसे प्रधान होते हैं। भाव के बिना किसी भी साहित्यिक कृति का सृजन संभव नहीं है। भाव ही ऐसा तत्व है जो साहित्य को प्रभावशाली और गतिशील बनता है। भाव ही ऐसा तत्व है जो पाठकों के दिलों दिमाग पर असर करता है। भाव ही पाठक या श्रोता या दशक के हृदय में रस रूप में परिणत होकर उन्हें आनंद प्रदान करता है। अतः साहित्य और भाव का अन्य साधारण संबंध है। किसी भी साहित्यिक रचना के केंद्र में भाव ही प्रमुख होते हैं। वही रचना का प्राण तत्व होते हैं। उसके बिना किसी भी रचना का निर्माण होना संभव नहीं है। किसी भी साहित्यिक कृति में मनुष्य के भावों को अभिव्यक्ति दी जाती हैं। अतः रचनाकार मानवीय भावना और कल्पना के माध्यम से साहित्यिक संसार का निर्माण करता है। कोई भी साहित्यकार भावों को छोड़कर नहीं लिख सकता। अतः मराठी के पु. ल. देशपांडे जी भी प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। अपनी हास्य-व्यंग्यात्मक शैली से उन्होंने मराठी साहित्य संसार को समृद्ध बनाने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। 'पु.ल. देशपांडे जी के व्यंग्य हास्य-व्यंग्यात्मक लेख' इस अनूदित किताब में प्राचार्य वेदकुमार वेदालंकार जी ने पु. ल. देशपांडे जी के दस हास्यव्यंग्यात्मक लेख संकलित किए हैं। जिसमें उन्होंने अपने जीवन अनुभव के माध्यम से व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सरकारी परिवेश को उभारकर उसका यथार्थ चित्रण किया है। इस यथार्थ की अभिव्यक्ति का उन्होंने बहुत सूक्ष्मता से वर्णन किया है। उनके शिशुकक्षा से मैट्रिक तक, मक्खी, मैं और मेरा शत्रुलद, मैं और पोस्ट ऑफिस, कुछ नए ग्रहयोग, रावसाहब, चश्मा आदि हास्यव्यंग्यात्मक लिखों में हास्य, शोक, निर्वेद, घृणा आदि भावों की अभिव्यक्ति भारी मात्रा में हुई है। तो रति, क्रोध, उत्साह, आश्चर्य, वात्सल्य, भक्ति आदि भावों का निर्माण भी प्रसंगानुकूल हुआ है। हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध में से पहले लेख 'शिशुकक्षा से मैट्रिक तक' इसमें पु. ल. देशपांडे जी ने अपने बचपन के दिनों के जीवनानुभव को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। जिसमें लेखक की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। पु.ल. देशपांडे जी का कहना था कि बचपन में हमें अगर अच्छी खासी शिक्षा मिलती, तो आज मैं डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी की तरह बन जाता। परंतु हमें हमेशा हमारे बचपन को मुरझानेवाले दामले मास्टर, गोले मास्टर, मिरवनकर मास्टर,

भगने मास्टर आदि मास्टर मिले। जिन्हें अपना अपना विषय पढ़ाने में बिल्कुल रुचि नहीं थी। इसलिए पु.ल. देशपांडे जी का बाल सुलभ मन शौक से डूब जाता है। वह दुःखी होते हैं। अपनी यह शोक की स्थिति प्रकट करते हुए लिखते हैं कि, ''बचपन में मेरे पास एक 'भीकबाली' भी थी, जारीदार टोपी थी तथा पुश्त दर पुश्त चला आता मखमल का एक सूट भी था । यों अभाव किसी बात का नहीं था, परंतु 'मेरा बचपन सुख से बीता' कहने में आज भी जीभ लड़खड़ाने लगती है।''

इस तरह से फूलने अपने-अपने बचपन की दुखद कहानी बयां करते हैं उपायुक्त पंक्तियों में फूल के दुख के भाव उभर कर सामने आते हैं इस तरह से रौद्र वीर निर्वेद भाई आदि भावों की अभिव्यक्ति भी समग्रता से हुई है प्रस्तुत लेख में लेखक ने हास्य-व्यंग्यात्मक शैली में हास्य का निर्माण किया है पूरा लिखते हैं कि, ''मुझे भी याद है! बच्चों को स्कूल भेजते समय नाश्ते या खाने का टिफिन भरनेवाली, बच्चों को अच्छे-अच्छे कपड़े पहना कर स्कूल भेजनेवाली माताएं तो आज की बात हैं-ऐसी माताएं हमारे समय में कहां! हमारे समय तो दशा यह थी कि स्कूल जा रहे आस-पास के बच्चों के झुंड में अपना लल्ला भी घुसा दिया कि वह अपने-आप स्कूल पहुंच जाता था। बस, इसके बाद बच्चा सकूल जा रहा है, उस सचाई का पता जन्मदाता जी को तभी लगता था, जब अगले माह की फीस देनी पड़ती थी। ऐसा भी होता था कि तीन-चार सालों से कभी एकाध बार बाप बच्चे से पूछता था, 'क्यों रे गधे! कितनी क्लास में है रे?' 'तीसरी में हूं।' गधा जानकारी देता था।''

उपर्युक्त कथन में पु. ल. देशपांडे जी ने आज के बच्चों को स्कूल भेजते समय माता-पिता कीस तरह से उन्हें भेजते हैं और हमारे वक्त कैसे हालात थे, यह बताते हुए हास्य का निर्माण करते हैं। जिसमें महास्यफ भाव प्रभावशाली रूप से उभर कर आया है।

'मक्खी' इस हास्य व्यंगात्मक लेख में भी हास्य यह भाव पाठकों को काफी प्रभावित करता है। विदेश में मक्खी को पकड़ने का एक मजेदार तरीका या तरीके का वर्णन लेखक ने करते हैं। जिसे हास्य का निर्माण होता है। पु. ल. देशपांडे जी लिखते हैं, ''आखिरकार डार्लिंग, मेरे दिमाग में एक ट्रिक सूझी। मैंने लिपस्टिक में च्युइंगम मिलाकर-! है ना मेरे प्यारे राजा! (अंगरेजी वाक्य का यह हिंदी अनुवाद है- यह सुजान पाठक समझ ही गए होंगे) क्या किया कि अपने ओठों पर लगा लिया और तेरे आते ही तेरा गाल चूम लिया। मुझे पूरा भरोसा था कि मक्खी तेरे गाल पर जरूर बैठेगी। ताश तीस पर लिपस्टिक की छाप में च्युइंगम की मिठास भी मिली हुई थी ना! इसलिए, मेरे प्यारे सनम, वह मक्खी मेरे अनुमान के अनुसार ठीक वहीं बैठी.... और अब कहीं जाकर मेरे कब्जे में आ सकी! वह देख, 'सूप' में मरी पड़ी है!''

प्रस्तुत लेख में पु. ल. देशपांडे जी ने अद्भुत रस का परिपाक भारी मात्रा में किया हुआ नजर आता है। मक्खी और मक्खी की कहानी को बताते हुए पु. ल. देशपांडे जी ने अद्भुत रस की परिकल्पना की है और मक्खी को अन्य साधारण महत्व दिया है। जिससे वे सामाजिक एवं साहित्यिक व्यंग्य करते हैं। पु. ल. देशपांडे जी आश्चर्य के भाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं कि, ''अजी हम भारतीय और मक्षिकागण आज सैकड़ो युगों से साथ-साथ मिल-बैठकर बड़े प्रेम से रहते हैं! सुना है कि कम्युनिस्ट चीन में चीनी

लोगों ने जाने कितनी अरब, कितनी लाख और कितनी हजार मक्खियों मारी हैं। उनकी तो गिनती भी की गई है, तो इकाई, दहाई गिनते हुए और एक-एक मक्खी मारते हुए की गई है। मगर इन कम्युनिस्ट देशों ने इंसानों को मारने की बजाय यह मक्खियां मारना कब से शुरू कर दिया? हमारा भारत इन दोनों उत्पादन वृद्धि की राह पर चल रहा है। हमें अपनी भारतीय मक्खी पर गर्व है! किबहुना, यह कहना ठीक होगा....! बीच में एक वाद चर्चा चल रही थी कि हमारा राष्ट्रीय पक्षी कौन सा है? मैं मक्खी का अनुमोदन करता हूं, क्योंकि मक्खी मेरे साथ रहती हैं। कुछ लोग कहा करते हैं- मक्खी पक्षी नहीं है। कमाल करते हैं वे लोग- अजी, अगर दो पंखों से उड़नेवाला प्राणी पक्षी नहीं है, तब तो बात ही खत्म हो गई।''

उपर्युक्त अवतरण में लेखक ने भारतीय लोगों के आचरण और चीनी लोगों की मानवताहीन प्रवृत्तियों पर प्रहार किया है। जिससे अद्भुत रस का निर्माण हुआ है।

पु. ल. देशपांडे जी को अपने जीवन में अनेक व्यक्तिगत संघर्षों का सामना करना पड़ा। वे अपने जीवन में समय को अत्यधिक महत्व देते थे। पढ़ने में उन्हें खूब रुचि थी। परंतु समय की बर्बादी वह नहीं चाहते थे। 'मैं और मेरा शत्रुदल' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में पु. ल. देशपांडे जी ने समय को बर्बाद करनेवाले अपने दुश्मनों की बात की है। जिसमें जो शिकारी अपने शिकार की कहानी लिखते हैं। घर बनानेवाले घर मालिक, यात्रा करनेवाले और बच्चों को अभिनय सीखनेवाले माता-पिता आदि को अपना दुश्मन और समय की बर्बादी का कारण बताते हैं। जिसमें लेखक ने अपने मित्र सोन्या के साथ संवाद करते हुए यह निबंध लिखा हुआ है। जिसमें हास्य, करुणा, शांत, क्रोध आदि रसों की अभिव्यक्ति प्रचुरता से हुई है। इसमें लेखक को अपने दुश्मनों से सीधे लड़ना या झगड़ा करना संभव नहीं है । इसलिए उन्हें सहने के सिवा उनके पास कोई पर्याय बिल्कुल भी नहीं है। उसे पु. ल. देशपांडे जी को काफी दुःख मिलता है, समय नष्ट हो जाता है, तरसना पड़ता है, फिर भी वह उन लोगों को सहते दिखाई देते हैं। ऐसे समय पर लेखक ने शांत रस के माध्यम से हास्य रस का भी निर्माण किया है। प्रस्तुत निबंध में पु. ल. देशपांडे जी लिखते हैं कि, ''कुलकर्णी ने मुझे खोदी हुई नाली के ऊपर रखे हुए तख्ते पर से घसीटना शुरू किया। मैं ना जाता, तो क्या करता! परंतु मेरी अवस्था वही थी कि जो कसाई द्वारा ले जा रहे बकरे की तरह होती हैं। कसाई उसे कहता हो- 'चल, तेरे गले पर छुरी चलाऊंगा' और बकरा चला जा रहा हो उसके पीछे-पीछे। यहां एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं- कोई घर बनवा रहा हो, घर ही क्यों- ताजमहल क्यों न बनवा रहा हो, जब तक वह मुझे-अंदर बाहर, सारा-का-सारा दिखता नहीं है, तब तक मुझे उससे ईर्ष्या, द्वेष या चिढ़, कुछ भी नहीं होता। खैर! इस समय मैं उस लचकती तख्ती पर से चलने की कलाबाजियां करता हुआ कुलकर्णी के पीछे चुपचाप चला जा रहा था। सर्कस के कलाकार की तरह ईंट-पत्थरों के ढेर लांघता हुआ, लोहे के सरियों से बचात हुआ मैं कुलकर्णी के पीछे-पीछे चला जा रहा था। मैं खींचना जा रहा था, कुलकर्णी बोलता जा रहा था। मुझे एक भी अक्षर बोलने की फुर्सत नहीं दे रहा था- विवश होकर मैं केवल 'अच्छा!!' 'हां, हां !!' 'वाह!!' कह पा रहा था।''

अति: उपयुक्त अवतरण से लेखक की मजबूरी दिखाई देती हैं। जिसमें भावना प्रमुख बन बैठी हैं। लेखक का शांति से चुपचाप सहना और मन ही मन विरोध दिखाना। यह भाव उभर कर सामने आया है। जिसमें निर्वेद और हास्य भाव की अधिकता दिखाई देती हैं।

'मैं और पोस्ट ऑफिस' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में पुलिस ने पोस्ट ऑफिस को एक अजब नमूना कहते हुए पोस्ट ऑफिस की व्यवस्था उसे जुड़े कर्मचारी, अधिकारी, चुनाव समिति, पोस्ट ऑफिस का रखरखाव, पोस्टमैन उसकी तार करने का तरीका, लिखावट, फॉर्म भरने की पद्धति आदि को चित्रित किया है। अत्यंत सूक्ष्मता से इन चित्रों का अंकन करते हुए उन्होंने करूण, शांत, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर आदि रसों का निर्माण किया है। जिसमें भाव में संप्रेषणीयता का समावेश हो चुका है। इस लेख में लेखक पु.ल. देशपांडे जी पोस्ट ऑफिस के काम के कारण पोस्ट ऑफिस जाते हैं। तब एक टिकट के लिए उन्हें घंटा लाईन में लगना पड़ता है, परंतु खिड़की पर आनेपर पता चलता है कि इस खिड़की में टिकट नहीं मिलते। वहां पास वाली खिड़की में मिलते हैं। वहां जाने पर टिकट देने का समय समाप्त होता है। परिणाम स्वरुप लेखक का काम बिगड़ जाता है। इन कर्मचारियों की काम की अयोग्य पद्धति से लेखक गुस्सा आ जाता हैं और पोस्ट कर्मचारियों पर टूट पड़ते हैं। वह कहते हैं कि,

''डाकखाने में टिकट को 'पूछताछ' कहने लगे हैं आजकल?''... मैं।

''हंसी-मजाक घर जाकर करो।''

मैं 'पूछताछ' की खिड़की तक गया। वैसे सबका पता जाननेवाले डाकखाने की एक बात बड़ी भली है- एक खिड़की को दूसरे खिड़की तक का पता मालूम नहीं होता।

''क्या है? पूछताछ- खिड़की में पूछताछ की गई।''

''पंद्रह पैसों की 'पूछताछ दो।' मैं शांतिपूर्वक कहा।''

''क्या..? खिड़की के पीछे से ठीक वैसी ही चीख सुनाई दी, जैसे भूतकाल में नायिकाएं चीख उठती थीं। इस बार यह चीख किसी पुरुष के मुख से निकली थी, जो कुछ-कुछ गर्जना में मिली हुई थी।''

''पंद्रह पैसों की पूछ-ताछ।'' मैं।

''पूछताछ?''

''हां, पू ...छ-ता- छ...।''

''क्यों मिस्टर, क्या सुबह-सुबह ही नशा करके आए हो?''

''जरा खिड़की से बाहर सिर निकालो- अभी बतलाता हूं। नशा चढ़ जाएगा!''

उपर्युक्त संवादों से पता चलता है कि पु. ल. देशपांडे जी इस व्यवस्था व्यवस्था से तंग आकर क्रोधित हुए हैं। जिससे क्रोध का भाव दिखाई देता है, साथ ही इस क्रोध के साथ यहां पर हास्य भाव का भी निर्माण हुआ है। जिससे सरकारी कर्मचारियों की लापरवाही, कामचोरी आदि बातें सामने आती हैं।

'रेलगाड़िया कुछ अब कुछ डाउन' इस हास्य व्यंग्यात्मक लेख में देहातों की तथा ग्रामीण लोगों का अपनापन और नगरीय लोगों की जीवन पद्धतियां, साथ ही रेलवे स्टेशन एवं उसे जुड़ी व्यवस्था का चित्रण भावात्मक रूप से हुआ है। पु. ल.: देशपांडे जी के इस लेख में हास्य, क्रोध, शोक, उत्साह, निर्वेद, वात्सल्य, प्रेम का भाव सहज रूप से उभर कर सामने आया है। अपनेपन पर और आत्मीयता के भाव का उदाहरण इस प्रकार से हैं,– ''ऐसा अपनापन लिए हुए 'फलाट' के सिवाय स्टेशन पर बिटिया को विदा करने आए पाटील (पटेल) से स्टेशन मास्टर कहता हो, 'राम–राम पाटिल...? दीदी बिटिया ससुराल चली है का?' और नीली पोशाक पहन, माथे पर काले सिंदूर का मोटा– सा टीका लगाए और गले में तुलसी माला धारी पोर्टर गांव की किसी मां से कहें 'काहे री अनसूये, अरी, ललुवा को कनटोप तो पहना ठीक से! देख, कैसी ठंडी हवा छुट्टी है.... बिटवा को सरदी– फरदी हो गई तो...? फिर यह हो कि भरे– भड़क्के वाले फलाट पर पाटील की बिटिया झुककर स्टेशन मास्टर साहब के पैरों पर माथा टेके और जमशेदपुर या और किसी दूर के गांव में रह रही अपनी बिटिया की याद से मास्टर साहब की आंखें भर आए– और अपने उसे पुलक या रोमांच को छुपाने के लिए मुख से 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव' कहनेवाले गडद्गगदित मास्टर साहब अपनी भीगी आंखों छुपाने के लिए 'चलो, सएवन्टईन अप लेट है आज' कहकर आगे बढ़ जाए– खिड़की पर आए किसी को टिकट देने के बहाने से!.... ऐसा, इतना अपनेपन से लबालब हो मेरा फलाट!'' उपर्युक्त अवतरण से पता चलता है कि देहाती जीवन प्रणाली में अपनात्व का जो भाव है वह नगरीय जीवन प्रणाली में नहीं है। यहां करुणा, प्रेम, आत्मीयता, अपनापन, दुःख है। इसी तरह विभिन्न भावों को सजाकर लेखक ने भावों की अभिव्यक्ति सहज रूप से की है।

अतः 'कुछ नए ग्रहयोग' 'चश्मा' 'राव साहब' आदि व्यंग्यात्मक लिखो में भावों का चित्रण बड़ी सहजता से सरलता से हुआ है। जो पाठकों के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। इन लिखों कि यहां भावाभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिकता से अंकित की है।

समग्र रूप से कह सकते हैं कि पु. ल. देशपांडे जी के हास्य–व्यंग्यात्मक लेख में भावों की अभिव्यक्ति सहज, सरल, संप्रेषण या प्रभावपूर्ण रूप से हुई है, जो पाठकों के दिलों दिमाग पर असर छोड़ती है।

4.3.3.2 'पु. ल. देशपांडे जी के हास्य व्यंग्यात्मक लेख' का शिल्पगत अध्ययन :

आधुनिक मराठी साहित्यकार पु.ल. देशपांडे जी अपनी विशिष्ट शैली के कारण प्रसिद्ध है। पु. ल. देशपांडे जी ने अपनी विशिष्ट लेखन शैली में साहित्य का निर्माण किया है। वह अपनी हास्य–व्यंग्यात्मक शैली के कारण काफी चर्चित हैं। किसी भी साहित्यिक कृति का निर्माण करते समय लेखक विशेष रूप से भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों पर विशेष ध्यान देता है। भावपक्ष साहित्य के प्राण अर्थात आत्मा है, तो

कलापक्ष उसका शरीर। भावपक्ष साहित्य में विचार और भावों की पुष्टि करता है, तो कलापक्ष इस विचार और भावों को विशिष्ट शैली में अभिव्यक्ति देता है। अतः साहित्य में भावपक्ष और कला पक्ष दोनों को समान रूप से महत्व दिया जाता है। प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं में विशिष्ट शिल्प विधान का प्रयोग करता है। शिल्प का शाब्दिक अर्थ है- निर्माण अथवा गढ़ने के तत्व। किसी भी साहित्यिक कृति में शिल्प का विशेष महत्व होता है। शिल्प विधान में मूलत उस रचना की भाषा शैली पर प्रकाश डाला जाता है। अतः 'पु.ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख' इस पुस्तक की भाषा और शैली का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

4.3.3.2.1 हास्य-व्यंगात्मक लेख और भाषा :

भाषा मनुष्य के विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। यह एक ऐसा साधन है जो रचनाकार के विचारों या भावों को साहित्यिक रूप में अभिव्यक्ति देता है। किसी भी रचना में भाषा की अपनी अहम भूमिका होती हैं। भाषा के बिना किसी साहित्यिक रचना का निर्माण संभव नहीं है। भाषा और निबंध का काफी गहरा संबंध है। जितनी भाषा संप्रेषणीय रहेगी, उतने ही प्रभाव से भावनाओं तथा विचारों का संप्रेषण संभव है। भाषा कथानक, पात्र को गतिशील बनाने में सहायक बनती है। इसलिए प्रभावशाली रचना का निर्माण करने के लिए भाषा का प्रभावी होना जरूरी होता है। पु. ल. देशपांडे जी की हास्य-व्यंग्यात्मक लिखों की भाषा सहज, सरल, एवं संप्रेषणीय है, जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। पु.ल. देशपांडे 'शिशु कक्षा से मैट्रिक तक' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में लिखते हैं, ''हमारी हालत यह थी कि कभी इस घर, उस घर या बुधवार, गुरुवार करते हुए जीमना नहीं पड़ता पड़ा या कभी मधुकरी भिक्षा भी नहीं मांगनी पड़ी। मां पेट- भर खिला देती थी और बाप की आर्थिक दशा भी ठीक-ठाक ही थी, तो फिर भीख मांगने का सवाल ही नहीं था और बाप परवानगी देता भी क्यों! साल भर पहनने के दो-चार ढीले-ढाले पाजामे और कुरते मिल ही जाते थे।''

इस तरह पु. ल. देशपांडे जी ने अपने अन्य लेखों में भी भाषा के इस रूप को उभारा है। साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृति को प्रभावशाली, आकर्षक बनाने के लिए प्रसंगानुकूल, पात्रानुकूल, नाटकीय, अलंकारमयी, संगीतात्मक आदि प्रकार के भाषा का प्रयोग करता है। अतः पु. ल. देशपांडे जी इसके लिए अपवाद नहीं है। उन्होंने भी अपनी रचना को प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाने के लिए पात्रानुकूल भाषा, प्रसंगानुकूल भाषा, ग्रामीण भाषा, नगरीय भाषा, नाटकीय भाषा, अलंकारमयी भाषा, संगीतात्मक भाषा, गीतात्मक भाषा आदि का प्रयोग अत्यंत मार्मिकता से किया है। 'मैं और मेरा शत्रुदल' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में लेखक ने भावानुकूल और प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग इस प्रकार से किया हुआ है। जैसे- ''अब तू ही बता, सोन्या! जैसा कि तू कहता है, अगर यह शिकारी चुपचाप शिकार कर आते और चुप बैठते, तो मैं खुश होकर इन्हें अपने खर्चे से खाकी रंग की 'हाफ-पैंट' दिलवा देता। लेकिन, ये मेरे दो मेरे प्यारे दोस्त! ये लोग वहीं तक नहीं रुकते -ये शिकार की कथाएं लिखते हैं-खैर, जाने दे! लिखते हैं, तो लिखा करें, हम पुस्तक के पन्ने तो पलटकर उन्हें टाल सकते हैं,परंतु जब यह लोग किसी उटपटांग स्थान पर गिरफ्तार करके हमें अपनी कहानी सुनाने लगते हैं, तो बता, कोई क्या करें?''

अतः उपयुक्त अवतरण में पु. ल. देशपांडे जी अपने शिकारी के प्रति होनेवाले क्रोध के भाव को व्यक्त करते हैं। जहां भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। पु.ल. देशपांडे जी ने अपने निबंधों में हास्य एवं व्यंग्य का निर्माण करने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। प्रस्तुत किताब के लगभग सभी लिखो में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। परिवार, समाज, राजनीतिक, संस्कृति, धर्म, शिक्षा आदि क्षेत्रों में दिखाई देनेवाली विसंगतियों पर प्रहार करते समय पु. ल. देशपांडे जी ने हास्य-व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। 'मैं और पोस्ट ऑफिस' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में लेखक ने पोस्ट ऑफिस के कर्मचारियों की काम की पद्धति पर व्यंग्य करते हुए व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

जैसे- ''सच तो यहां है की टिकट चिपकाए बिना डाक विभाग का एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता। तार हो या और कुछ टिकट जरूरी है। यदि ऐसा है, तो उसे खिड़कीवाले बाबू के पास अगर दस-बीस टिकट रख दिए जाए, तो क्या हो जाएगा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि डाक विभाग को डर लगता हो कि अगर हर एक के पास टिकट रख दिए जाएं, तो कहीं वे बाबू लोग खाली समय में एक-दूसरे की पीठ पर टिकट चिपकाने का खेल खेलने लगेंगे या फिर लगता है कि डाक विभाग का विचार है कि चार खिड़कियां भटके बिना पब्लिक सुधरेगी नहीं।''

समग्र रूप से कह सकते हैं कि पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख की भाषा सहज,सरल, प्रभावशाली है। जिसमें व्यंग्यात्मक भाषा, हास्यात्मक भाषा, भावानुकल भाषा, प्रसंगानुकूल भाषा गीतात्मक भाषा, अलंकारमयी भाषा आदि का प्रयोग सहजता से हुआ है। जिससे भाषा में संप्रेषणीयता का पुट विद्यमान है। साथी ही विभिन्न भाषा की शब्दावली का भी प्रयोग दिखाई देता है। कहीं-कहीं भाषा का दुरुह रूप भी दिखाई देता है। जिसके कारण भाषा की प्रवाहमयता में बाधा पहुंचती हैं। उसके साथ ही भाषा में कहावतें, मुहावरों, सूक्तियों का प्रयोग कर पु. ल.देशपांडे जी ने भाषा को गरिमा प्रदान की है।

4.3.3.2.2 हास्य व्यंग्यात्मक लेख और शैली :

शैली अर्थात् भाषा के अभिव्यक्ति का ढंग या पद्धति। साहित्यकार अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए जीस पद्धति का अवलंब करता है। उसे शैली कहा जाता है। 'शैली' भाषा के प्रस्तुतीकरण का एक ढंग है। किसी भी साहित्यिक रचना में भाषा के साथ-साथ शैली का भी अपना अलग महत्व होता है। शैली भाषा में प्रौढ़ता का निर्माण करती है। हर रचनाकार की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। रचना में प्रवाहमहता, विशिष्टता प्रभावशीलता, आकषर्कता निर्माण करने के लिए शैली अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पु. ल. देशपांडे जी ने भी अपने हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों में विशिष्ट शैलियों का प्रयोग किया है। रचनाकार अपनी साहित्यिक कृति में विभिन्न शैलियों का प्रयोग करता है। पु.ल. देशपांडे जी ने अपने हास्यव्यंग्यात्मक लेख में विवरणात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, भावात्मक शैली, हास्यात्मक शैली, हास्यात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, संवादशैली, नाटकीय शैली, पत्र शैली, संस्मरणात्मक शैली आदि। विभिन्न शैलियों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। उन्होंने पात्रों के अनुसार प्रसंग के अनुकूल, कथानक के अनुसार विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया हुआ नजर आता है। 'रेलगाड़िया कुछ अब कुछ डाउन' इस

हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में लेखक ने अपने तरीके से रेल्वे स्टेशन कैसा हो? इस बात का चित्रण करते हुए विवरणात्मक तथा विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। इसका उदाहरण इस प्रकार से दृष्टव्य है- ''एक आदर्श डौलदार और सुंदर देहात के विषय में मेरी अपनी कुछ अपेक्षाएं हैं। अपेक्षा है कि उसे गांव के सिरहाने एक छोटी- सी पहाड़ी हो। एक नदी हो, जो जाते-जाते बड़ा प्यार-दुलार जताती हुई गांव को गलबहियां डाल आगे चली गई हो। एक सुडौल, सुघड़, सुहाने कलशवाला मंदिर हो। गांव के पीछे, जैसे की पहरा देने के लिए खड़ा हो, एक ऐसा ऊंचा, आकाश को छूने वाला नीम का वृक्ष हो। गांव से निकलकर लचकती- बल खाती जा रही एक पगडंडी हो, जो चलकर बिलकुल नन्हे-से स्टेशन से जा मिलती हो। स्टेशन भी इतना नन्हा हो कि उसके पलेटफारम या 'फलाट' को कोई 'प्लेटफार्म' कहे, तो बेचारा लजा जाए? किसी देहाती खेतिहर की छोटी बहू को उसके मैके का कोई आदमी यों बुलावे 'क्यों, चौधरी जी,..' सुनकर 'ठेसन' का फलाट भी शरमा जाए, इतना नन्हा हो वह स्टेशन।''

इस तरह पु. ल. देशपांडे जी ने सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, पारिवारिक विसंगतियों का चित्रण करते समय हास्य-व्यंग्यात्मक शैलियों का प्रयोग प्रचुरता से किया हुआ है। खोखले साहित्य लेखन पर टिप्पणी करते हुए पु.ल. देशपांडे लिखते हैं कि, ''शनि, रवि, राहु, केतु, मंगल आदि बलवान ग्रहगण संसार के महान विभूतिमय व्यक्तियों के समान मेरी कुंडली में बस्ती बनकर बैठे हुए हैं-मुझे बहुत गर्व है इस वास्तविकता पर! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन ग्रहों में से कोई ग्रह अपना घर छोड़कर दूसरे के घर में घुस जाता है! ऐसे समय में अपना घर 'लीव एंड लाइसेंस' के अनुसार दे देते हैं और फिर अपने घर वापस लौट आते हैं। कभी-कभी यह ग्रह साहित्य के आलोचकों के समान वक्री भी हो जाते हैं।''

प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने गृह के योग और साहित्य के आलोचकों की पूर्ति पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। अतः अन्य लिखों में भी लेखक ने इस व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग प्रचुरता से किया हुआ है।

लेखक पु. ल. देशपांडे जी ने कहीं-कहीं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। जिससे कथनक को गति मिली है। पु. ल. देशपांडे जी का हास्यव्यंग्यात्मक लेख 'रावसाहब' का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''हां, तो वही... उसको बच्चा हो गया?''

''हां''

''क्या हुआ? लड़का या लड़की?''

''लड़का।''

''चलो, ठीक हुआ। मगर याद रखना.... औरतों के ऑडियैंस (दर्शक वर्ग) को रुलाने-बिलाने के लिए उसे लड़के को मरवा मत देना...''

समग्र रूप से कह सकते हैं कि पु. ल. देशपांडे जी ने अपने हास्य व्यंग्यात्मक लेख को संप्रेषणीय, प्रभावी, सहज, सरल बनाने के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। जिससे लेख प्रभावी और आकर्षक बन गए हैं।

4.3.4 हास्य–व्यंगात्मक लेख और सामाजिकता

समाज और साहित्य का संबंध अनन्य साधारण है। समाज के बिना साहित्य का निर्माण संभव है। साहित्य समाज का आईना होता है। साहित्य में समाज का ही प्रतिबिंब झलकता है। कोई भी साहित्यकार समाज से हटकर नहीं लिख सकता। साहित्यकार चाहे कितना भी प्रतिभाशाली क्यों न हो वह साहित्य से समाज को दूर नहीं रख सकता। अतः समाज साहित्य का विभाज्य अंग है। साहित्यकार जिस समाज में और परिवेश में जीता है उसकी अभिव्यक्ति वह साहित्य में करता है। साहित्य की कोई भी विधा समाज से अलग नहीं है। चाहे उपन्यास हो, कहानी हो, व्यंग्य हो या निबंध हो, नाटक हो, एकांकी हो, आत्मकथा, हो कोई भी विदधा समाज से अलग नहीं हो सकती। अतः साहित्यकार और समाज तथा समाज और साहित्य का पारस्परिक संबंध होता है। किसी भी भाषा का कोई भी साहित्य सामाजिक चेतना से युक्त ही रहता है। वह समाज के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता हुआ रचनाकार के उद्देश्य तक पहुंचता है और मानव कल्याण की कामना करता है इस नीति से कोई भी साहित्यकार इसके लिए अपवाद नहीं है। आधुनिक मराठी के साहित्यकार पु. ल. देशपांडे जी इसे अछूते नहीं है। उनकी समाज को परखने की दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म एवं गहरी है। समाज की बारकाईयों को अत्यंत सहजता से उन्होंने साहित्य में उभरा है। उनका सभी साहित्य समाज से बराबर का सरोकार रखता है। पु. ल. देशपांडे जी अनुदित पुस्तक 'हास्य–व्यंग्यात्मक लेख' उसी समाज का प्रमाण है। जिस समाज और परिस्थिति में पु.ल. देशपांडे जी ने अपना जीवन जीया है, उन्होंने अपने जीवन अनुभवों को समाज के साथ साझा कर अपनी रचनाओं का निर्माण किया है। उन्होंने अपने हास्य व्यंग्यात्मक निबंध में समाज के हर पक्ष का उद्घाटन अत्यंत मार्मिकता से किया है।

शिशुकक्षा से मैट्रिक तक, मक्खी, मैं और मेरा शत्रुदल, मैं और पोस्ट ऑफिस, रेलगाड़ियां कुछ अब कुछ डाउन, कुछ नए ग्रहयोग, रावसाहब, क्या कहा गुरुदेव ने?, चितले मास्टर जी, चश्मा इन लिखो में पु. ल. देशपांडे जी ने हास्य–व्यंग्यात्मक शैली में समाज के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। जिस समाज में मनुष्य रहता है।उसी समाजसेवा शिक्षा ग्रहण कर खुद को विकसित करता हुआ समष्टि का विकास करता है। समाज के लगभग सभी बच्चे स्कूल में पढ़ते हुए अपना शैक्षिक विकास करते रहते हैं। पाठशाला के बच्चे, बच्चों पर अध्यापक वर्ग हमेशा संस्कार करते रहते हैं। इसी समाज में रहनेवाले अध्यापकों की अध्ययनशीलता, रुचि, बच्चों की मानसिकता आदि को सामाजिक रूप में प्रस्तुत किया है। 'शिशुकक्षा से मैट्रिक तक' इस लेख में पु. ल. देशपांडे जी उस समाज का चित्रण करते हैं जिस सामाजिक परिवेश में वे जीते हैं। लेख में लिखते हैं कि बचपन में ही मुझे आशा थी कि मैं कॉलर वाली कमीज पहनूं, परंतु जीस दर्जी के पास हमारे कपड़े सिलते थे उसे कॉलर वाली कॉलर वाली कमीज सिलना नहीं आती थी। इसलिए वह जानबूझकर कहता है, अरे! कॉलर–बीलर काहे चाहिए रे तुम बच्चों को? तो यहां ऐसा समाज का व्यक्ति है जो अपना आज्ञन नहीं देखता और स्वार्थ वर्ष नई पद्धति का विरोध करता है। ब्राह्मण समाज में पहनी जानेवाली भीखबाली भी मास्टर को अच्छी नहीं लगती। इस तरह पु. ल. देशपांडे जी ने अपने बाल्यावस्था के शैक्षिक दिनों की कहानी बताई है। जिसमें पु. ल. देशपांडे जी की दुर्दशा, बचपन का

सत्यानाश, शिक्षकों का आचरण और स्वार्थ आदि का चित्रण करते हुए समाज के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया है।

'मक्खी' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में पु. ल. देशपांडे जी भारतीय एवं पाश्चात्य समाज का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि, ''मैं भोजन का निमंत्रण पाकर एक अंग्रेज मित्र के घर गया था। सबसे पहले 'सूप' आया। (पाठक भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य संस्कृति के अंतर पर सोच-विचार कर देखें। वहां 'सूप' आते ही भोजन शुरू करते हैं और हम या मेजबान सूप (छाज) हाथ में लेकर ब्याह-मंडप में आता है, तो मेहमान समझ जाते हैं कि - (खाना खतम,अब अपने-अपने घर जाओ) मेरे अंग्रेज मित्र ने अभी चमचे में सूप भारा ही था कि उसकी 'वाइफ' ने उसके गाल पर तडाक से तमाचा मारा। वह काफी देर से अपने पति के चेहरे की ओर देख रही थी, परंतु मैं समझ रहा था कि उनके यहां क्रिया पाश्चात्य प्रेम का ही हिस्सा होगी। अपने यहां पति-पत्नी भी चार जनों के देखते मुंह से मुंह नहीं मिलाते, मगर उनके यहां तो चार जनों के बीच ही मुख मिलन होता है। लगता है - प्रेम प्रदर्शन के इस खुलेआम ढंग की और वहां के सरकारी ध्यान नहीं देते!''

उपर्युक्त ''अवतरन में पाश्चात्य और भारतीय परिवारों का ऐसा चित्र खींचा है, जो एक मक्खी के कारण परेशान है। भारतीय समाज में प्रेम का प्रदर्शन नहीं किया जाता। परंतु पाश्चात्य देशों में यह खुले आम होता है चार जनों के बीच में। अतः यहां पर भारतीय समाज और पाश्चात्य समाज की तुलना करते हुए सामाजिक परिवेश को उभरने का प्रयास किया है।''

'मैं और मेरा शत्रुदल' इस हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध में पु. ल. देशपांडे जी ने समाज का वह चित्र खींचा है, जिससे समाज के लोग अपनी तरक्की दिखने तथा अपनी झूठी प्रतिभा दिखाने हेतु दूसरों का समय लेकर उसे परेशान करते हैं। इस लेख में पु. ल. देशपांडे जी ने इसी समाज के तीन वर्गों का अपना दुश्मन माना है। एक जो शिकारी होते हैं और अपने शिकार की कहानी लिखकर तथा दूसरों को सुनाकर उसका समय बर्बाद करनेवाले। दूसरे जो घर बनानेवाले तथा घरमालीक जो लोगों को घर दिखाने के बहाने तकलीफ देते हैं और तीसरा वर्ग जो अपने बच्चों के गुणगान में लगे होते हैं । इन तीनों वर्गों के लोगों की कहानी बताकर लेखक ने अपने शत्रुदल का चित्रण किया है। जिससे स्वार्थी, अहंमवादी, लालची, झूठी खुशामद करनेवाला, दिकायनुसी आदि समाज का चित्र खींचा है। लेखक को ऐसे समाज के प्रति काफी घृणा और द्वेष व्यक्त करते हैं। लेखक लिखते हैं कि, ''शिकारी मेरे कट्टर शत्रु है। हमने कभी उनसे पूछा है कि साहब, आपने कुल कितने शेर मारे? मारे सो मारे, मगर 'मेरा पहला शेर' विषय पर किताब भी लिख डालते हैं। सोन्या, तूने देखा है ऐसा शिकारी जो बकबक भी ना करें और किताब भी ना लिखें? वह तो कानून आड़े आता है, वरना मैं ऐसे शिकारियों के सिर में भूसा भर के अपने घर की दीवार पर लटकावा देता!''

अतः लेखक ने स्वार्थी, लालची, दिखावटी, दोहरी नीति का, झूठी शानो-शौकत दिखानेवाले समाज का गहराई से चित्रण किया है। जिसे हास्य व्यंग्य के द्वारा कठोर प्रहार भी किया है।

पोस्ट ऑफिस और समाज का भी एक अलग रिश्ता होता है। समाज के कई लोग अपने दूर के रिश्तेदारों तथा दोस्तों के साथ संपर्क बनाने के उद्देश्य से पोस्ट से ताल्लुक रखते हैं। पोस्ट ऑफिस और पु.ल. देशपांडे जी का गहरा संबंध है। पोस्ट ऑफिस से संबंधित अपनी भावनाओं को प्रकट करते हुए उन्होंने 'मैं और पोस्ट ऑफिस' नामक हास्य-व्यंग्यात्मक लेख का सृजन किया है ।बड़े ही सुंदरता से हास्य और व्यंग्य का सहारा लेकर लेखक ने पोस्ट की विचित्र कार्य पद्धति पर प्रकाश डाला है। जिसे सामाजिकता का एक नया रूप सामने आया है। हमारे भारत देश के समाज में ऐसे भी लोग हैं जो अपनी आर्थिक स्थिति ठीक ना होने पर भी केवल परंपरा और संस्कृति को बनाए रखने के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार होते हैं। पु. ल. देशपांडे जी लिखते हैं कि, ''सुनो, सौभाग्यवती द्रौपदी को अनेक आशीर्वाद। मैं यहां कुशल से हूं। दिवाली के त्यौहार पर दामाद जी को बुलाना चाहिए। लोक-रीत का पालन करना ही चाहिए। बोनस मिलने की काफी आशा है। चाचा के दमा की दवाई भिवा के हाथ भेज देता हूं। घर के बड़ों को नमस्कार। छोटों को आशीर्वाद। आप लोग अपना ध्यान रखा करो। मेरा स्वास्थ्य ठीक है... बवज्या धना भोरीकर ....।''

उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट होता है कि पारिवारिक रिश्तेदारी निभाने तथा सामाजिक सरोकार बनाए रखने के लिए गरीब लोग भी उसे जी जान से निभाने की कोशिश करते हैं। एक- दूसरे के प्रति होनेवाली जिम्मेदारियां को भली भांति निभाने की कोशिश करते हैं।

'रेलगाड़िया कुछ अब कुछ डाउन' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में तो पु. ल. देशपांडे जी ने ग्रामीण तथा देहाती समाज के साथ नगरीय समाज को भी उभरने की कोशिश की है। नगरीय समाज और देहाती समाज के दो रूपों की बात करते हुए पु. ल. देशपांडे जी ने रेलवे स्टेशन के प्रति अपनी भावनाओं को उजागर किया है। इस लेख में उन्होंने ग्रामीण समाज को उभरते हुए गांव के लोगों का अपनापन, समाज का जीने का तौर-तरीका, रिश्तो नातों की मिठास, सामाजिक जिम्मेदारियां का एहसास, इन बातों का बिंब उभरा है। पु. ल. देशपांडे जी लिखते हैं कि, ''ऐसा अपनापन लिए हुए 'फलाट' के सिवाय स्टेशन पर बिटिया को विदा करने आए पाटील (पटेल) से स्टेशन मास्टर कहता हो, ''राम-राम पाटिल...? दीदी बिटिया ससुराल चली है का?'' और नीली पोशाक पहन, माथे पर काले सिंदूर का मोटा- सा टीका लगाए और गले में तुलसी माला धारी पोर्टर गांव की किसी मां से कहें ''काहे री अनसूये, अरी, ललुवा को कनटोप तो पहना ठीक से! देख, कैसी ठंडी हवा छुट्टी है.... बिटवा को सरदी- फरदी हो गई तो...? फिर यह हो कि भरे-भड़क्के वाले फलाट पर पाटील की बिटिया झुककर स्टेशन मास्टर साहब के पैरों पर माथा टेके और जमशेदपुर या और किसी दूर के गांव में रह रही अपनी बिटिया की याद से मास्टर साहब की आंखें भर आए- और अपने उसे पुलक या रोमांच को छुपाने के लिए मुख से ''अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव'' कहनेवाले गडद्गदित मास्टर साहब अपनी भीगी आंखों छुपाने के लिए 'चलो, सएवन्टईन अप लेट है आज' कहकर आगे बढ़ जाए- खिड़की पर आए किसी को टिकट देने के बहाने से!.... ऐसा, इतना अपनेपन से लबालब हो मेरा फलाट!''

इससे स्पष्ट होता है कि यह सामाजिक जिम्मेदारियां का एहसास, उसे बेटियों को भी है और उस फलाट मास्टर को भी। सभी अपने सामाजिक दायित्व को निभाते हैं। अपनी संस्कृति को उजागर करते हैं।

जिससे जिम्मेदार समाज के दर्शन होते हैं। इसी लेख में पु. ल. देशपांडे जी नगरीय जीवन का सामाजिक चित्र उभरते समय अपनापन खोनेवाले वर्ग, ट्रेन में झूठी शानों-शौकत दिखानेवाला फर्स्ट क्लास से सफर करनेवाले पैसेंजर आदि का चित्रण सामाजिक रूप से किया हुआ है।

समाज और समाज में रहनेवाले लोगों की अपनी निष्ठा, अपना विश्वास, रूढिं, उत्सव, पर्व, त्यौहार, परंपराएं, संस्कृति आदि को सामाजिक परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य समाज में रहकर शिक्षा हासिल करता है और विभिन्न प्रकार की विधाओं को अवगत करता है। पु. ल. देशपांडे जी इस समाज का एक हिस्सा है। वे भी अपनी श्रद्धा और विश्वास की बात को अपनी अनुभूति के माध्यम से प्रकट करते हुए सामाजिक परिवेश को उभरने का प्रयास करते हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा और अनुभूति के बल पर 'कुछ नए ग्रहयोग' नामक हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध का सृजन किया है। जिसमें उन्होंने समाज के विभिन्न रूपों का चित्रण अत्यंत सूक्ष्मता से किया है। वह ज्योतिष और ज्योतिषी से जुड़े समाज के संबंध, उस सामाजिक वर्ग का उल्लेख करते हैं। जो ज्योतिषशास्त्र पर विश्वास करता है और उसका भी उल्लेख करते हैं जो उस पर विश्वास नही करते हैं। साथ ही परंपरागत ग्रहयोग को छोड़कर व्यंग्यात्मक रूप से नए योग को जन्म देते हैं। जिससे समाज की प्रवृत्तियां स्पष्ट होती दिखाई देती है। उन्होंने जल श्रृंखला योग, बूट्टी अधिकारी योग, अंतः क्रमांक योग, कनिष्ठभागिनी योग, आकाशवाणी योग, समस्त स्त्री वृंद-पर पुरुष-विवाहित वैषम्य योग, पादत्राणांगुष्ठ योग, द्वाराघंटीका योग,आदि योग के माध्यम से सामाजिक संरचना को उभारा है। समाज में रहनेवाले राजनीतिक नेता और साहित्यिक समीक्षकों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि, ''कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन ग्रहों में से कोई ग्रह अपना घर छोड़कर दूसरे के घर में घुस जाता है! ऐसे समय वे अपना घर 'लीव एंड लाइसेंस' के अनुसार दे देते हैं और फिर अपने घर वापस लौट आते हैं। कभी-कभी ये ग्रह साहित्य के आलोचकों के समान 'वक्री' भी हो जाते हैं। उनकी दशा भी हमारे समान ही होती है-राजनीतिक पार्टियों के प्रतिस्पर्धी नेताओं के समान ग्रह भी एक- दूसरे पर भली-बुरी दृष्टि रखते हैं। एक-दूसरे का मुंह भी न देख सकनेवाले शनि और गुरु कभी-कभी संयुक्त मोर्चा बना लेते हैं। जैसे कोई लोकप्रिय नेता पांच -दस मतों से हार जाता है, यों ही यह भी कभी-कभी कुछ अंशों की मार खाते हैं। मैं इनकी लीलाएं देख-देख चकरा जाता हूं''

इस तरह से पु.ल. देशपांडे जी ने अपनी अनुभूति जगत से रावसाहेब, क्या कहा गुरुदेव ने?, चितले मास्टर, चश्मा आदि हास्य-व्यंग्यात्मक लिखो में सामाजिकता का चित्रण अत्यंत मार्मिकता से किया है। जिससे भारतीय ग्रामीण और नगरीय समाज, पाश्चात्य समाज आदि के दर्शन होते हैं। समग्र रूप से कह सकते हैं कि पु. ल. देशपांडे जी ने भारत के महाराष्ट्रीयन समाज को उभारा है। जिससे महाराष्ट्र की संस्कृति, रूढ़ि, परंपरा, उत्सव, पर्व, त्यौहार, राजनीति, ज्योतिष, दर्शन आदि के दर्शन होते हैं।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए विकल्प में से उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. पु. ल. देशपांडे जी का जन्म सन्...... में हुआ।

अ) 1919 आ) 1929 इ) 1909 ई) 1939

2. पु.ल. देशपांडे जी मुख्यतः ...... भाषा के रचनाकार हैं।

अ) हिंदी आ) मराठी इ) बंगाली ई) तमिल

3. मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे जी को......इस उपनाम से भी जाना जाता है।

अ) पु.ल. आ) ल. ल. इ) ब. च. ई) पु. अ.

4. 'शिशुकक्षा से मैट्रिक तक' यह हास्य-व्यंग्यात्मक लेख....... इस मराठी के मूल पुस्तक से लिया गया है।

अ) गणगोत आ) व्यक्ती आणि वल्ली

इ) हसवणूक ई) असा मी असामी

5. 'शिशुकक्षा से मैट्रिक तक' इस लेख में लेखक ने अपने ...... जीवन का चित्रण किया है।

अ) पारिवारिक। आ) सामाजिक इ) शैक्षिक ई) राजनीतिक

6. 'मक्खी' इस हास्य-व्यंगात्मक लेख में लेखक ने....... को आधार बनाकर लेखा निर्माण किया है।

अ) चींटी आ) मक्खी इ) मच्छी ई) गाय

7. 'मैं और मेरा शत्रुदल' इस लेख में पु.ल. देशपांडे जी अपना पहला दुश्मन...... को मानते हैं।

अ) घर बनानेवाले। आ) घरमालिक इ) शिकारी ई) फोटो दिखानेवाले

8. 'मैं और मेरा शत्रुलद' इस लेख में पु.ल. देशपांडे जी के मित्र का नाम .... है।

अ) जोन्या आ) सोन्या इ) मोन्या ई) गोन्या

9. 'मैं और पोस्ट ऑफिस' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में पु. ल. देशपांडे जी ने ....की कार्य पद्धति पर व्यंग्य किया है।

अ) रेल्वे आ) बैंक इ) पोस्ट ई) कॉलेज

10. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंगात्मक लेख का नाम... है।

अ) रेलगाड़ियां आ) मास्टरसाहब इ) बिल्ली ई) बाल्टी

11. पु. ल. देशपांडे जी का हास्य-व्यंगात्मक लेख 'रावसाहब' मराठी के........ इस मूल किताब से लिया है।

अ) गणगोत आ) व्यक्ती आणि वल्ली

इ) फसवणूक ई) असा मी असामी

12. पाश्चात्य लोगों ने जिसे 'न्याय सिद्धांत' कहा है उसे हम...... कहते है।

अ) ग्रहयोग। आ) जल-श्रृंखला योग

इ) महायोग ई) समायोग

13. 'क्या कहा गुरुदेव ने?' यह लेख मराठी के.........पुस्तक का हैं।

अ) गणगोत आ) व्यक्ती आणि वल्ली

इ) असा मी असा मी ई) हसवणूक

14. चश्मा इस हास्य-व्यंग्य लेख में लेखक का चश्मा डॉट डॉट के कारण टूट जाता है।

अ) आलिंगन से आ) गिरने से इ) पत्थर से ई) टकराने से

15. पु.ल. देशपांडे जी का हास्य-व्यंग्यात्मक लेख 'मेरे चितले मास्टर जी' यह मराठी की मूल पुस्तक .....:.. का है।

अ) गणगोत आ) व्यक्ती आणि वल्ली

इ) हसवणूक ई) असा मी असामी

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

धारातीर्थ - समरांगण,

माशी शिंकणे - मक्खी का छींकना,

मिसळ -चटपटी चीजों का मिश्रण,

राबीट - सीमेंट, रेट और गट्टी का मिश्रण,

टपाल - डार्क डाक

हासिल - खर्च या किराया,

बंगी - डाक का थैला या पार्सल।

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर।

1. 1919 2. मराठी 3. पु. ल. 4. हसवणूक

5. शैक्षिक 6. मक्खी 7. शिकारी 8. सोन्या

9. पोस्ट	10. रेलगाड़ियां	11. गणगोत	12. ग्रहयोग
13. असा मी असामी	14. आलिंगन से	15. चितळे मास्तर	

4.7 सारांश :

1. भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में 'पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेख' इस किताब का अध्ययन करते समय सबसे पहले हमने पु. ल. देशपांडे जी के व्यक्तित्तव एवं कृतित्त्व का अध्ययन विस्तार से किया है।
2. जिसके आधार पर सारांश रूप कहा जा सकता है कि निश्चित रूप से पु. ल. देशपांडे जी का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व सराहनीय है। जिससे छात्र आदर्श ले सकते हैं।
3. उनके साहित्यिक कृतित्त्व से मराठी साहित्य समृद्ध बन पड़ा है। इसी साहित्यिक कृतित्त्व के कारण उन्हें 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' जैसे सम्मान प्राप्त हुए हैं।
4. उनके हास्यव्यंग्यात्मक लेख का सामाजिक दृष्टि से विचार करने पर कहा जा सकता है कि महाराष्ट्रीयन समाज का चित्रण एवं संस्कृति का गहराई से मार्मिक चित्रण हुआ है।
5. उनके हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों का भावगत अध्ययन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि उनके लिखों में भावों की अभिव्यक्ति सहज सरल, प्रभावपूर्ण ढंग से हुई है, जो पाठक के दिलों दिमाग पर असर छोड़ती है।
6. उन्होंने अपने हास्य व्यंग्यात्मक लिखों में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि से संबंधित विषयवस्तु को वाणी दी है।
7. पु. ल. देशपांडे जी ने अपने लिखों को प्रभावशाली तथा आकर्षक बनाने के लिए संप्रेषणीय एवं प्रभावशाली भाषा तथा हास्य-व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग प्रचुरता से किया है। जिससे शिल्प-विधान सक्षम बन गया है।

4.8 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों की विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
2. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों के भाव पक्ष पर प्रकाश डालिए।
3. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों में चित्रित सामाजिकता पर प्रकाश डालिए।
4. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों की भाषा पर प्रकाश डालिए।
5. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों की शैली पर प्रकाश डालिए।

6. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों के व्यंग्य का चित्रण कीजिए।

7. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों के द्वारा हास्य भाव का चित्रण कीजिए।

8. पु. ल. देशपांडे जी के हास्य-व्यंग्यात्मक लेखों के शिल्प विधान पर प्रकाश डालिए।

9. पु. ल. देशपांडे जी का हास्य-व्यंग्यात्मक लेख 'शिशुकक्षा से मैट्रिक तक' के माध्यम से पु.ल. देशपांडे के शैक्षिक जीवन संघर्ष का चित्रण कीजिए।

10. 'मैं और मेरा शत्रुदल' इस हास्य-व्यंग्यात्मक लेख में पु. ल. देशपांडे जी ने अपने शत्रुदल का चित्रण किस प्रकार से किया है।

ब) ससंदर्भ के लिए उदाहरण

1. ''नए बालकों का नया बचपन कितने मजे से बीतेगा! विद्यालय के पहले घंटे में एक घंटे तक प्रार्थना चलेंगी, क्योंकि सारे धर्म को एक-एक मिनट भी दिया गया, दो घंटा तो लग ही जाएगा। दूसरे घंटे में गुरुजनों का मौन, तीसरे में बालकों का, चौथा में सारे विद्यालय का, फिर सामूहिक उपवास, सामूहिक सत्याग्रह। इस बीच यदि बालकों ने कुछ शरारत कर दी, तो गुरूजन आमरण अनशन करेंगे।'' (पेज नंबर -31)

2. ''जो औषधि दूसरों के लिए संजीवनी है। उसे इस मक्खी को भी जीवन देना चाहिए था। उसे जीवन देने के मार्ग में कौन मक्खी ने छिंक मार दी या फिर वह स्वयं ही छींक पड़ी थी?'' (पेज नंबर -33)

3. एक नहीं, आधे ही पल में मैं अनुभव करने लगा कि मृत्यु के बाद मनुष्य की कैसी अवस्था होती होगी! ''अरी मैया! यह देखो, अमृतांजन की शीशी तो यही थी'' ''और ये देखो, परसों बाल बांधने का आंकड़ा नहीं मिल रहा था.....यहां रखा था।'' (पेज नंबर -55)

4. ''काश! भगवान ने कान बंद करने का कोई स्विच बनाया होता। बेबी के मास्टर जी तो कई घरों की बेबीयों को लता मंगेशकर से दस गुना मधुर बताया करते हैं। पेट की के खातिर क्या-क्या नहीं करना पड़ता, आदमी को? परंतु यह मां-बाप क्यों कहा करते हैं, पता नहीं।'' (पेज नंबर -58)

5. ''अब तो हद हो गई! अरे, मैं पूछता हूं, मनुष्य की सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है या नहीं? एक इतने से जीवन में मनुष्य क्या-क्या बर्दाश्त करें? यह लोग सबको छोड़ हमें ही क्यों पकड़ लेते हैं? सों से मैं मुंह छुपाए या बचता-छुपता निकल जाता हूं-जैसे कि मैं उनका कर्जदार हूं! आखिर मेरे जैसे लोग अपनी शिकायत किस चौपाल में जाकर करें?'' (पेज नंबर - 39)

6. ''अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव'' कहनेवाले गडद्गगदित मास्टर साहब अपनी भीगी आंखों छुपाने के लिए 'चलो, सएवन्टईन अप लेट है आज' कहकर आगे बढ़ जाए- खिड़की पर आए किसी को टिकट देने के बहाने से!.... ऐसा, इतना अपनेपन से लबालब हो मेरा फलाट!'' (पेज नंबर 76-77)

7. कभी-कभी ये ग्रह साहित्य के आलोचकों के समान 'वक्री' भी हो जाते हैं। उनकी दशा भी हमारे समान ही होती है-राजनीतिक पार्टियों के प्रतिस्पर्धी नेताओं के समान ग्रह भी एक- दूसरे पर भली-बुरी दृष्टि रखते हैं। एक-दूसरे का मुंह भी न देख सकनेवाले शनि और गुरु कभी-कभी संयुक्त मोर्चा बना लेते हैं। (पेज नंबर 9697)

8. ''वस्तुस्थिति यह होती है कि चार फीट दूर ही नासिकानली से ओष्ठ-मुरली से खुरायमान ध्वनियां आ रही होती है- किंतु प्रेम-कथा लिखने में कोई बाधा नहीं होती। जब ऐसे ऐसे कथाकार निराधार लिख सकते हैं, तो अकेले बाबा साहब ने ही किसी का क्या बिगाड़ा है? कुल मिलाकर बात इतनी कि अंत में सारे एक ही थैली के.....!'' (पेज नंबर- 45)

9. ''सुनो, सौभाग्यवती द्रौपदी को अनेक आशीर्वाद। मैं यहां कुशल से हूं। दिवाली के त्यौहार पर दामाद जी को बुलाना चाहिए। लोक-रीत का पालन करना ही चाहिए। बोनस मिलने की काफी आशा है। चाचा के दमा की दवाई भिवा के हाथ भेज देता हूं। घर के बड़ों को नमस्कार। छोटों को आशीर्वाद। आप लोग अपना ध्यान रखा करो। मेरा स्वास्थ्य ठीक है... बवज्या धना भोरीकर ....।'' (पेज नंबर-67)

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

छात्र मराठी साहित्य का अध्ययन करें और हिंदी भाषा के अंतर्गत उसे अनूदित करने का प्रयास करें।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

१. हसवणूक - पु. ल. देशपांडे

२. गणगोत - पु. ल. देशपांडे

३. असा मी असामी - पु. ल. देशपांडे

४. व्यक्ती आणि वल्ली - पु. ल. देशपांडे

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न**

   1. पु.ल.देशपांडे मूलतः......... भाषा के रचनाकार है।

      अ. बंगाली ब. हिंदी क. तमिल ड. मराठी

   2. शिशु से मैट्रिक तक इस लेख में लेखक ने अपने ..... जीवन का चित्रण किया हैं।

      अ. शैक्षिक ब. धार्मिक क. पारिवारिक ड. राजनीतिक

   3. पु.ल.देशपांडे का जन्म.....साल में हुआ।

      अ. 1921 ब. 1919 क. 1922 ड. 1920

   4. मक्खी इस हास्य व्यंग्य लेख में लेखक ने.... को आधार बनाकर लेख लिखा हैं।

अ. चिंटी　　ब. मक्खी　　ड. मछली　　ड. गाय

5. क्या कहा गुरुदेव ने यह लेख मराठी के .... पुस्तक का हैं।

अ. गणु　　ब. हसवणूक　　क.असा मी असामी　ड.व्यक्ति आणि वल्ली

उत्तर –

1. ड　2. अ　3. ब　4. ब　5. क

2. **प्रश्न उचित मिलान कीजिए।**

1. शिशु से मैट्रिक तक	अ. चश्मा
2. मेरा शत्रु दल	ब. मक्खी
3. मैं और पोस्ट ऑफिस	क. पोस्ट
4. मक्खी	ड. सोन्या
5. चश्मा	इ. शैक्षिक

उत्तर

1.–इ,　2.–ड,　3.–क,　4.–ब,　5.–अ

3. **सही गलत का निर्णय करें**

1. मैं और मेरा पोस्ट ऑफिस कहानी में बैंक चित्रण है, जो रेल वहन का चित्रण करता है।
2. रावसाहेब पु.ल.देशपांडे का जीवनीपरक निबंध है, जो गणगोत इस किताब से लिया गया है।
3. चितले मास्टर में लेखक ने अपनी शिक्षा का चित्रण किया है, जो तत्कालीन शिक्ष जीवन की विसंगतियों पर प्रकाश डालता है।
4. रेलगाडिया कुछ अब कुछ डाउन इस निबंध में ग्रामीण तथा नागरी जीवन की विसंगतियॉ हैं, जिसमें स्टेशन मास्टर रामराम सरपंच का चित्रण है।
5. मैं और मेरा शत्रु दल इस लेख में लेखक ने अपने पडोसियों को अपना श्शत्रुदल माना है, उसमें चित्रित एक पात्र का नाम सोन्या हैं।

सही गलत सही उत्तर

1. पहला गलत और दूसरा भी गलत।
2. पहला सही और दूसरा भी सही।
3. पहला सही और दूसरा भी सही।
4. पहला सही और दूसरा गलत।
5. पहला गलत और दूसरा सही हैं।

❑❑❑